राही मासूम रज़ा
और
उनके औपन्यासिक पात्र

डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी

राही मासूम रज़ा और उनके औपन्यासिक पात्र

राकेश नारायण द्विवेदी
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिंदी
गांधी महाविद्यालय, उरई (जालौन)
उत्तर प्रदेश
मो 9236114604
email rakeshndwivedi@gmail.com

isbn 978-81-908912-5-7

मूल्य- पांच सौ रुपए मात्र

प्रकाशक-

जानकी प्रकाशन,
द्वारा पं0 बाबूलाल द्विवेदी
रावतयाना, कैलगुवां बाइपास चौराहा के पास, ललितपुर
मोबाइल 9838303690

•••••

अनेक अध्यवसायियों के प्रेरणास्रोत-
अहैतुक प्रयोजनपूरक-
प्रातर्स्मरणीय-
आध्यात्मिक साधक,
निष्काम कर्मयोगी-
पुलिस अधिकारी-
भैया-
श्री जुगुल किशोर तिवारी-
को सादर-सश्रद्ध समर्पित

•••••

विषयानुक्रमणिका

सम्मति 9
आमुख 10

प्रथम अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ***12***

1. जीवन-वृत्त
2. व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन
3. साहित्यिक दृष्टि
4. उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय
5. राही का समकालीन परिवेश और उसका प्रभाव

द्वितीय अध्याय

साहित्य और पात्र-परिकल्पना ***47***

1. पात्र विवेचन
   (क) पात्र : व्युत्पत्ति एवं अभिप्राय
   (ख) पात्र : स्वरूप एवं प्रकार
      (1) पात्रों का स्वरूप
      (2) पात्रों के विविध प्रकार
2. साहित्य में पात्रों का महत्व
3. साहित्य और पात्र-परिकल्पना : तात्पर्य एवं परिभाषा
   (क) पात्र-परिकल्पना के सिद्धांत : प्राच्य एवं पाश्चात्य संदर्भ में
   (ख) पात्र-परिकल्पना की विधियां

तृतीय अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के पात्रों का वर्गीकरण ***72***

1. उपन्यासगत महत्व एवं स्थान के आधार पर
2. लिंग के आधार पर
3. संप्रदाय के आधार पर
4. वर्ग अथवा चारित्रिक वैशिष्ट्य के आधार पर
5. देश (स्थान) के आधार पर

6. काल (समय) के आधार पर
7. चारित्रिक परिवर्तनशीलता के आधार पर
8. व्यवसाय अथवा कार्यों के आधार पर
9. वय (अवस्था) के आधार पर
10. चारित्रिक गुणों के आधार पर
11. पारिवारिक संबंधों के आधार पर

चतुर्थ अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के संवाहक पात्र 109

सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना

1. धार्मिक चेतना
2. कला-साहित्य विषयक चेतना
3. पौराणिक एवं ऐतिहासिक चेतना
4. वर्ण और आश्रम विषयक चेतना
5. अन्य चेतनाएं

पंचम् अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की आर्थिक चेतना के संवाहक पात्र 137

आर्थिक चेतना

1. शोषक वर्ग
   (क) जमींदार
   (ख) महाजन
   (ग) पूंजीपति/संपन्न
   (घ) पुलिस
   (च) धर्मगुरु
2. शोषित वर्ग
   (क) जमींदार-किसान संघर्ष
   (ख) मजदूर-पूंजीपति संघर्ष
   (ग) शोषितों के विभिन्न रूप
      (1) संप्रदायगत शोषण
      (2) बेरोजगारीगत शोषण

3. अन्य आर्थिक चेतनाएं

षष्ठ अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की राजनैतिक चेतना के संवाहक पात्र 157

राजनैतिक चेतना

1. शासक वर्ग
   (क) मंत्री, सांसद, विधायक एवं कार्यकर्ताओं का नेता वर्ग
   (ख) प्रशासनिक वर्ग
   (ग) भ्रष्टाचार
   (घ) ग्राम-जीवन की राजनीति
2. शासित वर्ग
   (क) राजनैतिक उत्पीड़न
   (ख) अशिक्षाजन्य उत्पीड़न
3. अन्य वर्ग
   (क) जमींदारी उन्मूलन के विभिन्न स्तर और परिवर्तित जीवन
   (ख) यथार्थ प्रेषण की संरचना

सप्तम् अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की पात्र चित्रण-कला 179

1. भाषा
   अलंकार
   मुहावरे-लोकोक्तियां
   उक्ति-सूक्ति
2. शैली
   (क) वर्णनात्मक अथवा बहिरंग प्रणाली
      (1) आकृति, रूप एवं वेशभूषा वर्णन
      (2) स्वभाव वर्णन
      (3) अनुभाव वर्णन
   (ख) अभिनयात्मक अथवा नाटकीय प्रणाली
      (1) कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण
      (2) घटनाओं एवं पात्रों के क्रियाकलापों द्वारा चरित्र-चित्रण
   (ग) मनोविश्लेषणात्मक अथवा अंतरंग प्रणाली

(1) आत्मविश्लेषण या आत्मप्रकाशक
(2) अंतर्द्वंद्व
(3) अंतर्विवाद
(4) स्वप्न विश्लेषण
(5) अन्य पद्धतियां

अष्टम् अध्याय

उपसंहार ***215***

1. सार-संक्षेप
2. उपलब्धि एवं स्थापना : राही की पात्र-परिकल्पना के विशिष्ट आयाम एवं मूल्यांकन

परिशिष्ट (उपजीव्य एवं उपस्कारक ग्रंथ सूची) 225

•••••

सम्मति

इस शोध प्रबंथ में शोधार्थी श्री राकेश नारायण द्विवेदी ने डा राही मासूम रज़ा के व्यक्तित्व के साथ ही उनके उपन्यासों में चित्रित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चेतना के संवाहक पात्रों का सोदाहरण मूल्यांकन प्रस्तुत किया है । इस क्रम में राही की कथादृष्टि में भी शोधार्थी को उतरना पड़ा है, जिससे अध्ययन और समृद्ध हुआ है । राही ने अपने परिकल्पित पात्रों को जिस तरह प्रस्तुत किया है, वह इस प्रबंध के विषय का अनिवार्य पहलू है । शोधार्थी ने इस पक्ष को भी बड़ी ही गंभीरता से विवेचित किया है । अलंकार, मुहावरे तथा उक्ति-युक्त राही की भाषा तथा वर्णनात्मक, नाटकीय तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली आदि का जो उद्‌घाटन शोधाथऍ ने किया है; वह एक गंभीर अध्येता ही कर सकता है । शोधार्थी ने अंततः समग्र अध्ययन को सार-संक्षेप में समेटते हुये रचनात्मक ढंग से व्यवस्थित किया है ।

इस अध्ययन के लिये संदर्भ ग्रंथों का शोधार्थी ने उपयुक्त और आवश्यक इस्तेमाल किया है । उपन्यास आलोचना की दिशा व शोधार्थी के इस गंभीर प्रयास की सार्थकता और ज्यादा बढ़ जायेगी, जब यह शोध प्रबंध प्रकाशित किया जायेगा ।

शोध-प्रबंध की गुणवत्ता को देखते हुये मैं शोधार्थी श्री राकेश नारायण द्विवेदी को विद्या-वाचस्पति (पी-एच.डी) उपाधि हेतु अपनी संस्तुति प्रदान करता हूं ।

दिनांक 24-5-2002
स्थान- युवराजदत्त महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी

डा देवेंद्र नाथ सिंह
शोध प्रबंध एवं मौखिकी परीक्षक
संप्रति - प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
डा शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

•••••

आमुख

भारतीय संस्कृति का आधारभूत वैशिष्ट्य है उसकी धर्मनिरपेक्ष अस्मिता । विविधता में एकता हमारी संस्कृति का प्रस्थान-बिन्दु भी है और उसकी गौरवमयी परिणति भी । यहां न जाने कितनी जातियां, कितने धर्म और कितने संप्रदाय आए और इस विराट संस्कृति-सागर में लय हो गए । वस्तुतः भारत किसी भौगोलिक इकाई का नाम नहीं, बल्कि वह तो ऐसे उदात्त मानव-मूल्यों का संपुंज है, जो मनुष्य से आत्मीय रूप में जोड़ता है । सभ्यताओं और संस्कृतियों के अनवरत विकास-क्रम में भारत और भारतीयता का यह बिंब अनूठा तो है ही, अभूतपूर्व भी है ।

भारतीयता की इस उदात्त एवं गौरवमयी परिणति को डॉ राही मासूम रज़ा ने न केवल आजीवन जिया, अपितु उन्होंने अपनी पूरी आत्मिक शक्ति से इसे अभिव्यक्त कर भावी पीढ़ियों को एक आदर्श प्रस्तुत किया । राही जी का प्रत्येक उपन्यास उनके जीवन जीने के ढंग के ही समान उनकी सच्ची धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिक सौहार्दता एवं विविधता में एकता का साकार प्रतिरूप है । राही के उपन्यासों को इस पुस्तक की विषय-वस्तु चुनने का यही एक प्रमुख उद्देश्य एवं आधार रहा है ।

सहसा और प्रथम दृष्टया यदि पूछा जाय कि उपन्यास में क्या अच्छा लगा करता है ? तो अविचारित भाव से उत्तर यही होगा कि साहब ! मुझे तो उपन्यास के पात्र अच्छे लगते हैं । उपन्यासकार दर्शन, मनोविज्ञान, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक चेतना को पात्रों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करता है; अप्रत्यक्ष रूप में इसलिए कि वह उपदेशक नहीं होता । वह अपनी दृष्टि को पाठक तक प्रत्यक्ष रूप से संक्रमित न कर कलात्मक ढंग से पात्रों को संपूर्ण मानवीय संवेदनाओं के ढांचे में ढालकर अपने अमर चरित्रों द्वारा प्रकट करता है । इस प्रकार पात्र-परिकल्पना ही उपन्यास के सामर्थ्य का महत्वपूर्ण निकष है ।

डॉ राही मासूम रज़ा ने भी अपनी संपूर्ण विचारधारा, जीवन-दर्शन और विचारों का प्रतिनिधित्व अपने पात्रों के माध्यम से कराया है । पात्र-परिकल्पना के

महत्व को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत ग्रंथ में राही के उपन्यासों का अध्ययन उनके पात्रों को केन्द्र में रखकर किया गया है ।

यह प्रबंध पी-एच.डी शोध उपाधि हेतु पूरे मनोयोग से लिखा गया । जब इसके मूल्यांकन में इसके प्रकाशन की संस्तुति की गई, तभी से मन में था कि यह प्रकाशित हो जाये, तकनीकी के विकास ने अब इसे ई रूप में प्रकाशित करना संभव कर दिया है । शोध एवं मौखिकी परीक्षक आदरणीय प्रोफेसर डा देवेंद्र नाथ सिंह की तत्समय दी गई सम्मति पुस्तक में यथारूप दी जा रही है ।

उरई, दीपावली 2014 राकेश नारायण द्विवेदी

प्रथम अध्याय
डॉ0 राही मासूम रज़ा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. जीवन वृत्त : लेखक की कृतियों पर लेखक के प्रेरक बल, दृष्टिकोण तथा संवेदनाओं का अत्यन्त प्रभाव होता है । लेखक के इन्हीं गुणों को समझने के लिए उसका परिचय आवश्यक होता है । लेखक की कृतियों के कई मूल उत्स उसके जीवन-वृत्त से मिल जाते हैं । अतएव, उसके जीवन वृत्त का अध्ययन विशेष उपयोगी व रोचक हो जाता है । वैसे भी, 'जीवन और साहित्य में घनिष्ठ तथा अटूट संबंध होता है ।' [1] अतः डॉ0 राही मासूम रज़ा की रचना-सृष्टि को भली-भाँति समझने के लिए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत होना सर्वथा उपयुक्त होगा ।

कथा साहित्य में नये अन्दाज़-ए-बयाँ के फ़नकार डॉ0 राही मासूम रज़ा की जन्म तिथि को लेकर अब तक उनके प्रकाशित ग्रन्थों में अनेक विभिन्नताएँ मिलती हैं । राजकमल प्रकाशन से छपी राही की पुस्तकों में उनकी जन्म तिथि 1 सितम्बर 1927 दी हुई है जबकि वाणी प्रकाशन द्वारा हाल ही में उनके साहित्यिक एवं व्यंग्य लेखों का संग्रह डॉ0 कुँवरपाल सिंह द्वारा संकलित-संपादित 'खुदा हाफ़िज़ कहने का मोड़' नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमें डॉ0 रज़ा का रचना संसार 27 अगस्त 1927 से आरम्भ हुआ बताया गया है । वहीं साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य का इतिहास(लेखक डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक) में उनका जन्म सन् 1930 लिखा है । इधर कश्मीर की एक लेखिका डॉ0 दिलशाद जीलानी का शोध-प्रबंध 'साठोत्तरी हिन्दी के मुस्लिम उपन्यासकार' जिसमें डॉ0 रज़ा का जन्म तिथि 1 अगस्त 1927 दी गई है जो सत्यपूर्ण जान पड़ती है, क्योंकि लेखिका के नाम स्वयं डॉ0 राही मासूम रज़ा के एक पत्र में यह तिथि उल्लिखित है । यह पत्र इसी पुस्तक में परिशिष्टान्तर्गत प्रकाशित है । जन्म तिथि संबंधी यह तथ्य उनके उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी' से भी पुष्ट होता है, जिसमें राही जी हिम्मत की जन्म तिथि 1 अगस्त 1927 बताते हैं और इस तिथि को याद रखने के स्पष्टीकरण में वे लिखते हैं 'यह तारीख़ मुझे ज़बानी इसलिये याद है कि मैं भी चुपचाप दिल ही दिल में इसी तारीख़ को अपना जन्म दिन मानता हूँ ।[2]

---

[1] डब्ल्यू एच हडसन, एन इण्ट्रोडक्शन टु स्टडी ऑफ लिटरेचर, पृ0 11(आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, पृ0 3 से उद्धृत)

[2] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 53

डॉ0 राही मासूम रज़ा का जन्म एक सुशिक्षित एवं सम्पन्न शिया परिवार में उत्तर प्रदेश के ज़िला ग़ाज़ीपुर के एक गॉव बगुही बुजुर्ग में अपने नाना के घर में हुआ । राही जी के दादा आज़मगढ़ ज़िले के गॉव ठेकमा बिजौली के थे । राही जी के दादा मीर अली मोहम्मद सेहरा बांधकर राजा मुनीर हसन की बहन अकबरी बेगम से निकाह करने आये और गंगौली में ही रह गये । अतः राही जी का पैतृक गॉव गंगौली ज़िला ग़ाज़ीपुर हुआ । मीर अली मोहम्मद के चार लड़के हुए । जिनके दूसरे पुत्र डॉ0 राही मासूम रज़ा के पिता सैयद बशीर हसन आब्दी के चार पुत्र और पॉच पुत्रियॉ हुईं । इस प्रकार राही जी कुल चार भाई तथा पॉच बहनें थीं । नौ भाई बहिनों में राही चौथे किन्तु भाईयों में ये दूसरे थे । राही जी के बड़े भाई प्रोफेसर मूनिस रज़ा दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके हैं । उनके छोटे भाई डॉ0 मेंहदी रज़ा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग के अध्यक्ष रहे । राही जी के सबसे छोटे भाई इण्टरनेशनल मॉनीटरी फण्ड (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) में इण्डियन डेस्क पर कार्यरत हैं । उनकी एक बहन सुरैया इलाहाबाद के एक महाविद्यालय में इतिहास प्राध्यापिका हैं । राही जी का बचपन चूंकि ग़ाज़ीपुर और उनके गॉव गंगौली में गुजरा । इसलिये वे ग़ाज़ीपुर को ही अपना घर मानते रहे, आज़मगढ़ को नहीं ।[3] गंगौली गॉव से उनके पिता सैयद बशीर हसन आब्दी ग़ाज़ीपुर में आकर बस गए थे जहॉ ज़िला कचहरी में वे एक प्रतिि-ठित वकील थे ।[4] इस प्रकार राही जी को एक शैक्षिक वातावरण में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था ।

राही जी का पहला विवाह 18-20 व-र् की उम्र में फैज़ाबाद के एक पोस्ट मास्टर की लड़की मेहरबानो से हुआ था । मेहरबानो छठी कक्षा तक पढ़ी थी । राही जी को यह स्थिति गॅवारा नहीं थी । मेहरबानो ने व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में हाई स्कूल की परीक्षा विवाह के बाद उत्तीर्ण कर ली थी । किन्तु राही जी से उनकी बन न सकी । वह तीन व-र् तक उपेक्षिता रहीं । इस बीच राही जी के मेहरबानो से किसी तरह के संबंध नहीं रहे । अंत में राही जी ने इनसे विवाह विच्छेद कर लिया । मेहरबानो ने अपने मायके लौटकर दिन-रात परिश्रम कर एम.ए., पी-एच.डी. किया परिणामस्वरूप वे कश्मीर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हुईं । 1971 में राही जी का दूसरा विवाह नैयर जहॉ (कर्नल यूनुस से तलाकशुदा) से हुई । नैयर जहॉ अलीगढ़ के एक प्रतिष्ठित परिवार से जुड़ी थी । राही जी के इनसे तीन पुत्र और एक पुत्री हुई । राही जी के बड़े पुत्र नदीम खान बॉलीवुड मुम्बई में कैमरामैन हैं । नदीम

[3] वही, पृ0 62 व 77

[4] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 75

का विवाह वेस्टइंडीज में जन्मी प्रसिद्ध पॉप गायिका ब्राह्मण युवती पार्वती महाजन से हुआ इस दम्पति का पुत्र जतिन पॉप गायक होने के साथ-साथ डान्सर भी है । राही जी का दूसरे पुत्र इफ्फान हैं जिनके मुम्बई एवं दिल्ली में कैमिकल के दो कारख़ाने हैं । इफ्फान का विवाह समपुर की समेन के साथ हुई जिनसे एक पुत्र अब्बास है । राही जी के तीसरे पुत्र आफ़ताब अन्तर्राष्ट्रीय बैंक हांगकांग में कार्यरत हैं । उन्होंने विवाह नहीं किया है । राही जी की इकलौती पुत्री का विवाह राही के बड़े भाई मूनिस रज़ा के पुत्र मज़ाज के साथ हुआ ।

डॉ0 राही मासूम रज़ा को बचपन से ही हर प्रकार की सुविधा प्राप्त हुई थी । स्वभाव से जिद्दी व बातूनी राही जी को बचपन से ही घुड़सवारी करने का शौक था । इसके अतिरिक्त उन्हें पतंग उड़ाने, क्रिकेट खेलने तथा सिनेमा देखने में भी अतिशय आनन्द आता था । बायें पैर में हड्डी की टी.बी. से ग्रस्त राही जी को बहलाने के लिए उनकी दादी ने अपने गॉव से एक कल्लू कक्का को बुलवा लिया था । जिनसे राही जी कहानियॉ सुनने के साथ-साथ पतंग उड़ाने की कला बाजियॉ भी सीखते थे । राही जी की प्रारम्भिक शिक्षा ग़ाज़ीपुर में ही हुई थी । कुछ दिन उन्होंने लखनऊ में पढ़ाई शुरू की । तदुपरान्त उच्च शिक्षा अध्ययनार्थ वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय आए । जहॉ से उन्होंने 1960 में एम.ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी प्रथम के विशेष सम्मान के साथ प्राप्त की । अलीगढ़ से ही उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध 'तिलिस्म-ए-होशरुबा में चित्रित भारतीय जीवन का अध्ययन' पर 1964 में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की । साथ ही डी.लिट्. की उपाधि एवं भारतीय संस्कृति के तत्वों की खोज के लिए उन्होंने अनीस के मर्सियों तथा ग़ालिब की ग़ज़लों का अध्ययन किया । इस प्रकार राही जी एक उच्च शिक्षा प्राप्त साहित्यकार थे ।

राही जी ने अपने जीविकोपार्जन का प्रारम्भ 1949-50 में कुछ दिन यू.पी. यूनियन बैंक में नौकरी करते हुए किया । किन्तु यह स्वयं उनका जीविकोपार्जन न होकर उनके पिता के एक मित्र की सहायता अधिक थी जो उस शाखा के प्रबंधक थे । उनकी नौकरी की विधिवत शुरुआत अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में उर्दू प्रवक्ता के रूप में हुई । जहॉ उन्होंने डाक्टरेट की डिग्री के बाद चार व-र्ा तक उर्दू साहित्य का प्राध्यापन किया ।

अलीगढ़ में रहते हुए ही राही जी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ गये थे । उनका मानना था कि 'साहित्य राजनीतिक नहीं होता । साहित्यकार किसी विचारधारा का ढिंढोरची भी

नहीं होता । परन्तु हर साहित्यकार का एक सामाजिक आधार होता है । यदि साहित्य का सामाजिक और राजनीतिक आधार न हो तो वह साहित्य नहीं रह जाता' । [5] तथापि वह किसी भी पार्टी के अंधानुयायी नहीं थे क्योंकि उनके सरोकार बहुत बड़े थे । इसलिए कम्युनिस्टों ने केरल में जब मुस्लिम लीग से चुनावी गठबंधन किया तब राही जी ने इसका खुलकर विरोध किया । वे मुस्लिम लीग सहित सभी साम्प्रदायिक पार्टियों के सर्वदा आलोचक रहे । जिस राजनैतिक दल का भी साम्प्रदायिक दलों से संबंध रहा, वे उसके कटु आलोचक रहे । धर्म, क्षेत्र और जाति को बढ़ावा दिए जाने पर वे खेद व्यक्त रहे । उनका मानना था कि धर्मनिरपेक्ष कहे जाने वाले दल भी इन प्रवृत्तियों के उन्नायक रहे हैं । विभिन्न दलों के लोग जाति के आधार पर संगठित हो रहे हैं । इन प्रवृत्तियों को वे राष्ट्रीय एकता और जनहित के विरोध में देखते रहे । राही जी हमेशा भारतीय जाति की बात करते रहे । जीवन भर उन्होंने इसी भारतीयता को ध्यान में रखकर कार्य किया । साम्प्रदायिकता और जातिवाद की राजनीति करने वाले हर व्यक्ति और दल की उन्होंने खुली आलोचना की । उनकी स्पष्ट राय थी कि धर्म, भाषा और संकीर्ण प्रान्तीयता की आड़ में ये राजनेता सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं । न उन्हैं धर्म से दिलचस्पी है, न भाषा से और न प्रान्त के विकास से । अलीगढ़ में रहते हुए उन्होंने मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध में लिखा तो मुम्बई जाकर उन्होंने शिवसेना तथा भारतीय जनता पार्टी के कथित संकीर्ण रवैये तथा साम्प्रदायिकता की बराबर आलोचना की ।

राही जी ने उन बुद्धिजीवियों की भी खबर ली है जो किसी पुरस्कार प्राप्ति हेतु अपना रचनाकर्म करते हैं और अपनी स्वार्थ साधना में लीन रहते हैं । वह कहते हैं 'बुद्धिजीवियों ने, साहित्यकारों ने, विचारकों ने, इतिहासकारों ने इमर्जेंसी लगने के बाद डर के मारे जो चुप्पी साधी थी वह चुप्पी अभी तक नहीं टूटी है । किसी को नेहरू अवार्ड लेना है, किसी को प्रोफेसर बनना है, सब अपनी खुदग़र्जी की अंधेरी चढ़ाए सर खींचे पड़े हुए हैं । कोई बोलने में पहल करने पर तैयार नहीं क्योंकि साहित्य अकादमी का पुरस्कार देश की अखण्डता से ज्यादा कीमती है ।' [6]

7 मार्च 1967 को राही जी अलीगढ़ से फिल्म लेखन के लिए सर्वदा के लिए मुम्बई आ गए । राही जी का अलीगढ़ छोड़ना और मुम्बई जाना कोई स्वेच्छया नहीं था । वे अपने अलीगढ़ छोड़ने और मुम्बई जाने के वि-ाय में कहते हैं 'जब मेरा विवाह हुआ

[5] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज़ कहने का मोड़, संकलित डॉ कुंवरपाल सिंह, आवरण फ्लैप
[6] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम, संकलित डॉ कुंवरपाल सिंह, पृ0 64

तो मेरे विभागाध्यक्ष की उस पर बिना मतलब के आपत्ति हुई जिसको मैं सहन न कर सका । उन्होने मुझे या तो नौकरी करने को कहा या लड़की के साथ चले जाने को और मैं विभाग छोड़कर बम्बई आया । .....मैं फिल्मी जगत में जिन्दा रहने के लिए आया हूँ । फिल्म जगत मुझे रोटी खिला रहा है । हमारा देश अधिक पढ़ा लिखा नहीं जो मेरी कृतियों को पढ़ सके । इसलिए फिल्मों में लिखना आरम्भ किया । 1500 फुट की फिल्म से मैं 40-50 फुट की चोरी अपनी बात कहने और उसे सम्प्रेषित करने के लिए कर लेता हूँ । निर्माता को भी इसका भास नहीं होता और मेरा भी काम चल जाता है' । [7] उनके उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी' से उनकी उस समय की ब्यथा एक वक्तव्य से ध्वनित होती है । राही जी कहते हैं - 'कई बरस के बाद जब मुझसे आले अहमद सुरूरों और डॉक्टर नूरुल हसनों और अलीयावर जंगों जैसे घटिया लोगों ने अलीगढ़ छुड़वा दिया और मैं बम्बई आ गया तब भी मुझे हिम्मत का ख्याल न आया क्योंकि मैं रोटी की तलाश में था' । [8] तथापि फिल्मी चकाचौंध, ख्याति, सम्मान और धन लालसा ने राही जी को कभी अलीगढ़ से जुदा नहीं किया । राही जी जैसे संवेदनशील लेखक को मुम्बई में मानसिक, आर्थिक और सामाजिक हर तरह का संघर्ष करना पड़ा । वे न तो कठिनाइयों के सामने झुके और न उन्होंने संघर्ष से कभी मुँह मोड़ा । उन्होंने फिल्म नगरी में रहकर भी अपने सम्मान और अस्मिता की रक्षा की । वेद व्यास के महाभारत की पुनर्रचना करके देश के हर परिवार तक पहुँचा दिया । यह काम राही जी के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं कर पाया था ।

हिन्दी उर्दू के इस अज़ीम लेखक-अदीब का 15 मार्च 1992 को प्रातः 10 बजे मुम्बई में 64 वर्ष की आयु में ही स्वर्गवास हो गया । [9] राही जी की मृत्यु हिन्दुजा अस्पताल मुम्बई में उनके सीधे जबड़े में हुए कैंसर के कारण हुई थी । उन दिनों रमजान शरीफ का पवित्र माह चल रहा था और इस्लाम में ऐसी मान्यता है कि इस माह में जिसकी मृत्यु हो उससे कयामत तक दुनिया के कर्मों का हिसाब-किताब नहीं होता । अगर इसे सच माने तो सिद्ध होता है कि वे नेक थे और अल्लाह भी उनके नेक होने को स्वीकार करता है ।

---

[7] आकाशवाणी श्रीनगर से प्रसारित डॉ राही मासूम रज़ा से भेंटवार्ता, 21 मार्च 1981 (रात 9.30 पर) डॉ दिलशाद ज़ीलानी, साठोत्तरी हिन्दी के मुस्लिम उपन्यासकार, पृ0 47-48 से उद्धृत

[8] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 102

[9] प्रतियोगिता दर्पण (मासिक), मई 1992

राही जी के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए साहित्यकार-पत्रकार कन्हैयालाल नन्दन ने कहा था 'राही मासूम रज़ा की मृत्यु के साथ हिन्दी और उर्दू का एक बौद्धिक पुल बनाने वाला साहित्यकार चिन्तक, अपने परिवेश के प्रति एक सतत जागरूक रचनाकार, अपने समाज के दायित्वों के प्रति संघ-र्शील, जुझारू व्यक्तित्व, साम्प्रदायिकता और सांस्कृतिक वैमनस्य की जड़ों पर जमकर कुल्हाड़ा चलाने वाला और इंसानियत के ज़ख्मी पंखों पर संवेदना के मरहम की सहलाहट बिखेरने वाला एक बेहद प्यारा इंसान हमारे बीच से चला गया । अपने परिवेश के प्रति जागरूकता और उसके सन्दर्भ में अपने दायित्व बोध की अभिव्यक्ति की जो तीव्रता और त्याग मैंने उनमें पायी, वह बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है ' ।[10]

2. व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन : जनमानस में राही जी का व्यक्तित्व लोकप्रिय फिल्मों के सबसे प्रतिि-ठत संवाद लेखक और उससे बढ़कर धारावाहिक महाभारत के पटकथाकार के रूप में प्रसिद्ध है । अख़बारों में विचारोत्तेजक लेख और टिप्पणीकार के रूप में राही जी पत्रकारिता जगत में भी प्रतिष्ठित रहे हैं । किन्तु यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि राही जी ने अलीगढ़ से एम.ए., तदुपरान्त डॉक्टरेट करने के साथ-साथ लिखना प्रारम्भ किया । राही जी उस समय संवाद और कहानी नहीं, अपितु ग़ज़लें और नज़में लिखते थे । उनका गला बड़ा सुरीला था । राही जी की ग़ज़लों और नज़मों में एक कुँवारी ताजगी थी इससे वे छात्रों में तो लोकप्रिय थे ही; छात्राओं में भी इस जिन्दादिल नौजवान शायर के चर्चे थे जो विचारों में वामपन्थी थे और धार्मिक कट्टरता जिसे छू तक नहीं गई थी । कट्टरता को वे देशद्रोहिता मानते थे और जिस किसी से जब-तब वे बहस में उलझ जाते थे । मित्रता और राजनीतिक नि-ठा इतनी कि हर समय सर तक कटाने को तैयार रहते थे ।

राही जी का बाह्य व्यक्तित्व अपने आप में एक विशेष आकर्षण लिए हुए था सफेद बाल, गेहुँआ रंगत लिए हुए भरा बदन, मध्यम कद, आक-र्क फ्रेम वाला चश्मा, होठों पर पान की लालिमा युक्त मुस्कुराहट, सफेद तनज़ेब का कुर्ता अथवा शेरवानी, अलीगढ़ कट पायजामा, बाएँ पैर में हल्की-सी लॅगड़ाहट, चेहरे पर अदम्य आत्मविश्वास की झलक । संक्षेप में यह तस्वीर है हिन्दी उर्दू के प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं जाने माने पटकथा तथा संवाद लेखक डॉ0 राही मासूम रज़ा की ।

[10] सण्डे मेल, 22 से 28 मार्च, 1992

प्रसिद्ध लेखिका एवं साहित्यकार धर्मवीर भारती की धर्मपत्नी पुष्पा भारती ने बहुत सजी भाषा में राही जी के व्यक्तित्व का शब्द चित्र उकेरा है - 'किसी छोटे तालाब में एकदम साफ निथरे हुए पानी में किलोल करती चटुल मछलियां देखी हैं आपने । बड़ी चपल लगती हैं न वे; लेकिन मासूम भी तो उतनी ही दीखती हैं । बस, वैसी ही मासूम चाल, बतियाती-सी आंखें और बोलते समय कोरों को दबाकर गोल हो जाने वाले होंठ; गोया दूधिया बचपन अभी तक उनके बीच टिका बैठा है । सिर पर बड़ी बेतरतीबी से बेफिक्र बिखरे झकाझक सफेद बालों से जिसके भीतर का बेलौस खुलापन नजर आ जाए, उस बड़े प्यारे से शख्स का नाम मालूम है आपको ! जी हॉ, वही तो हैं राही मासूम रज़ा साहब ।

हाथ में कभी मखमल, तो कभी क़ीमख़ाब, तो कभी जरदोजी का बटुआ थामे, अजब, अॅगरखानुमा शेरवानी के बन्द सायास खोले हुए ताकि भीतर पहने मखमल के कुर्ते का बारीक पत्तियों वाला अलीगढ़ी काम नजर आए, जरा टेढ़े क़दमों से चलते हुए जब आपको नजर आऐंगे तो मुॅह से बेसाख्ता निकलेगा, वल्लाह ! क्या बांकी अदा है? पर उनकी शख्सियत को यह बांकपन दिया है उनके कमजोर पॉव ने; जो निरे बचपन में ही दगा दे गया था '।[11]

राही जी घनि-ठतम मित्र साहित्यकार धर्मवीर भारती ने उनके समूचे व्यक्तित्व को इन शब्दों में बांधा है - 'सफेद तनजेब के कुर्ते में खुलता गेहुॅआ रंग, हॅसती हुई ऑखों वाला, अलकाव-आदाब में पूरी तरह चुस्त-दुरुस्त, मीठे स्वभाव का लेकिन अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ , बेवाकी से सोचने वाला, हिम्मत से अपने को व्यक्त करने वाला ' ।[12]

राही जी धर्म को व्यक्तिगत चीज मानते थे क्योंकि उनका मानना था कि धर्म एक निश्चित समय और समाज में पैदा होता है । समय एवं समाज आगे बढ़ता है, लेकिन धर्म नहीं । जब धर्म पिछड़ जाता है तो वह समय और समाज को पीछे खींचता है । राही जी के लिए रा-ट्रीयता ही धर्म था । उन्होंने अपनी पुत्रवधू पार्वती महाजन का धर्म परिवर्तन नहीं होने दिया । राही जी के आवास का नाम 'देवदूत' है

[11] पुष्पा भारती - जो स्वयं समय है - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 5 अप्रैल, 1992, पृ0 52

[12] डॉ धर्मवीर भारती, कुछ चेहरेःकुछ चिन्तन, पृ0 182

। जहॉ पार्वती खान ने एक छोटा सा मन्दिर बना रखा है । इस मन्दिर में पूजा करती हैं । राही जी का कहना था 'धर्म एक व्यक्तिगत चीज है । मैं मुसलमान हूँ तो शौक से अपने घर में नमाज पढ़ूँ; आप हिन्दू हैं तो शौक से अपने घर में पूजा करें । सड़क जो है वह सेकुलर है हमारा फर्ज है कि हम धर्म को धकेलकर घरों में बन्द कर दें तब यह देश बचेगा । मेरी भूख और आपकी भूख में क्या अन्तर है? भूख धर्मनिरपेक्ष है, बेरोजगारी धर्मनिरपेक्ष है, सड़क धर्मनिरपेक्ष है । चूंकि ये बुराइयॉ धर्मनिरपेक्ष हैं; इसलिए इनसे लड़ने वाली ताकत को भी धर्मनिरपेक्ष होना पड़ेगा' [13]

इस मानवतावादी साहित्यकार की दृष्टि स्पष्ट और तेज थी वे साहसी वक्तव्य देने में कबीर की परम्परा को निभाते दिखाई देते हैं । राही जी की भारतीय संस्कृति में गहरी पैठ थी । परम्परागत भारतीय मानस को वे गहराई से समझते थे । मानवीय संबंधों की प्रगाढ़ता, उनकी जटिलता और तनाव को वे बारीकी से समझते थे । महाभारत जैसी कथा को संस्कृतनिष्ठ भाषा में बड़ी स्वच्छ और पारदर्शी अभिव्यक्ति देने में वे वे पूर्णतः सक्षम रहे । जिसने तथाकथित बड़े-बड़े पण्डितों की चूलें हिला दीं । प्रो0 चमनलाल के शब्दों में राही के मानवतावादी विचारों की मूल प्रेरणा समाजवादी विचारों से ही आई है यद्यपि वे घोि-त रूप से मार्क्सवादी नहीं लेकिन जीवन को देखने व साहित्य में उसे अभिव्यक्त करने की उनकी समझ मार्क्सवादी विचारों के निकट ही है'।[14]

इस प्रकार राही जी के व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन की सर्वप्रमुख विशे-ता उनकी भारतीयता है । वे भारतीय पहले हैं और मुसलमान बाद में । कदाचित् यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि वह मात्र भारतीय हैं, मुस्लिम परिवार में उनका जन्म भर हुआ है । राही जी आजीवन एक सही भारतीयता की खोज करते रहे । उन्होंने प्रतीक पुरु-ा के रूप में हिमालय की ऊँचाइयों में विचरण करने वाले महायोगी महादेव को चुना । राही जी की इस भारतीयता और साहसी अन्दाज को देखकर ही हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ. नामवर सिंह ने कहा था 'डॉ0 राही मासूम रज़ा का नाम हिम्मत ग़ाज़ीपुरी होना चाहिए था बतर्ज 'हिम्मत जौनपुरी' । लेकिन इस समय मेरे जेहन में राही का वह नाविल नहीं, 'गंगा और महादेव' शी-र्क कविता का यह टुकड़ा है

मेरा नाम मुसलमानों जैसा है

---

[13] साक्षात्कार (धर्म को धकेलकर घरों में बंद कर दें), धर्मयुग, 1 मई 1991, पृ0 18

[14] डॉ चमन लाल, प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, पृ0 67

मुझको कत्ल करो और मेरे घर में आग लगा दो
लेकिन मेरी रग-रग में गंगा का पानी दौड़ रहा है ।

हर-हर महादेव का नारा लगाकर हमला बोलने वालों को इस तरह ललकारना हिम्मत का काम है और कबीर के बाद ऐसी हिम्मत मुझे सिर्फ राही में दिखाई पड़ी । राही में यह हिम्मत इसलिए है कि वे इसी तरह 'अल्लाह हो अकबर' के नारेबाज जेहादियों को भी चुनौती देते हैं; एकदम कबीर की तरह' ।[15]

3. साहित्यिक दृष्टि : राही जी को साहित्यिक वातावरण आरम्भ से ही अनुकूल मिला था । उनका परिवार साहित्य एवं कला में रुचि रखता था । अतः वे अपने आरम्भिक जीवन में ही साहित्यिक क्षेत्र में सक्रिय हो गए । राही जी ने एक शायर के रूप में अपने लेखन की शुरूआत की । 'राही' उपनाम उन्होंने इसीलिए रखा था जो पहल उनके मूल नाम के बाद मासूम रज़ा 'राही' हुआ । यह नाम उनकी काव्य रचना 'अट्ठारह सौ सत्तावन' की समीक्षान्तर्गत 'कल्पना' मासिक[16] में पुस्तक समीक्षाकार ने लिखा है । इसके बाद उनका यह सहित्यिक उपनाम उनके मूल नाम के पूर्व ही लिखा हुआ मिलता है । उन्होंने एक लेख में अपने उपनामेतिहास पर विचार करते हुए लिखा है 'अभी तो मुझे यह बात याद है कि मैं कोई पॉंच-छः साल पहले तक अच्छे शेर लिखा करता था । थोड़े दिनों बाद शायद मैं ही यह बात भूल जाऊँ और किसी से पूछूं कि भाई यह मेरे नाम के आगे राही क्यों लगा हुआ है' [17] मासूम शब्द का अर्थ उनके 'आधा गॉंव उपन्यास में पाप रहित बताया गया है और रज़ा उनका पारिवारिक अभिधान है । रज़ा का तात्पर्य अभिलाषा भी विदित है । अतः राही मासूम रज़ा का अर्थ हुआ पथिक की नि-पाप अभिलाषा । इस प्रकार राही जी का नाम अर्थपूर्ण है और उनका जीवन उस नाम को सार्थक बनाता है ।

राही जी की पहली प्रकाशित रचना एक कहानी है जो 'तन्नू भाई' के नाम से 1944 में लाहौर के एक रिसाले 'नफसियात' में छपी थी । इसके संपादक शेरमुहम्मद अख्तर थे । कई कहानियों के लेखन के पश्चात उन्होंने हवलदार अब्दुल हमीद की

---

[15] डॉ भगवान सिंह - जिसकी रग-रग में गंगा का पानी था (पुण्य स्मृति) इण्डिया टुडे, 15 अप्रैल 1992

[16] कल्पना, मार्च-अप्रैल 1976, पृ0 76

[17] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम, संकलित डॉ कुंवरपाल सिंह, पृ0 72

जीवन कथा को लेकर एक जीवनी 'छोटे आदमी की बड़ी कहानी' लिखी । तदुपरान्त उनका बहुचर्चित उपन्यास 'आधा गांव' 1966 में प्रकाशित हुआ जिससे राही का नाम उच्चकोटि के उपन्यासकारों में गिना जाने लगा ।

इसके बाद राही जी ने मुम्बई की फिल्मी दुनिया में एक सफल तथा समृद्ध कहानीकार, संवाद और पटकथा लेखक के रूप में अपनी पहचान स्थापित की । वे अपनी लेखकीय भावनाओं को रेडियो तथा समाचार पत्रों द्वारा भी अभिव्यक्त करनते रहे । फिल्मों के लिए लेखन को राही घटिया काम नहीं समझते थे क्योंकि इस माध्यम से वे सामाजिक और राजनीतिक धरातल पर सटीक उतरने वाले कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति कर देते हैं । अन्य किसी व्यवसाय के समान ही व ेलेखन को भी एक व्यवसाय मानते रहे । राही जी की प्रमुख फिल्में हैं -

दुल्हन वही जो पिया मन भाए
अंखियों के झरोखों से
दामाद
गोलमाल
मैं तुलसी तेरे आंगन की
पति, पत्नी और वो
एक ही भूल
जुदाई
विदाई तथा
मेंहदी रंग लाएगी ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक धारावाहिकों की कथा, पटकथा तथा संवाद लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं - विश्वामित्र, पंचतंत्र, चुन्नी, सौदा, ऊँ नमः शिवाय, उजाले की ओर, कहां गए वे लोग, बहादुरशाह ज़फर, संकल्प, चंद्रकान्ता की प्रारंभिक 22 कड़ियां आदि जो दूरदर्शन पर प्रसारित हो चुके हैं दूरदर्शन पर प्रसारित धारावाहिक 'नीम का पेड़' को उन्हीं के पटकथा लेखन के कारण प्रसिद्धि मिली है । 'यन्न भारते तन्न भारते' जैसे विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत की कथा को धारावाहिक के रूप में राही जी ने उतारा । यह प्रख्यात जनप्रिय धारावाहिक किसी धार्मिक धारावाहिक के सर्वाधिक प्रसार का कीर्तिमान स्थापित कर 'गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड' में सम्मिलित हो चुका है । उन्होंने इसकी कथा के अनुरूप भाषा गढ़ी । महाभारत की भा-ाा भवि-य के धारावाहिकों के लिए मानदण्ड बन गई । परिवार और समाज के लिए आवश्यक मूल्यों को 'महाभारत' के विभिन्न चरित्रों के माध्यम से विभिन्न अवस्थाओं में अच्छी तरह व्यक्त किया गया । महाभारत में हमें जीवन की सारी संभावित स्थितियां

और भावनाएं दिखाई पड़ती हैं । 'रामायण' एक आदर्श कथा है तो 'महाभारत' जीवन कथा; जिसमें राग-द्वे-ा, छल-कपट, प्रेम-भ्रातृत्व, घृणा-वैमनस्य आदि सभी भावों का समावेश है ।[18] कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ राही मासूम रज़ा ने इसकी भव्यता और लोकप्रियता का मानदण्ड जनता के बीच स्थापित किया ।

आधुनिक साहित्य जगत में राही की प्रतिभा उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार, निबंधकार एवं काव्यकार इत्यादि रूपों में प्रकट हुई है जैसे -

क. निबंध - उर्दू की शमा पत्रिका, गंगा, रविवार (कोलकाता),नवभारत टाइम्स (दिल्ली) आदि अनेक पत्र पत्रिकाओं में राही जी के अनेक निबंध एवं आलेख प्रकाशित होते रहे हैं जिनमें जीवन, समाज तथा सांस्कृतिक चर्चाओं की खुलकर विवेचना की जाती रही है । विषय वस्तु में ये लेख व्यापक महत्व रखते हैं । इनमें से राही जी के कई आलेखों, व्यंग्य निबंधों एवं पत्रों के संग्रह नवीनतम पुस्तकों के रूप में निकले हैं । उनमें हैं -

खुदा हाफ़िज़ कहने का मोड़ (1999)
लगता है बेकार गए हम (1999)
ग़रीबे शहर (2001)
सिनेमा और संस्कृति (2001)
शीशे के मकान वाले (2001)

ख. कहानियॉं - 'सारिका' पत्रिका में राही की अनेक कहानियॉं प्रकाशित हुई हैं जैसे एम.एल.ए. साहब (मार्च 1975), चम्मच भर चीनी (दिसम्बर 1976), खलीफ अहमद बुआ (दिसम्बर 1978), सपनों की रोटी (नवम्बर 1980) इत्यादि ।

ग. रेखाचित्र - 'छोटे आदमी की बड़ी कहानी' नाम से 1966 में प्रकाशित पुस्तक में हवालदार अब्दुल हमीद का रेखाचित्र बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

[18] दैनिक जागरण नई दिल्ली, 10 दिसंबर 1999, पृ0 14 आलेख - अजय ब्रह्मात्मज

घ. काव्य –

(क) उर्दू रचनाएँ : नया साल (1954)
मौजे-गुल : मौजे-सबा (1954)
रक्से-मय(1964)

(ख) हिन्दी रचना : मैं एक फेरी वाला (1976)

(ग) हिन्दी-उर्दू रचना : अट्ठारह सौ सत्तावन (1965)

च. उपन्यास – राही के अधोलिखित हिन्दी उपन्यासों के अतिरिक्त एक उर्दू उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' (1950) प्रकाशित हुआ है । उनके हिन्दी उपन्यास हैं

आधा गॉव (1966)
हिम्मत जौनपुरी (1969)
टोपी शुक्ला (1969)
ओस की बूँद (1970)
दिल एक सादा काग़ज़ (1973)
सीन : '75 (1977)
कटरा बी आर्जू (1978) तथा
असन्तोष के दिन (1986)

इनके अतिरिक्त राही जी के अप्रकाशित हिन्दी उपन्यास हैं; मास्टर ब्रजमोहन की कर्मभूमि एवं चुटकी भर धूप ।[19] उनके एक अन्य हिन्दी उपन्यास 'अजनबी शहर : अजनबी रास्ते (1977) का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है, परन्तु वह देखने में नहीं आया है । यद्यपि इस नाम का उनका एक उर्दू कविता संग्रह अवश्य है ।

[19] डॉ राही मासूम रज़ा के घनिष्ठ मित्र डॉ कुँवरपाल सिंह से 25.9.2001 को शोधकर्ता से हुई बातचीत पर आधारित

इस प्रकार राही ने उर्दू एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में साहित्य रचना करके उनके बीच की दूरी को कम करने का अथक प्रयत्न किया ।

राही जी ने अपनी कृतियों में सदैव सत्य को प्रकट करना चाहा है । उनका सत्य स्वयं उनके वातावरण के लिए भी कटु रहा है । उनके तेवरों को शब्दों में नहीं ढाला जा सकता । डॉ धर्मवीर भारती लिखते हैं 'जिसकी वजह से उनका लेखन कहीं भी हो, मैं पहचान सकता हूँ । ये और कोई नहीं सिर्फ राही हो सकते हैं' ।[20] राही के इन्हीं तेवरों के चलते डॉ भारती ने भारतेन्दु कथित 'इन मुसलमान हरि जनन पर कोटिन हिन्दू वारिये' को राही पर भी सटीक समझा और परखा है । भारती जी आगे मैं एक फेरी वाला की भूमिका में लिखते हैं 'अन्दर से गहरे सैद्धान्तिक विश्वास (स्थायी जीवन दर्शन) जब केवल वैचारिक न रहकर जिन्दगी जीने की पूरी शैली बन जाते हैं और अपने को उन तमाम संस्कारों से संबद्ध कर लेते हैं जो बचपन से कैशोर्य तक खानपान और आसपास के परिवेश में पिले हों तो एक ख़ास क़िस्म का तेवर व्यक्तित्व में आ जाता है, वह तेवर ओढ़ा नहीं होता; वह समूचे व्यक्तित्व की स्थायी अभिव्यक्ति बन जाता है, आचरण में भी; लेखन में भी ।'[21] राही की साहित्यिक दृष्टि उनके इसी व्यक्तित्व की उपज है । जिससे उनका गंभीर और विराट साहित्य पाठक के मन में एक हलचल और संघर्ष उत्पन्न कर देता है ।

डॉ राही मासूम रज़ा को 1991 में दिल्ली की एक संस्था की ओर से 'एकता अवार्ड' प्रदान किया गया । उन्हें उनकी फिल्मों - 'मैं तुलसी तेरे ऑगन की'; 'तवायफ' एवं 'लम्हे' - में पटकथा एवं संवाद लेखन के लिए फिल्मफेयर पुरस्कार से सम्मानित किया गया । इनके अतिरिक्त वे सेंसर बोर्ड के सदस्य रहे । राही 1952-53 में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा हिन्दी-उर्दू विवाद पर गठित एक आयोग के भी सदस्य रहे ।

4. उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय : राही जी के कुल आठ प्रकाशित हिन्दी उपन्यास हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय उनके प्रकाशन क्रम में अधोलिखित रूपेण है -

क. आधा गॉव : 1966 में सर्वप्रथम अक्षर प्रकाशन से प्रकाशित यह उपन्यास राही जी की प्रथम किन्तु सर्वप्रधान कृति है । 'आंचलिकता का जैसा सघन प्रयोग इस

---

[20] डॉ राही मासूम रज़ा, मैं एक फेरी वाला (भूमिका), पृ0 7

[21] डॉ राही मासूम रज़ा, मैं एक फेरी वाला (भूमिका), पृ0 8

कृति में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।'[22] इस उपन्यास में राही ने शिया मुसलमानों के दस परिवारों को ग़ाज़ीपुर के गंगौली नामक वास्तविक गॉव की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण उपन्यास गंगौली के आधे भाग (मुस्लिम बस्ती : उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी) से संबंधित होने के कारण यह आधे गॉव की कथा है ।[23] साथ ही हमारे विचार से इस उपन्यास में देश विभाजन की टीस सर्वत्र परिलक्षित है जिससे यह उपन्यास आधा गॉव की कथा कहता है । इस दृष्टि से भी उपन्यास की नाम सार्थकता स्वयंसिद्ध है । लेखक ने स्वयं को तथा अपने परिवार के पात्रों को उपन्यास में ऐसा मिला दिया है कि वास्तविक एवं काल्पनिक पात्रों को अलग कर पाना कठिन है ।

राही ने इस उपन्यास में 1937 से लेकर 1952 तक की 15 वर्षों की घटनाओं और गंगौली के शिया मुसलमानों पर उनके प्रभावों की अन्विति की है । 'वर्तमान भारत के इतिहास के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल का राही ने ग्रामीण जीवन की जीवन्त धड़कनों, सामाजिक स्थिति के बदलावों, संबंधों के खोखले दृश्यों की ज़िन्दगी की धड़कती धुनों की खनक सुनाई है । शिया मुसलमानों की ज़िन्दगी के सूक्ष्म गहन स्पन्दनों को इसमें कहा भर नहीं गया है, बल्कि अनुभवों की कलात्मक सघनता से महसूस कराया गया है ।'[24]

गंगौली के प्रति अत्यधिक लगाव के बावजूद राही जी ने देवेन्द्र सत्यार्थी एवं राजेन्द्र अवस्थी की भॉति अपने गॉव को भोले-भाले, सरल एवं ईमानदार ग्रामवासियों का स्वर्ग नहीं बनाया है । बल्कि उपन्यासकार ने बड़ी निर्ममता से अपने समाज की झूठी एवं खोखली धार्मिकता का पर्दाफाश किया है । गंगौली की ग्रामीण चेतना अन्य आंचलिक उपन्यासकारों की चेतना से किंचित भिन्न है ।[25] यह कथा तन्नू, जद्दन, मिग्गे, दिलशाद जैसे गुब्बारों की कथा है । जिनकी डोर वतन के हाथों से खिसक गई है और जो एक दोग़ली ज़िन्दगी जीने को अभिशप्त है ।

---

[22] डॉ सुरेन्द्र प्रताप यादव, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और सामाजिक चेतना, पृ0 214

[23] डॉ नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 764

[24] डॉ पारूकान्त देसाई, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, पृ0 88

[25] डॉ नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 766

उपन्यास में परंपरावादी गॉव के जीवन से अलग नए सामाजिक जीवन की पहचान कराने वाला प्रतीक सुखरमवा चमार का बेटा है जो एम.एल.ए. हो गया है । वह जीप पर चलता है, पक्की हवेली में ठनकता है । गंगौली में मोहर्रम के दृश्य परंपरागत जीवन पद्धति के असली प्रतीक हैं । मोहर्रम की चमक का फीका होते जाना मुस्लिम समाज के निस्तेज होते जाने का संकेत है । सरसरी दृष्टि से ग्रामीण जीवन को देखने वाले रचनाकार ने मिगदाद, सैफुनियां, फुन्नन मियां, कुलसुम, हकीम साहब और जयपाल सिंह जैसे जिन्दा पात्रों की सृष्टि की है । यह कलात्मक निर्वाह हिन्दी उपन्यासों से एकदम अलग है । इसी से समीक्षकों की दृष्टि में नितान्त नया प्रयोग है

यह उपन्यास भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से (मुस्लिम समाज) के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को आधार बनाकर यह स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है कि यह देश; इसमें बसे सभी नागरिकों - चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, सिख हों या ईसाई, बौद्ध हों या पारसी; सबका समान रूप है ।

राही जी ने इस उपन्यास में एक अनोखी कथा भाषा का आविष्कार किया है । इसमें परंपरागत रूप से हिन्दी के मात्र 22-23 शब्द हैं फिर भी यह हिन्दी का एक उत्कृष्ट उपन्यास है । इसके कुछ पात्र ऐसी लोकभाषा का प्रयोग करते हैं जो सामान्य भोजपुरी से भिन्न होती है तथा जो मुस्लिम परिवारों की बोली होती है । समीक्षकों ने इसे 'भोजपुरी उर्दू' का नाम दिया । इसीलिए कथावस्तु के अतिरिक्त भाषा-शैली के आधार पर भी यह उपन्यास एक श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास कहा गया ।

ख. टोपी शुक्ला : राही का यह दूसरा उपन्यास 1969 में आया । जिसमें उन्होंने अपनी अनूठी शैली में हिन्दू-मुस्लिम समस्या को 'भारतीय या हिन्दुस्तानी' की परिभाषा के संदर्भ में देखकर दोनों संप्रदायों को अलग रखने के घिनौने प्रयत्नों को उघाड़ा है । इसीलिए इस उपन्यास को समीक्षकों ने 'दकियानूसी दृष्टिकोण की शल्यक्रिया' कहा है । उपन्यास का नायक बलभद्र नारायण शुक्ला है जिसे छात्र राजनीति में भाग लेने के कारण 'टोपी शुक्ला' कहा जाता है वह मानवताप्रेमी युवक है । 'उसे ऐसे स्वजनों से घृणा है जो वेश्यावृत्ति करते हुए ब्राह्मणपना बचा कर रखते है, पर स्वयं उससे इसलिए घृणा करते हैं कि वह मुस्लिम मित्रों का समर्थक और हामी है । अंत में टोपी शुक्ला ऐसे ही लोगों से कम्प्रोमाइज न कर सका और आत्महत्या कर लेता है ।[26]

[26] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, प्रकाशकीय कवर पृ0 2

टोपी के पिताजी भृगुनारायण फारसी के रसिया और मौलाना रूम के दीवाने थे और माता धार्मिक हिन्दू महिला थी । टोपी की संयोगवश एक मुसलमान कलक्टर के बेटे इफ्फन से घनिष्ठता हुई । बाद में दोनों अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में पुनः मिले । टोपी ने हिन्दी में एम.ए., पी-एच.डी. किया पर फिर भी बेकार रहे । बेकारी, बदनामी और अकेलेपन का अंत आत्महत्या के साथ हुआ । इस उपन्यास के कथानक में 1937 से लेकर 1963-64 तक का काल अंतर्भुक्त है ।

मूल बात यह है कि आज देश में जगह-जगह 'टोपी शुक्ला' बिछे हुए हैं, अकेले और टूटे हुए हैं । 'टोपी शुक्ला' में स्वाधीनता के बाद भारतीय जीवन की राजनीतिक-सामाजिक गिरावट, मूल्यहीनता, सांप्रदायिकता, ईमानदारी की खराब हालत के साथ सामूहिक रूप से सामाजिक जीवन की बढ़ती कुरूपता को प्रस्तुत किया गया है ।[27]

इस उपन्यास की भाषा साधारण किन्तु प्रवाहपूर्ण है । बीच-बीच में अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग भाषा की गतिमानता में चार चॉद लगाता है । 'आधा गॉव' की लोकभाषा की दूरूहता से उपन्यास दूर रखा गया है । उर्दू शब्दों की भी उतनी प्रचुरता नहीं, जितनी 'आधा गॉव' में है ।

ग. हिम्मत जौनपुरी : राही जी का यह तीसरा उपन्यास है जो 1969 में प्रकाशित हुआ । हिम्मत जौनपुरी में एक ऐसे व्यक्ति की जीवन कथा है जो निहत्था है और 'जीने का हक़' मांग रहा है, अस्तु । इसमें जीने के लिए संघर्षरत आज के आदमी की कहानी कही गई है ।

हिम्मत जौनपुरी वास्तव में ग़ाज़ीपुरी थे । हिम्मत के परिवार वाले अपने बेटों का विवाह जौनपुर में करते थे । हिम्मत के परदादा श्री दिलगीर जौनपुरी अपवाद थे । वे ग़ाज़ीपुर में ही ब्याहे थे । हिम्मत जौनपुरी को राही ने दुनिया के तमाम शरीफ लोगों की भॉति जन्मजात मूर्ख और फटीचर कहकर नागरिक नियति का संकेत किया है । हिम्मत सातवें दर्जे तक पढ़ा था, उसने बर्क़ की लिखी दो मसनवियां प्रकाशित कराईं । जबकि इन्हीं बर्क़ ने उसके पिता को जेल भिजवाया था । हिम्मत जैसा फटीचर; जिसके पास एक रुपया भी नहीं होता है किन्तु वह दिलीप कुमार जैसे फिल्म अभिनेता से अपनी फिल्म 'नींद का गॉव' साइन कराने का सपना देखता है । लीला चिटनिस से

---

[27] डॉ नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 767

प्रेम करने का सपना देखता है । मासूम की सहायता से जुबैदा को प्रेम पत्र लिखता है किन्तु अंत में उसके अपने ही दुश्मन हो जाते हैं ।

इस उपन्यास में परंपरा और संस्कृति को गहरी सूक्ष्म मानवीय भूमिका में समझा गया है । यहां घर फुटपाथ में बदल गए हैं और मनुष्य की व्यक्ति चेतना सामाजिक चेतना पर हावी हो गई है । जीवनी शैली में लिखे गए इस उपन्यास में लेखक ने दो सौ वर्षों में फैली हुई चार पीढ़ियों की कथा को समाहित किया है । इनमें से हर पीढ़ी परंपरा से विद्रोह करती है और बाद में परंपरा का ही हिस्सा बन जाती है । उसकी अगली पीढ़ी फिर उससे विद्रोह करती है ।

घ. ओस की बूँद : 1970 में छपे इस उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिकता की समस्या को उठाया है । समाजवादी यथार्थ से परिपूर्ण इस उपन्यास का विषय क्षेत्र 1932 के बाद का ग़ाज़ीपुर है जो न तो शहर के रूप में विकसित कस्बा है; न ही किसी गॉव के रूप में विकसित बस्ती । इस परिवेश में भी सांप्रदायिकता अपना प्रभाव डालने से नहीं चूकी ।

यह उपन्यास धार्मिक उन्माद का परिणाम बनकर मानवता के मस्तिष्क पर ताण्डव करती हुई उपन्यास में चिन्हित हुई है । अफवाहों के गर्म बाजार में हिन्दू और मुस्लिम मानसिकता अपना प्रभाव दिखाने से पीछे नहीं रही । रामअवतार द्वारा फेंके जाने वाले मंदिर के शंख को वज़ीर हसन कुएं में से निकालता है किन्तु दूसरे दिन समाचार पत्रों के माध्यम से वज़ीर हसन को मंदिर की मूर्ति तोड़ने के प्रयत्न में मारा जाना बता दिया जाता है । इस अमानवीयता का प्रकोप शहरों से होता हुआ ग्रामीण परिवेश में भी फैल गया है । वज़ीर हसन के पुरखों ने कुछ सौ वर्ष पहले इस्लाम धर्म स्वीकार किया था । इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पूर्व वज़ीर के पूर्वजों ने बीवी के कटरे में अपनी भूमि पर एक मंदिर बनवाया था । वज़ीर अब भी मंदिर की पूजा के लिए चंदा एकत्रित करके पुजारी नियुक्त करते आ रहे थे । अनेक अंतर्विरोधों के बावजूद वह सांप्रदायिक सद्भावना के लिए निरंतर प्रयास करते हैं । वह लोगों के बीच जाकर उन्हें भाईचारे के संदेश से अवगत कराते हैं । इस प्रकार वज़ीर हसन जीवन की वास्तविकता को प्रस्तुत करने के साथ ही आदर्श की छाप छोड़ते हैं । इस प्रकार यह उपन्यास 'दंगों के बीच सच्ची इंसानियत'[28] की एक झलक है ।

[28] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद प्रकाशकीय निवेदन

राही के पिता वशीर हसन की हवेली के अंदर भी एक कुआं था जिसका पानी बड़ा मीठा था । इस हवेली में एक मंदिर था जिसका पुजारी वशीर हसन ने ही नियुक्त कर रखा था । इस प्रकार यह कहानी राही जी के परिवार से संबंधित होकर वास्तविकता पर आधारित है ।

उपन्यास की भाषा 'आधा गॉव' की भॉति है जिसमें लोकभाषा के भोजपुरी पुट का प्राधान्य होता है । किन्तु बीच-बीच में अंग्रेजी भाषा का संमिश्रण 'आधा गॉव' की भाषा से इसे अलग करता है । उपन्यास का देश-काल और वातावरण 1942 से 1952 के बीच का है ।

च. दिल एक सादा काग़ज़ : 1973 में प्रकाशित हुए इस उपन्यास में मुम्बई के उस फिल्मी वातावरण की कहानी है जिसकी भूल-भुलैया व्यक्ति को भटका देती है और वह कहीं का नहीं रह जाता । इस उपन्यास में राही ने अनेक पात्रों और उनके चरित्र-चित्रण द्वारा अप्राकृतिक यौन संबंधों का विश्लेषण किया है । वह चाहे ज़बानी इश्क करने वाला चंचल हो या बाथरूम लवर तिरछे खॉ । अप्राकृतिक यौन संबंधों का एक रूप समलैंगिक यौनाचार भी है जिसकी व्याप्ति उपन्यासकार ने दिखाकर स्पष्ट किया है कि इस प्रकार की विकृतियां और वर्जनाएं भी इसी समाज की अंग हैं । राही ने इस कृति में रफ्फन तथा मौलवी तकी हैदर के बीच समलैंगिक व्यवहार का वर्णन किया है । इसी प्रकार राही ने ज़ैदी विला के बावर्ची अब्दुस्समद एवं एक नौकर शर्फुआ के बीच के घृणित व्यवहार तथा कुछ समय बाद शर्फुआ द्वारा बावर्ची को छोड़कर मौलवी साहब से संपर्क स्थापित करने के अनेक उदाहरणों से समाज में विद्यमान इस प्रवृत्ति का आकर्षक तथ्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है । यह एक भयंकर वैयक्तिक समस्या है । इस उपन्यास का देश-काल 1935-1936 से लेकर बांग्लादेश के निर्माण तक का है ।

छ. सीनः'75 : राही का यह उपन्यास 1977 में प्रकाशित हुआ जिसमें एक फिल्मी व्यवसाय से संबद्ध परिवार के मॉ बेटी दोनों एक ही पुरुष से अनैतिक संबंध रखते हैं और पातिव्रत्य संबंधी मान्यताओं को विश्रंखल कर पाप-पुण्य के संबंध से परे हटकर नए मूल्यों को उजागर करते हैं । नैतिक अवमूल्यन के कारण यौन संबंधों का यह खुलापन भावुक धरातल पर कम अपितु व्यावहारिक धरातल पर अधिक अवस्थित होता जा रहा है ।

उपन्यास की पात्र राधिका और उसकी बेटी पुष्पलता दोनों के अपने नौकर रामनाथ से अनुचित यौन संबंध और राधिका के पति अर्थात् पुष्पलता के पिता फन्दा

पटियालवी द्वारा यह सब देखने के बावजूद कुछ नहीं कहना; क्योंकि मजबूरियां कुछ उनकी भी हैं; उच्चवर्गीय परिवारों के ढकोसले को दिखाता है । उपन्यास की कथा को 1950 से प्रारंभ कर 1977 तक विभाजित किया गया है ।

फिल्म व्यवसाय को ही अपनाने वाले परिवारों में से एक सरला मिढ़ा और रमा मनचन्दानी के बीच स्त्री समलैंगिक संबंधों को भी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक रूप से उभारा गया है । उपन्यास में इन अप्राकृतिक यौन जिजीविषाओं का दुष्परिणाम आवेश में हत्या जैसे जघन्य अपराध के रूप में परिणत होते हुए दिखाया गया है ।

इस प्रकार इस कृति में राही ने अपने व्यवसाय अर्थात् फिल्मी जीवन के भीतरी व खोखले परिदृश्य को विविध कोणों से देख परखकर उसकी एक झलक दिखाई है ।

ज. कटरा बी आर्जू : इस उपन्यास की रचना राही ने देश पर आपातकाल थोपे जाने के बाद की थी । 1978 में प्रकाशित हुई यह कृति आपातकाल व इसके बाद की जनता सरकार के समय को अभिव्यक्त करती है । 'कटरा बी आर्जू' इलाहाबाद नगर की एक छोटी सी बस्ती है । इस मामूली कटरे की कहानी के माध्यम से राही उस समय के पूरे देश की दशा का वर्णन किया है । इसीलिए यह अपने समय की कहानी है । यह उन 'गूंगी बस्तियों' के 'गूंगे लोगों' की कहानी है । जहां 'उजाले' का कहीं नामोनिशान तक नहीं है । उपन्यास का कथा काल अपेक्षाकृत बहुत सीमित है । यह उपन्यास 1975 से 1977 तक के 18 माह के आपातकाल की कथा को इलाहाबाद को केन्द्र बनाकर बुनता है ।

इस उपन्यास में आम आदमी के प्रतिनिधि के रूप में देश और बिल्लो को प्रारंभ से उभारा गया है । ये दोनों अपना एक सपना पालते हुए बड़े होते हैं ; अपना एक घर होने का सपना । इस सपने को साकार रूप देने के लिए उन्हें जी-तोड़ संघर्ष करना पड़ता है । जब सफलता प्राप्त होने को होती है तो बुलडोजर उसे चकनाचूर कर देता है । अँधेरा; अँधेरा ही रह जाता है ।

अपने राजनैतिक रूप में होने के बावजूद इसमें कथा अंश कम नहीं है । उपन्यास में सर्जनात्मक रूप से आपातकाल की ज्यादतियों; विशेषतः परिवार नियोजन और शहरों के सौन्दर्यीकरण के नाम पर भयानक अत्याचारों का कथा-नियोजन किया गया है । आपातकाल के बाद जनता सरकार के दौरान भी पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार के समान रही देश की स्थिति उपन्यास में वर्णित है । पं0 गौरीशंकर पाण्डेय जैसे

भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण दोनों सरकारों में कोई गुणात्मक अंतर नहीं रह जाता । उपन्यास की कथा आपातकाल से पहले की पृष्ठभूमि में प्रारंभ होती है और 'जनता के उदय' पर आकर समाप्त होती है । आपातकाल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हिन्दी का यह एकमात्र अभिज्ञात उपन्यास है ।

इस उपन्यास की भाषा भी आधा गॉव की भॉति लोकभाषा संपृक्त है किन्तु इसमें भोजपुरी की जगह कथास्थलानुरूप अवधी प्रयुक्त की गई है । उपन्यास का शिल्प विरोधाभासपूर्ण और विशिष्ट है । इन्दिरा गॉधी का 'ग़रीबी हटाओ' आन्दोलन जो अपनी परिणति में ग़रीबों को ही हटाने का काम करता है । इस शिल्प को समीक्षकों ने अपनी सुविधा के लिए 'घूमते हुए कैमरे का शिल्प' कहा है ।

ज. असन्तोष के दिन : राही का यह अंतिम उपन्यास 1986 में प्रकाशित हुआ था जिसमें देश में बढ़ते सांप्रदायिक तनाव की चिन्ता दिखाई पड़ती है । प्रधानमंत्री इन्दिरा गॉधी की हत्या के बाद का तनाव अब तक का सबसे गंभीर तनाव है । इस प्रकार यह 31 अक्टूबर 1984 के बाद की कथा है । एक ओर दिल्ली में हिन्दू-सिख व हिन्दू-मुस्लिम तनाव है तो दूसरी ओर मेरठ और अहमदाबाद में हिन्दू-मुस्लिम तनाव । देश के अनेक भागों में ये सांप्रदायिक तनाव खतरनाक रूप धारण करते जा रहे हैं । इन्हीं खतरों की ओर राही ने सर्जनात्मक ध्यान खींचा है ।

उपन्यास की एक प्रमुख पात्र सैयदा दंगों के दौरान हिन्दुओं को गाली देती है किन्तु अपने हिन्दू नौकर राममोहन से अपने परिवार को उसकी झोपड़ पट्टी से बुलाकर अपने यहां शरण देती है । यही सैयदा गोपीनाथ बर्क़ औरंगाबादकर, जो साप्ताहिक 'नई आवाज़' का सहायक संपादक होता है, के मारे जाने पर रोती है । उपन्यास के पात्रों को राही ने उनकी पैदाइश से हिन्दुओं को मुसलमानों से तो मुस्लिमों को हिन्दुओं से उत्पन्न हुआ बताया है । उदाहरणार्थ गोपीनाथ बर्क़ की मां हीराबाई तो पिता अलाउद्दीन खां थे । इसी प्रकार ज़र्रीक़लम सैयद अली अहमद जौनपुरी के पुरखे मराठे और कट्टर हिन्दू थे । रेवती श्रीवास्तव और सलमा दंपत्ति की तसनीम और तहसीन दो बेटियां तथा एक बेटा मुज़तफा है । इसी प्रकार सैयदा और अब्बास (साप्ताहिक 'नई आवाज़' का संपादक) के बेटे माज़िद का एक हिन्दू कन्या संगीता से इश्क चल रहा होता है ।

इस प्रकार राही ने उपन्यास में इन प्रसंगों रखकर संदेश दिया है कि लोग भले ही धार्मिक दंगे भड़काएँ किन्तु सौहार्द और अमन पसंद व्यक्ति अपनी मानवीयता को बराबर रखता है और उसके लिए धर्म और जाति से बढ़कर मानवता अधिक प्रेय है ।

उपन्यास की भाषा को राही ने पात्र तथा प्रसंगानुकूल बनाया है । फ़ात्मा और माज़िद (सैयदा-अब्बास के बेटी-बेटे) अंग्रेजी जानते हैं; हिन्दी और उर्दू नहीं । सैयदा देवनागरी लिपि नहीं जानती किन्तु हिन्दी-उर्दू जानती है । इस प्रकार की परिस्थितियां निर्मित कर राही हिन्दी-उर्दू निकटता और स्वभाषा प्रेम का परिचय देते हैं ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि राही के उपन्यासों की कथावस्तु अर्थगांभीर्यपूर्ण एवं मौलिक है । उनका कोई उपन्यास सतही नहीं है । लेखक का यथार्थ बोध उसके व्यक्तिगत वैभव को दर्शाने वाला तथा दिशाहीन समाज को दिशा देने के लिए व्यग्र है । राही के उपन्यास एक ऐसे यथार्थ का अनुभव करा जाते हैं जो मानवता के प्रकोप में पैर जमाती हुई विध्वंसक स्थितियों का चारित्रिक स्वरूप है । राही ने अपने भोगे हुए यथार्थ को ईमानदारी से चित्रित किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित समस्याओं के निदान का उपाय भी ढूँढ़ा है । 'आधा गॉव' से लेकर 'असन्तोष के दिन' तक राही विद्रूप समाज को दिशा देने का निरंतर प्रयत्न किया है । उनके उपन्यासों में गॉव से कस्बा तथा कस्बा से शहर में विकसित होते समाज का स्पष्ट चित्रण दिखाई देता है ।

5. उपन्यासकार का समकालीन परिवेश और उसका प्रभाव : कोई भी साहित्यकार अपने चारों ओर के अच्छे बुरे प्रभावों से चाहते हुए भी अछूता नहीं रह सकता । वह जिस वातावरण में रहता है उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियां प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उसके चिन्तन को प्रभावित करती हैं । डॉ प्रकाश चन्द्र भट्ट ने भी कहा है 'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल की परिस्थिति से प्रभावति होता है । जब कोई लहर देश में उठती है, वह उस तीव्र लहर में रो उठता है लेकिन उसके रुदन में भी व्यापकता होती है । वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है ।' [29]

संपूर्ण मानव इतिहास इस बात का साक्षी है ि कवह परिस्थिति को व्यक्ति और समूह के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहा है । मानव मानसिक स्तर पर बाह्य स्थितियों और अन्तर्स्थितियों के प्रति सचेतन होता है । यह संचेतना ही मनुष्य के दर्शन, धर्म, नीति, विधि, साहित्य और कला जगत में अभिव्यक्त होती है । हम डॉ नगेन्द्र के अभिमतानुसार कह सकते हैं 'अचेतन आयाम से मनुष्य न केवल

[29] डॉ प्रकाश चन्द्र भट्ट, नागार्जुन : जीवन और साहित्य, पृ0 38

वास्तविकता को अमूर्त (दर्शन) और मूर्त बिम्ब (साहित्य) में प्रतिबिम्बित करता है अपितु वह इस सचेतनता से बाह्य वास्तविकता को परिवर्तित करता रहता है ।' [30] किसी साहित्यकार पर पड़े प्रभावों को हम अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रखकर विवेचित कर सकते हैं -

क. सामाजिक परिवेश : मनुष्य एक सामाजिक प्रणी है । वह समाज के विभिन्न रूपों में किसी न किसी सूत्र से बँधा रहता है । किन्तु साहित्यकार एक उदग्रमना, चिन्तनशील और व्यापक दृष्टि रखने वाला होता है । उसकी दृष्टि सदैव सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की ओर उन्मुख रहती है । जो कुछ भी समाज में घटित होता है; उसका प्रभाव उसके मन पर अवश्य पड़ता है । चतुर्दिक घटने वाली घटनाएँ उसके मन को मथती रहती हैं और फिर साहित्यकार द्वारा उस परिवेश से संस्कारबद्ध स्परूप स्रोतधारा के रूप में रचना सृष्टि होती है । मनुष्य की इस संस्कारबद्धता की ओर संकेत करते हुए प्रख्यात सामाजिक दार्शनिक रूसो ने कहा है 'मनुष्य जन्मना स्वतंत्र है पर हर जगह वह बंधनयुक्त दिखाई देता है ।' [31]

समाज का अस्तित्व, पोषण और विकास मानव समाज से ही अपेक्षित है । समाज की इकाई परिवार है और परिवार मनुष्य निर्मित होते हैं ं समाज की प्रतिबद्धता अपने राष्ट्र के प्रति भी होती है । इन सबके मूल में एक मनुष्य ही होता है । अतः वह स्वतंत्र रहते हुए भी अपने उत्तरदायित्व, कर्तव्य पालन एवं मर्यादा स्थापन के कारण सर्वत्र बंधन में जकड़ा दिखाई देता है । इस प्रकार समाजीकरण की इस प्रक्रिया में व्यक्ति सामाजिक आत्मनियंत्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संतुलित व्यक्तित्व का अनुभव करता है ।

भारतीय समाज स्वातंत्र्य पूर्व सामंती समाज था । संयुक्त परिवार थे । कई-कई परिवार मिलकर एक साथ निवास करते थे । स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद देश विभाजित हुआ । जिन कारणों से यह विभाजन हुआ, उनसे सांप्रदायिकता और जातिवाद में वृद्धि हुई । चुनाव की दोषपूर्ण प्रक्रिया ने इसको और बढ़ावा दिया । देश के अनेक शहरों में सांप्रदायिक दंगे हुए, जिसकी आग में राजनेताओं ने अपनी रोटियां सेंकने का काम किया ।

---

[30] डॉ नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी (परिवेश शीर्षक), पृ0 28

[31] जे. जे. रूसो, सोशल कान्ट्रेक्ट (सामाजिक पोषण) अनुवादक घुलचक, पृ0 3

डॉ राही मासूम रज़ा ने इन्हीं परिस्थितियों में अपनी रचना सृष्टि प्रारंभ की थी वह 1992 तक अपनी मृत्यु पर्यन्त निरंतर साहित्य की अनेक विधाओं, दूरदर्शन धारावाहिकों व फिल्मों तथा मीडिया के माध्यम से जनता को अपने विचारों से अवगत कराते रहे । राही जी स्वयं सामंती समाज से ही आए थे । उनका जन्म शिया मुसलमान के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था । किन्तु उन्होंने सामंतों के शोषणवादी दृष्टिकोण का कभी समर्थन नहीं किया अपितु वह अपनी रचनाओं के माध्यम से सामंतों के खोखलेपन, कृत्रिमता और उनके निस्सार जीवन को उभारते रहे । राही ऐसे समाज से आए जिसमें बहुपत्नीवाद की प्रथा का प्रचलन था तथा तलाक देने का अनाचार बहुत अधिक फैला हुआ था । राही इस प्रवृत्ति को ग़लत माना और इसको परिस्थिति सापेक्ष कहा । वर्तमान में तथाकथित आधुनिकता के प्रभाव से विश्वासों और नड़ परंपराओं को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है । मानव जीवन से सुख शान्ति अगरबत्ती की सुगंध की भॉति विलुप्त होती जा रही है । पूंजीपति वर्ग वंचितों और ग़रीबों का शोषण कर रहा है ।

आज का युग लोकतंत्र का युग है । इसमें जनता अपना प्रतिनिधि मत (वोट) देकर चुनती है । परिणामतः वोट का महत्व बढ़ गया जिससे अनेक खोट पैदा हो गए परिवार विघटित हो रहे हैं । वोट पाने वाले नेतागण अने स्वार्थ के लिए तरह-तरह के उपाय सोचते हैं तथा धन के लोभ से हर स्थिति में सफल होने की चेष्टा करते हैं । इससे मानव मूल्य और मान्यताएँ टूटने लगी हैं । मनोवृत्तियां बदलने लगी हैं । दिखावटी संस्कृति से मानव पूजा जैसी भयानक संक्रामकता उत्पन्न हो गई है ।

सामाजिक कुरीतियों में दहेज जैसी कुप्रथा, जो देश के लिए अभिशाप सिद्ध हो चुकी है, अपना फलक विस्तृत करती जा रही है । अनेक नव विवाहिताएँ दहेज की बलि वेदी न्यौछावर हो जाती हैं । आधुनिक समाज पर पाश्चात्य शिक्षा और रीति-रिवाजों का भी कुप्रभाव पड़ रहा है । कहने का अभिप्राय यह कि आज का सामाजिक परिवेश अपने मूल्यों के साथ बदलता प्रतीत हो रहा है ।

राही के रचनाकाल में ही शाहबानो प्रकरण घटित हुआ था । जिसमें उसके पति द्वारा तलाक़ दिए जाने पर सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि शाहबानो को उसके भरण-पोषण का खर्च उसके पति द्वारा वहन किया जाए । किन्तु तथाकथित धार्मिक ठेकेदारों द्वारा इसका जोरदार विरोध हुआ और न्यायालय का निर्णय भी अमल में नहीं लाया जा सका । राही ऐसे ठेकेदारों की खबर लेते हुए कहते हैं 'अब इन शहाबुद्दीनों को देखिए ! तलाक़ पा जाने वाली औरत भी हमारे समाज का हिस्सा है । इन लोगों को उसकी फिक्र नहीं । वह मरती है तो इनकी बला से । यह तो शौहर

के उन अधिकारों के लिए भी लड़ रहे हैं जो कुरान और हदीस ने उन्हें दिए भी नहीं हैं ।' [32] इसीलिए राही की दृष्टि थी कि 'मुसलमान होने की पहली शर्त यह है कि उसे अच्छा आदमी होना चाहिए और अच्छा आदमी होने की शर्त यह है कि उसे अच्छा नागरिक होना चाहिए और अच्छे नागरिक की पहचान यह है कि वह क़ानून और दूसरों के अधिकारों का आदर करे ।' [33]

स्वातंत्र्य पूर्व का हमारा जड़बद्ध समाज स्वातंत्र्योत्तर काल में नई परंपराओं को स्थिर करने के प्रयास में पतनशील होता जा रहा है । परिणामतः समाज में भेड़चाल जैसी स्थिति हो गई है । समाज में धर्म के ठेकेदार पैदा होकर सांप्रदायिकता और जातीय विद्वेष फैला रहे हैं । दिखावटी और बनावटी ज़िन्दगी, कथनी-करनी का अंतर, व्यक्ति पूजा, खोखले और निस्सार जीवन समाज के लिए नासूर बन गया है । समाज में फैले इस प्रदूषण के कारण अनेक भयानक और दुःखदायी स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं । राही 'हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई' के नारे से चिढ़ते हुए लिखते हैं 'मुझे इस नारे से नफ़रत है क्योंकि मैं हर रोज सबेरे की चाय पीने से पहले अपने भाईयों को याद नहीं दिलाता कि हम भाई-भाई हैं । यह बात हम चारों भाईयों को मालूम है।' [34] इसीलिए वह हिन्दू मुसलमान की एकता की बात नहीं करते क्योंकि यह एकताएँ तो बँटवारे की एकताएँ हैं । [35] राही जी भारतीय समाज को किसी धर्म की जागीर नहीं समझते थे ।

इस प्रकार राही ने ज्वलंत और सामयिक मुद्दों पर अपनी बेलाग और दोटूक राय देकर अपने प्रगतिशील व्यक्तित्व व विचारक होने का अभूतपूर्व ढंग से परिचय दिया ।

ख. सांस्कृतिक परिवेश : साहित्यकार को अन्य व्यक्तियों की ही तरह सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश प्रभावित करता है और यह प्रभावान्विति उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हुए लेखक की कलात्मकता को भी एक विशिष्ट दिशा देती है । ऐसी सांस्कृतिक परंपराओं और भावनात्मक परिवेश से जुड़कर लेखक अपने विचारों और भावों को मूर्त रूप देता है ।

---

[32] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 143
[33] वही, पृ0 142-143
[34] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 135
[35] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 33

राही के समय मे स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय परिवेश में धर्म विरोधी विचार प्रवाह चल पड़ा । जिससे भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रीय एकता भी पनपी किन्तु आर्थिक विसंगतियां समाज में पूर्व से ही व्याप्त थी । अतः मध्य निम्न वर्गीय लोगों में असंगत सांस्कृतिक चेतना पैदा होने लगी । उस समय लोगों पर कार्ल मार्क्स की विचारधारा का प्रभाव पड़ा । बुद्धिजीवी वर्ग अपनी समस्याओं का समाधान मार्क्स के साम्यवादी विचारों में खोजने लगा । इस काल खण्ड में हमारे सांस्कृतिक धरातल पर जर्मनी के इस विचारक के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखने लगा था अस्तु इसके सिद्धांतों को सूक्ष्म रूप में यहाँ जान लेना अनुपयुक्त न होगा ।

मार्क्सवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित सिद्धांत है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रख्यात दार्शनिक फ्रेडरिख हीगल के सिद्धांत पर निर्मित है जिसके अनुसार इस सृष्टि में पक्ष (Thesis) तथा विपक्ष (Antithesis) का संघर्ष चलता रहता है इस संघर्ष के परिणामस्वरूप सम्पक्ष (Synthesis) नामक वर्ग का उदय होता है । कालान्तर में यही सम्पक्ष, पक्ष एवं विपक्ष में परिणत हो जाता है । यह पक्ष और विपक्ष की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया निरंतर प्रवहमान है । यहां पक्ष और विपक्ष क्रमशः शोषक और शोषित वर्ग है । इन दोनों में संघर्ष की लंबी प्रक्रिया के बाद समता मूलक समाज का अभ्युदय होता है । इसे ही सम्पक्ष कहा गया है । इस पर आधारित मार्क्सवाद से जो मानवता विकसित होती है वह मार्क्सवादी संदेशों को लेकर कामगारों की नई सभ्यता है जो समाजवादी स्वर्ग की ऊँचाइयों को संस्पर्श करने के लिए तत्पर रहती है । इस संस्कृति का संबंध सामाजिक चेतना से माना जा सकता है । डॉ राही मासूम रज़ा संस्कृति की इसी चेतना से अनुप्राणित साहित्यकार थे । वे आजीवन मिली-जुली संस्कृति के संरक्षण की बात करते रहे । जिसमें अधिकाधिक सभ्यताएँ पली बढ़ी होती हैं । भारतवर्ष की संस्कृति इसका जीता जागता उदाहरण है । जैसा डॉ रामधारी सिंह दिनकर ने भी कहा है 'सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशाली और महान समझी जानी चाहिए जिसने विश्व के अधिक से अधिक देशों में अधिक से अधिक जातियों की संस्कृति को अपने भीतर जज़्ब करके उन्हें पचाकरके बड़े-बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है । भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में सबसे महान है क्योंकि यहां की सामाजिक संस्कृति में अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियां पली हुई हैं ।' [36]

[36] डॉ रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 654

राही जी ने अपनी पी-एच.डी. और डी.लिट्. का शोधकार्य संस्कृतियों के समंजन पर ही किया है । उर्दू साहित्य के भारतीय व्यक्तित्व पर उन्होंने पूरी ईमानदारी से अनुसंधान किया और जीवन भर अपने साहित्य में उसी का संदेश देते रहे । वे भारतीय साहित्य से उदाहरण देते हुए कहते हैं क्या रसखान का नाम काटकर कृष्ण भक्तिकाल का इतिहास लिखा जा सकता है? क्या तुलसी की रामायण में आपको कहीं मुग़ल दरबार की झलकियां दिखाई नहीं देतीं? क्या आपने अनीस के मर्सिये देखे? देखे होंगे तो आपको यह भी पता होगा कि इन मर्सियों के पात्रों के नाम भले ही अरबी हों परंतु वह हैं अवध नगरी के राजपूत । राही अपने समय की इस सांस्कृतिक विडंबना (अलगाववादी प्रवृत्ति) को देखकरं मिर्ज़ा ग़ालिब के हवाले से ब्यथित होते हुए कहते हैं -

जला है जिस्म जहां दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है? [37]

राही जी अपने को न काफ़िर मानते हैं; न मुसलमान । वे तो अपने को मात्र एक 'हिन्दुस्तानी मुसलमान' कहते हैं । इसके अतिरिक्त उनकी कोई पहचान नहीं है । वह कहते हैं 'मुझे जो बात परेशान करती है; वह यह कि लोग सिर्फ वही बातें क्यों सुनना चाहते हैं जिन्हें वे सच मानते हैं । जानते नहीं; मानते हैं और जानने की कोशिश भी नहीं करते । मैं सचमुच यह जानना चाहता हूं कि अगर आपको लाखों-लाख मंदिरों और मस्जिदों को बनवाने का अधिकार है; कि अगर आपको बौद्ध मंदिर गिराकर हिन्दू मंदिर बनाने का अधिकार है; कि अगर आपको पंजाब की मस्जिदों को मंदिर या गुरुद्वारे बना लेने का अधिकार है तो मुझे यह कहने का अधिकार क्यों नहीं है कि एक ऐसे मंदिर और एक ऐसी मस्जिद को ढा दिया जाए जो हमारे नागरिक और सामाजिक जीवन में आग लग जाने का कारण बन सकती है ।' [38] राही जी धर्म को राजनीति में लाने के प्रबल विरोधी रहे । वे मानते रहे कि भारत को मात्र धर्मनिरपेक्ष राजनीति ही बचा सकती है । किन्तु ऐसा भी नहीं कि वे विदेशी साम्यवादी विचारकों की भॉति धर्म को अफीम का नशा मानते हों और उससे दूर रहने का वास्ता देते हों । वे तो मंदिरों, गिरजाघरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों को हमारी जमीन से उठाकर अपने दिलों में ले जाने का आह्वान करते हैं । भगवान, अल्लाह और रब की जगह दिल में है.....क्या आपके दिलों में उसके लिए जगह नहीं रह गई है।' [39]

---

[37] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 15
[38] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 13-14
[39] वही, पृ0 37

इस प्रकार राही ने अपने समय के सांस्कृतिक परिदृश्य को कलात्मक एवं तार्किक तरीके से अपने साहित्य में रखकर अपनी एक स्पष्ट, मौलिक, व्यापक और व्यावहारिक सोच का परिचय दिया है ।

ग. राजनैतिक परिवेश : प्रत्येक काल में लेखक को उसके राजनैतिक परिवेश ने न्यूनाधिक रूप में अवश्य ही प्रभावित किया है । सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य व्यवस्थाओं को राजनीति ही संचालित करती है । आज का युग राजनीति का युग है । किन्तु आज हमारे देश में 'डेमोक्रेसी के स्थान पर मोबोक्रेसी ही प्रधान है ।' [40] इसी बात को राही इन शब्दों में कहते हैं 'यही तो लोकतंत्र का दुर्भाग्य है कि यहां इंसॉं को गिना करते हैं तोला नहीं करते ।' [41] किसी लेखक के लिए स्वदेश प्रेम उसकी पूजा होती है तो विश्व प्रेम उसकी निष्ठा का प्रसाद । इसीलिए वे राजनैतिक मानबिन्दु जिनसे देश की एकता एवं अखण्डता पर स्वायत्तता तथा उसके विकास पथ को कोई ऑंच आने की संभावना होती है तो लेखक उन बिन्दुओं पर चॉंदमारी करता है । इसी कारण वह राजनेताओं और उनकी नीतियों व व्यवस्थाओं पर कभी सीधे तो कभी व्यंग्यात्मक दृष्टि से कुछ न कुछ अवश्य ही टिप्पणी करता है । ये टिप्पणियां कभी-कभी स्पष्ट आलोचना बन जाती है । किन्तु इससे उसका किसी राजनैतिक दल का पिछलग्गू होने का भ्रम नहीं होना चाहिए । सच तो यह है कि लेखक किसी भी तथाकथित राजनैतिक मत का अनुयायी नहीं होता वरन् वह सामान्य जन का प्रतिनिधि बनकर सिंहासन के सामने खड़े होकर जनता के दुःख दर्द का बयान करता है । राही लिखते हैं 'आदमी ख़्वाब देखता है । कविता उन ख़्वाबों को बयान करती है और साइंस उन ख़्वाबों को पूरा करती है । इसीलिए कविता का भविष्य मनुष्य का भविष्य है और मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल है । आदमी सदा ख़्वाब देखेगा और कवि सदा उन ख़्वाबों को गुनगुनाएगा ।' [42]

इस प्रकार राही जी की राजनैतिक चेतना लोकमंगल के ध्वज को लेकर चलने वाली विचार पंक्ति है । स्वतंत्रता के बाद से अब तक अनेक राजनैतिक घटनाऍं-दुर्घटनाऍं हुई जिसके परिणामस्वरूप अनेक राजनैतिक परिवर्तन भारतीय राजनीति में देखे गए । जो प्रमुख घटनाऍं घटी, वही लेखक का समकालीन राजनैतिक परिवेश है । राही जी का राजनैतिक परिवेश स्वातंत्र्योत्तर काल से आरंभ होता है ।

---

[40] डॉ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 45
[41] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 143
[42] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 18

15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ । भारत में इस बहुकाल प्रतीक्षित स्वतंत्रता श्री का अपार स्वागत हुआ । किन्तु इसके साथ देश का विभाजन भी हो गया । भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग देश हो गए । इस विभाजन की टीस सामाजिक चेतना के मुख्य साहित्यकार डॉ राही मासूम रज़ा को आजीवन सताती रही जो उनकी प्रत्येक साहित्यिक कृति में देखी जा सकती है । पं0 जवाहरलाल नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री बने । 30 जनवरी 1948 को राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी की नाथूराम गोडसे ने गोली मारकर हत्या कर दी जिससे संपूर्ण राष्ट्र को गहरा धक्का लगा । 21 जून 1948 को चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को स्वतंत्र भारत का प्रथम गवर्नर जनरल बनाया गया । 26 जनवरी 1950 को भारत गणराज्य बना और भारत का संविधान लागू हुआ । अप्रैल 1950 में राष्ट्रमण्डलीय देशों की बैठक हुई जिसमें कश्मीर समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न किए गए लेकिन यह समस्या आज तक हल नहीं हो पाई । इसी समास्या के कारण सन् 1965 में भारत तथा पाकिस्तान के मध्य युद्ध हुआ ं इससे पूर्व भारत को अपने से कहीं शक्तिशाली देश चीन से भी 1962 में एक पराजित युद्ध करना पड़ा । सन् 1951-1952 से देश में चुनाव प्रक्रिया लागू हुई । इस प्रक्रिया के पश्चात भारत की राजनीति दोषपूर्ण हो गई । जो नेता मात्र कांग्रेस पार्टी के सदस्य थे वे स्वार्थ पूर्ति और कुर्सी हथियाने के चक्कर में अनेक राजनैतिक दलों का गठन करने में लग गए । नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ बढ़ गई । फलतः जनसेवा की भावना का क्षरण होता चला गया ।

सन् 1952, 1957, 1962, 1967 एवं 1970 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को लगातार बहुमत मिला । सन् 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच पुनः घमासान युद्ध हुआ । यह युद्ध 3 दिसंबर 1971 से 17 दिसंबर 1971 तक चला जिसमें भारत की जीत हुई । इस लड़ाई से बांगलादेश का उदय हुआ । शेख मुजीबुर्रहमान बांगलादेश के प्रथम प्रधानमंत्री बने ।

सन् 1975 में भारत में आपातकाल की घोषणा हुई जो दिसंबर 1976 तक प्रभावी रही । इसी कारण सन् 1977 में कांग्रेस पार्टी की शर्मनाक पराजय हुई । जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई । मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने जिन्होंने मार्च 1977 से 1980 के मध्य तक देश की बागडोर संभाली । तत्पश्चात 1980 के अंत तक चौधरी चरण सिंह भारत के प्रधानमंत्री रहे । सन् 1980 में लोकसभा के मध्यवर्ती चुनाव हुए इसमें कांग्रेस को पुनः बहुमत मिला । श्रीमती इन्दिरा गॉधी देश की प्रधानमंत्री बनी जो अक्टूबर 1984 तक रहीं । इससे पूर्व सर्वप्रथम श्री लालबहादुर शास्त्री के निधन के बाद 1966 से 1977 तक वे प्रधानमंत्री रहीं थी । 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती

गॉधी की उनके सुरक्षा कर्मियों ने हत्या कर दी । श्री राजीव गॉधी देश के नए प्रधानमंत्री बने । 1985 में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव में कांग्रेस की रिकार्ड जीत हुई । किन्तु 1989 के चुनाव में कांग्रेस एक बार पुनः पराजित हुई तथा श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के दसवें प्रधानमंत्री बने । उनके शासनकाल में मंडल आयोग और श्री राम जन्म भूमि पर मंदिर निर्माण जैसे मुद्दों पर आंदोलन हुए । दिसंबर 1990 में श्री चंद्रशेखर भारत के ग्यारहवें प्रधानमंत्री बने । श्री चंद्रशेखर 10 नवंबर 1990 से 21 जून 1991 तक प्रधानमंत्री रहे । मई 1991 में देश में पुनः मध्यावधि चुनाव हुए । इस दौरान 21 मई 1991 को पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉधी की हत्या कर दी गई । जून 1991 में कांग्रेस ने जोड़-तोड़ करके सरकार बना ली । इस सरकार के मुखिया बने देश के बारहवें प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हाराव ।

उपर्युक्त घटनाक्रम में से भारतीय राजनीति में आपातकाल एक ऐसा काल है जिसने पूरे देश को झकझोर दिया । समाचार पत्रों और साहित्य पर भी सेंसरशिप (प्रतिबंध) लागू थी । उस समय लेखक के पास था तो बहुत कुछ कहने के लिए किन्तु कहने में एक भय जुड़ा था । अतः अपनी बात को गूढ़ प्रतीकों और व्यंजना में कहने की शैली को लेखकों ने अपनाया । राही के उपन्यास 'कटरा बी आर्जू' मे आपातकाल की कथावस्तु को 'घूमते हुए कैमरे के शिल्प' की शैली में व्यंजित किया गया है ।

आए दिन होने वाले सांप्रदायिक दंगों के लिए नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाऍं उत्तरदायी हैं । अपने-अपने मतकोष (वोट बैंक) को बढ़ाने के लिए प्रायः यही नेता दंगे कराते हैं । इतना ही नहीं चुनाव के दिनों में होने वाले खून खराबे के लिए यही नेता जिम्मेदार हैं । डॉ राही मासूम रज़ा ने इस प्रकार के तथ्यों को भली प्रकार समझा है और उस पर अपनी साहित्यिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है ।

आज की राजनीति नमक की खान हो गई है । जो जाता है गल जाता है । ऐसे में राही अपने दिल की भड़ास को साहित्यिक संदेश के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं -

''खत्म नहीं होंगे हमसे दिलों के फ़ासले
फिर भी हम इन फ़ासलों को कुछ तो कम करते चलें ।'' [43]

[43] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 44

इन स्थितियों के चलते राही जी कारपोरेशन या म्यूनिसिपैलिटी की कूड़ा गाड़ी बनने को भी तैयार हैं जिस पर सारी गंदगी लादकर हिन्द महासागर में डुबो दिया जाए । वे कहते हैं 'सच पूछो तो बार-बार विष्णु ने इसलिए अवतार लिया और खुदा ने बार-बार पैगम्बर भी इसलिए भेजे; फिर भी यह काम अधूरा रहा क्योंकि यह काम खुदाओं के बस का नहीं है । यह काम तो हमें और तुम्हें करना होगा ।' [44]

हमारे यहां उपनिषदों की इस भावना

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ।।'' को राही जी ने प्रकारांतर से अपने शब्दों में व्यक्त किया है ।

राही का यह संदेश हमें गौतम बुद्ध का भी स्मरण कराता है जिन्होंने कहा था कि जब तक इस संसार से दुराचार, अनैतिकता, हिंसा आदि अनुचित प्रवृत्तियों का अंत नहीं हो जाता । वे पुनः पुनः इस विश्व में 'बोधिसत्व' के रूप में आते रहेंगे । ऐसा संदेश हमें गौतम बुद्ध और लोकनायकों के बाद राही जैसा निस्पृही, निस्वार्थी एवं सच्चा धर्मनिरपेक्ष देशप्रेमी साहित्यकार ही दे सकता था ।

इस प्रकार डॉ राही मासूम रज़ा ने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश की राजनीति पर सशक्त टिप्पणियां की हैं जिनसे उनकी राजनैतिक चेतना का पूर्ण परिचय मिलता है ।

घ. आर्थिक परिवेश : लेखक जिस परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उसके साहित्य पर किसी न किसीा रूप में अवश्यमेव पड़ा करता है । डॉ राही मासूम रज़ा का साहित्य सृजनात्मक काल भारत की स्वाधीनता के लिए किए जा रहे विभिन्न प्रयासों और गॉधी जी के नेतृत्व में हो रहे अहिंसक आन्दोलनों का काल है । इस काल में ही अंग्रेजों ने किसानों को बेदखल करके जमींदारों को जमीन का स्थायी भू-स्वामी बना दिया । परिणामस्वरूप किसान-मजदूरों पर जमींदारों के अत्याचार होने लगे । उन्हें विभिन्न प्रकार से शोषित किया जाने लगा । अनेक तरह की कृषक दुर्दशाओं ने भावुक राही की आत्मा को झकझोर दिया जिसका स्पष्ट प्रभाव उनके काव्य तथा उपन्यास साहित्य में देखा जा सकता है । उनका 'आधा गॉव' उपन्यास इसी कड़ी में लिखा गया है यह उपन्यास उनकी विचारधारा से हटकर एक नई समस्या को रेखांकित करता है ।

[44] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 17-18

जमींदारी उन्मूलन के पश्चात छोटे और मझोले किस्म के जमींदारों के आर्थिक संकट को चिन्हित करने का काम राही ने पहली बार अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है

स्वतंत्रता के बाद भी स्वतंत्रता के पूर्व की ही भाँति गाँवों और शहरों में सूदखोरी, ग़रीबी, बेरोजगारी तथा विदेशों से ऋण लेने की प्रवृत्ति जारी रही । स्वातंत्र्योत्तर काल में ली गई विदेशी सहायता से देश पर विदेशी प्रभाव भी बढ़ता गया यही नहीं भारत का औद्योगिक क्षेत्र भी संतोषजनक नहीं था । मजदूर वर्ग का शोषण कल-कारखानों के मालिकों एवं उद्योगपतियों द्वारा जारी था । ऐसी परिस्थिति में अप्रैल 1948 में एक औद्योगिक नीति तैयार हुई जिसका उद्देश्य सभी नागरिकों को समान अवसर और न्याय प्राप्त कराना था ।

स्न् 1950 में पं0 जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में योजना आयोग बना जिसने भारत में पंचवर्षीय योजना का प्रारूप लागू किया । पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश में आर्थिक विकास का कार्य आरंभ हुआ । इस दौरान अपने यहां कृषि विकास, शिक्षा, यातायात आदि पर अधिक व्यय हो रहा था । ग्रामीण अर्थव्यवस्था अच्छी नहीं थी । गाँव के साथ-साथ शहरों में भी सूदखोरी, ग़रीबी एवं बेरोजगारी पनपी हुई थी । सुविधाओं के अभाव में ग्रामीणों को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा । पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा आर्थिक विकास में सहायता तो मिली पर देश की जनशक्ति के अधिकांश भाग को इसका पूर्ण लाभ न मिलने के कारण आर्थिक स्थिति सोचनीय बनी रही ।

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूपों से संबंधित वायदों का कुहासा धीरे-धीरे स्वार्थों में घुलता चला गया । अमल करने में भी जो कदम उठे वे भ्रष्ट प्रशासन के कारण प्रभावी नहीं हो सके । देश की आम जनता की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन होता नहीं प्रतीत हुआ । प्रतिदिन बढ़ती महँगाई और वस्तुओं के बढ़ते दामों से निम्न तथा मध्यम वर्ग के लोग पिसते ही गए । सन् 1965 से 1990 तक बिहार, उड़ीसा, पंजाब, असम, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान में बाढ़, अकाल तथा सूखा से जनता को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । सहकारिता से ग़रीबी हटाओ तक के नारों का खोखलापन भी जनता के सामने खुलकर दिखाई देने लगा । राष्ट्रीयकरण के बावजूद उद्योग धन्धे लालफीताशाही और भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हो पाए ।

धनाभाव तथा स्थानीय कारणों से गाँव के लोग शहर और कस्बों की ओर दौड़ने लगे । पूंजीवाद के हावी होने के कारण ग़रीब और ग़रीब होता गया । वस्तुओं

की बढ़ती हुई कीमतों के कारण नौकरी पेशा वाले लोगों को तंगी होने लगी । मध्यम आय वर्गीय परिवारों की आर्थिक दुर्दशा होने लगी । सबसे अधिक सोचनीय और दयनीय स्थिति तो स्थिर आय वाले मध्यम और निम्नवर्गीय तबके की हो गई क्योंकि मूल्यवृद्धि ने उनकी कमर सी तोड़ दी । नौकरशाही भ्रष्ट हो गई । शोषण और दोहन अधिक बढ़ गया और महँगाई सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ी ही रही । नेताओं, नौकरशाह और पूंजीपतियों के एक साथ त्रिकोणात्मक शोषण से सर्वहारा वर्ग की भूख और असहनीय हो गई ।

उक्त आर्थिक व्यवस्था के परिदृश्य में राही की रचनाएँ देखकर पता चलता है कि उनका झुकाव साम्यवाद की ओर है । उनकी भावना पूजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध है । उनकी मान्यता है कि प्रत्येक मानव को एक सा रहने का अधिकार क्यों नहीं? पूंजीवादी व्यवस्था के लाल बही खातों में सर्वहारा वर्ग काला अक्षर बनकर पड़ा हुआ है इसलिए राही चाहते हैं कि सर्वहारा वर्ग और शोषित वर्ग एकजुट होकर संघर्ष करे ।

इस प्रकार राही का आर्थिक परिवेश जनसाधारण की विसंगति और राजनैतिक उथल-पुथल भरा था । आर्थिक विसंगतियों से उत्पीड़ित किसानों और मजदूरों की वेदना से राही जी का हृदय उद्वेलित हो उठा जिसका प्रतिबिंब उनके साहित्य में रूपायित हुआ है ।

च. साहित्यिक परिवेश : डॉ राही मासूम रज़ा के समकालीन साहित्यिक परिवेश को समझने के लिए हमें उनके युग के साहित्य को समझना होगा । किसी युग को समझने के लिए साहित्य ही सबसे बड़ा मददगार होता है । यों राही उर्दू साहित्य में पले-बढे थे किन्तु वे इस नाम की किसी भाषा को मान्यता नहीं देते थे । राही उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानने के विरुद्ध थे । उर्दू को वे मात्र लिपि मानते थे और उनके अनुसार लिपियां भाषा और साहित्य नहीं होती । उनका सुझाव था कि उर्दू को देवनागरी लिपि में लिखा जाए क्योंकि उर्दू और हिन्दी कोई अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं यह केवल भाषा की राजनीति के कारण अलग हो रही हैं । उन्होंने उदाहरण दिए हैं कि पंजाबी भाषा गुरुमुखी और फारसी लिपि में लिखी जाती है । सिंधी भी दो लिपियों में लिखी जाती है । मराठी, नेपाली, संस्कृत और हिन्दी सभी एक ही लिपि देवनागरी में लिखी जाती हैं तब भी ये भाषाएँ अलग-अलग हैं । हिन्दी और उर्दू को दो अलग-अलग लिपियों में लिखे जाने के लिए वे अंग्रेजों को जिम्मेदार मानते थे । अंग्रेजों ने लिपि को भाषा बना दिया और हम आज तक लिपि की लकीर पीटने में लगे हुए हैं । अन्यथा पद्मावत जैसा महाकाव्य जायसी ने फारसी लिपि में लिखा था फिर भी वह जायसी को हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के एक आधार स्तंभ के रूप में

स्थापित किए है । मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ 'ग़ालिब' ने उर्दू लिपि में लिखी गई अपनी भाषा को हिन्दी ही कहा था । इस तरह हम ग़ालिब के परिवार के लोग हैं । उनके अनुसार हम इंशा के वारिस भी हैं जिन्होंने एक ऐसी भाषा में हिन्दी की प्रथम कहानियों में से एक 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जिसमें हिन्दी छोड़ किसी और जुबान का पुट नहीं है । वास्तव में यह झगड़ा तो कोलकाता स्थित फोर्ट विलियम कालेज के जॉन गिलक्राइस्ट नामक अंग्रेज की देन है जिसने भाषाओं के इतिहास में पहली बार लिपि को आधार बनाकर भाषा को अलग कर दिया । उसने हिन्दुओं के लिए एक 'लिंगुआ फ्रेंका' बनाने की बात छेड़कर उर्दू को मुसलमानों के सर मढ़ दिया

लिपि के इस अलगाव के कारण हम अपनी सांझी विरासत से अलग होते गए हमें मीर, ग़ालिब और फ़िराक जैसे शायरों को हिन्दी साहित्य से अलग कर दिया गया इसी तरह कबीर, सूर एवं तुलसी को उर्दू साहित्य से अलग करके देख लिया गया ।

राही ने हिन्दी और उर्दू के साहित्येतिहासकारों से आह्वान करते हुए लिखा 'हम साहित्यकार हैं और हममें हिन्दू-मुसलमान की सतह से ऊपर उठकर सोचने की हिम्मत होनी चाहिए आइए ; हिन्दी साहित्य का एक नया इतिहास लिखें और अपने बच्चों को बताएँ कि जायसी और तुलसी की ही तरह हमारे यहां मीर और ग़ालिब भी गुज़रे हैं और जो हम यह न कर पाएँ तो कम से कम यह ऐलान करने की हिम्मत करें कि हम हार गए ।' [45]

राही उर्दू को हिन्दी की एक शैली मात्र मानते थे । उनके अनुसार उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं अपितु वह लिपि मात्र है । यदि हम ऐसा मान कर चलें तो उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं के साहित्य का भला किया जा सकता है । राही के रचनाकाल के दौरान देश के स्वतंत्र होते ही हिन्दी को संविधान में अनुच्छेद 343 के अंतर्गत संघ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया । किन्तु उस समय के अंग्रेजी वर्चस्व को देखते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि 15 वर्ष अर्थात् 1965 तक अंग्रेजी सह राजभाषा के रूप में रहेगी और सरकार का कामकाज अंग्रेजी में होता रहेगा । साथ-साथ हिन्दी को अपनाने का वातावरण भी विकसित होता रहेगा । किन्तु 1965 बीता; 1976 भी बीता, जब राजभाषा अधिनियम बने फिर भी हिन्दी को उसका प्राप्य नहीं मिल सका । हिन्दी की स्थिति आज भी देश में दोयम दर्जे की है और इसमें कोई परिवर्तन होने को कदाचित कोई संभावना भी नहीं है क्योंकि पं0 जवाहरलाल

[45] डॉ राही मासूम रज़ा, खुदा हाफ़िज कहने का मोड़ संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 101

नेहरू ने अपने शासनकाल के दौरान यह प्रावधान कर दिया कि जब तक देश में एक भी प्रदेश हिन्दी को अस्वीकृत करता है तब तक हिन्दी को राजभाषा का दर्ज़ा नहीं मिल सकेगा । ऐसी स्थिति कि देश के सभी राज्य एक साथ हिन्दी को राजभाषा मान लें कदाचित चमत्कारिक रूप में आ जाए तो संभव हो सकता है । नागालैण्ड जैसे राज्य ने तो अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा घोषित कर रखा है ।

इस स्थिति के मूल में क्या कारण हैं? राही बताते हुए कहते हैं 'हम यह तो चाहते हैं कि हिन्दी देश भर में स्वीकार कर ली जाए पर देश की दूसरी भाषाओं की न इज़्ज़त करते हैं और न उनकी ज़रूरत समझते हैं । शायद यही कारण है कि अहिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी को स्वीकार करना मुश्किल हो रहा है ।' [46]

इस प्रकार राही का भाषा के प्रति एक यथार्थवादी एवं वास्तविक दृष्टिकोण था उन्होंने दोनों भाषाओं के समन्वय की स्थापना व इनके अलगाव के कारणों को देकर एक मौलिक एवं नवीन दृष्टि का उन्मेष किया है ।

राही का समकालीन परिदृश्य बहुत भयानक था । देश स्वतंत्र हुआ तो दंगों ने देश की शान्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया । उसके बाद 1971 में हुआ तो भारत को एक बार पुनः युद्ध की विभीषिका से दो चार होना पड़ा । इससे पूर्व भी वह एक बार चीन से तो एक बार पाकिस्तान से ही लड़ाई लड़नी पड़ी । इन परिस्थितियों में हिन्दू-मुस्लिम फूट पड़ी । देश में चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ हुई तो राजनेताओं ने अपने-अपने वोटों की रोटियां धर्म की आग पर सेंकनी शुरू की । परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता जहर फैल गया । इन परिस्थितियों ने राही को उद्वेलित किया । उन्होंने अपने साहित्य की कथावस्तु में इन विषयों को समेटा । उनके सारे उपन्यासों में देश विभाजन की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है क्योंकि साहित्यकार हमें अपने साथ अपनी दुनिया में ले जाता है । इतिहास और साहित्य में यही अंतर है । हेरीडोटस के साथ हम उसकी दुनिया में नहीं जाते परन्तु मिल्टन का शैतान हमसे बड़े-बड़े सफ़र करवाता है । प्राचीन साहित्य का मूल्य यही है कि हमें वह यह बतलाता है कि हम कैसे-कैसे रास्तों से चलकर आज की दुनिया में आए हैं ।

राही ने उसी प्राचीन साहित्य और संस्कृति की अनुगूँज से प्रेरणा लेकर समय की मांग को देखते हुए कबीर की भाँति विद्रोही तेवरों के साथ लिखा है -

[46] डॉ राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गए हम संकलित डॉ कुँवरपाल सिंह, पृ0 23

''मेरा नाम मुसलमानों जैसा है
मुझको कत्ल करो
और मेरे घर में आग लगा दो

लेकिन मेरी नस-नस में गंगा का पानी दौड़ रहा है
मेरे लहू से चुल्लू भर कर महादेव के मुँह पर मारो

और उस जोगी से यह कह दो
महादेव
अब इस गंगा को वापस ले लो
यह मलिक्ष तुर्कों के बदन में गाढ़ा गर्म लहू बनकर दौड़ रही है ।'' [47]

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवेचन को देखते हुए कहा जा सकता है कि डॉ राही मासूम रज़ा को समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक पर्यावरण ने जहां प्रभावित किया वहीं उनकी पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न जीवन की कटुताओं ने उन्हें लेखनी का धनी बनाने के लिए बाध्य किया । वे जीवन भर अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए फिल्म लेखन करते रहे । राही जी के कथा साहित्य में उनकी विचारधारा विभिन्न रूपों में प्रतिफलित होती है । किसान एवं मजदूर सहित निम्नवर्ग से लेकर जमींदार और सारे देश की अनेकानेक विकराल समस्याओं का प्रतिबिंब उनकी विशाल साहित्य सृष्टि में समाहित है । वे सदैव अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करते रहे । राजनैतिक क्षेत्र में मार्क्सवादी मत के पोषक रहे । उनके साहित्य में नारी-कल्याण, देश-भक्ति, सांप्रदायिक सौहार्द, भाषाई एकता एवं सजगता, अंचल से प्रेम, रूढ़ि खण्डन, अंधविश्वासों एवं छुआछूत पर कटाक्ष, ग्रांमीण नवनिर्माण की प्रगतिशील विचारधारा एवं युवकों के प्रति आशावादी दृष्टिकोण जैसी अनेक प्रवृत्तियों का निदर्शन है । वे चतुर्मुखी विकास के पक्षपाती रहे । राही जी निम्न वर्ग को उठा हुआ एवं रोते हुए को प्रसन्न मुख देखना चाहते थे । इसीलिए उनके साहित्य में संघर्ष, आक्रोश और विद्रोह का स्वर गूँजता है; निराशा, अवसाद और विषमता का नहीं । एक सच्चा कलाकार वही है जो अपनी अनुभूति को व्यापक सामाजिकता में विलीन कर पाठक को स्फूर्ति और दृढ़ता का अनुभव करा दे और इसमें कोई संदेह नहीं कि राही इसमें पूर्णतः सफल रहे हैं ।

[47] डॉ राही मासूम रज़ा, मैं एक फेरी वाला, पृ0 35

द्वितीय अध्याय

साहित्य और पात्र-परिकल्पना

1. पात्र विवेचन

व्यक्ति ईश्वर की सफल अभिव्यक्ति है । वह इस बात का प्रमाण है कि इश्वर का अस्तित्व है ं इसी प्रकार साहित्य इस बात को प्रमाणित करता है कि कोइ उसको अभिव्यक्त करने वाला है; जो चेतन है और जिसमें बुद्धि, मन, ज्ञान, विवेक, हृदय, भावनाएँ एवं कल्पनाएँ हैं । आशय यह कि साहित्य मनुष्य द्वारा प्रणीत रसमय अभिव्यक्ति है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज का निर्माण व्यक्तियों के समूह के बिना नहीं हो सकता । मनुष्य जो कुछ विचार करता है; कहता है अथवा लिखता है, वह मात्र अपने लिए ही नहीं होता । वह समाज के अन्य व्यक्तियों से संबंधित होता है । वह समाज से प्रभावित होता है । साहित्य, मनुष्यकृत होने के कारण, में सामाजिक समस्याओं, भावनाओं एवं विचारों का अंकन होता है इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है । साहित्य और समाज का संबंध अनादिकाल से चला आ रहा है । साहित्य मनुष्य का और इसीलिए समाज का प्रतिनिधित्व करता है । वह गुरु के समान मार्गदर्शन करने वाला, मित्र के समान उपदेशक और सहायक तथा कान्ता के समान मनोमुग्धकारी होता है । साहित्यकार सामाजिक चेनता से अनुप्राणित रहता है । प्रेमचन्द ने भी कहा है 'पुराने ज़माने में समाज की लगाम मज़हब के हाथों में थी । अब साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है ।' [48] साहित्य के सही उद्देश्य के संबंध में उनके विचार हैं 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो; जो हममें गति और संघर्ष पैदा करे, सुलाए नहीं ।' [49]

वर्तमान में उपन्यास; साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सशक्त विधा है । डॉ भगवतशरण अग्रवाल उपन्यास की स्थिति पर विचार करते हुए लिखते है 'साहित्य शब्द

[48] प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृ0 5
[49] प्रेमचन्द, साहित्य शिक्षा, पृ0 22

की व्याख्या में जो सहित की भावना है, उसका पूर्ण विकास हमें उपन्यास में ही मिलता है । इसके साथ ही साहित्य के व्यापक अर्थ का प्रतिनिधित्व भी आज के युग में उपन्यास ही कर रहा है ।' [50]

उपन्यास शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है, उप=समीप तथा न्यास=थाती या रखी हुई अर्थात् समीप में रखी हुई थाती अथवा वस्तु । डॉ देवराज उपाध्याय के मत से इस शब्द की व्याख्या है 'वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है । इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है ।' [51] उपन्यास शब्द का प्रयोग भारत की कई भाषाओं में मिलता है और भिन्न-भिन्न प्रयोगों में विभिन्न अर्थ भी मिलते है । अंग्रेजी भाषा में उपन्यास का प्रतिशब्द है 'नोवेल' जो फिक्शन का एक प्रकार है । इसकी व्युत्पत्ति लेटिन शब्द नोवस या नोवल तथा फ्रेंच नोवो से हुई है जो संस्कृत के 'नव' के विकसित रूप ज्ञात होते हैं नोवेल का अर्थ नया, असाधारण या विचित्र है । जिस कहानी में नया, कल्पित तथा रोमांचकारी विवरण हो उसे नोवेल कहते हैं । फिक्शन शब्द साधारणतः सभी छोटी-बड़ी कहानियों के लिए प्रयुक्त होता है और नोवेल, स्टोरी, रोमांस आदि उसके भेद हैं ।' [52] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लगभग ऐसी ही मान्यता दी है 'उपन्यास वस्तुतः नवल अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी 'नोवेल' का प्रतिशब्द उपन्यास माना, उसकी सूझ की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता ।' [53]

अंग्रेजी के 'नोवेल' को गुजराती में नवल कथा, मराठी में कादम्बरी और बांगला तथा हिन्दी भाषा में उपन्यास कहते हैं । साहित्य की यह विधा हिन्दी साहित्य में अपेक्षाकृत काफी बाद में विकसित हुई परन्तु इसका विकास बड़ी तेजी से हुआ । राही मासूम रज़ा के समय तक यह पूरे साहित्य का प्रतिनिधि बनकर समाज के सम्मुख प्रतिबद्ध दिखी । उपन्यास में पात्रों का विशेष महत्व है, अस्तु । पात्रों के स्वरूप और प्रकार तथा पात्र-परिकल्पना के विभिन्न आयामों का विवेचन करना यहां अपेक्षित होगा

क. पात्र : व्युत्पत्ति एवं अभिप्राय

[50] डॉ भगवतशरण अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास और राजनीतिक आन्दोलन, पृ0 7

[51] डॉ देवराज उपाध्याय, हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 139

[52] ब्रजरत्नदास, हिन्दी कथा साहित्य, पृ0 9

[53] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (संपा0), साहित्य संदेश (उपन्यास विशेषांक), अक्टूबर-नव0 1940

शब्द कल्पद्रुम के अनुसार 'पात्र' शब्द संस्कृत की 'पा' धातु के साथ 'ष्ट्रन' प्रत्यय युक्त करने से व्युत्पन्न होता है । नपुंसकलिंग में इसका तात्पर्य होता है वह आधान जिसमें कुछ रखा जा सके । ऐसा वर्तन, भाजन या भाण्ड जिसमें पानी रख सकें तथा जिससे पेय पिया जाता हो ।[54] पात्र शब्द के अन्य अर्थ भी मिलते हैं; ऐसा उपकरण जो यज्ञ में काम आता हो जैसे यज्ञ पात्र । जल का कुण्ड या जलाशय, नदी की चौड़ाई या पाट, वृक्ष का पत्ता, वैद्यक में चार सेर की एक तोल - आढ़क इत्यादि को भी पात्र कहा जाता है । भाव वाचक रूप में आज्ञा या आदेश को पात्र कहते हैं ।

पुंलिंग रूप में पात्र का वैयुत्पत्तिक तात्पर्य होता है 'व्यक्ति; जो नाना प्रकार के गुणों से विभूषित हो; जो किसी काम या बात के लिए सब प्रकार से उपयुक्त या योग्य समझा जाता हो; जो सब प्रकार से अधिकारी हो ।'[55] पात्र शब्द की व्यापक परिभाषा में तात्पर्य यह है कि किसी को कुछ देने अथवा कहने से पहले यह देखा जाए कि वह उसे पाने, रखने अथवा करने का योग्य है अथवा नहीं ।

विशेषण रूप में पात्र उसे कहा गया है जिसे किसी कार्य या पद के लिए उपयुक्त होने के कारण चुना या नियुक्त किया जा सकता है ।

पात्र से संबंधित शब्द पात्रता अथवा पात्रत्व का अर्थ होता है किसी कार्य, पद, दान-दक्षिणा का अधिकारी होने की अवस्था, गुण अथवा भाव । किसी साहित्यिक रचना के संपूर्ण पात्र तथा उन पात्रों का अभिनय करने वालों का समूह पात्र वर्ग शब्द से अभिहित होते हैं । विशेषण-पुंलिंग रूप में पात्री उसे कहते हैं जिसके पास पात्र (वर्तन) हो अथवा जिसके पास सुयोग्य पात्र अथवा अधिकारी व्यक्ति हो । विशेषण-स्त्रीलिंग रूप में पात्री छोटा पात्र या वर्तन है; साहित्यिक रचना की कोई स्त्री पात्र है किन्तु नाटक आदि में अभिनय करने वाली कोई स्त्री-अभिनेत्री है । 'पात्रीय' का अर्थ होता है; पात्र संबंधी अथवा पात्र का ।

---

[54] शब्दकल्पद्रुम, तृतीय भास्कर, पृ0 108-109 पात्र : क्ली; पाति रक्षित क्रियामाधेयं वा । पिबत्यनेनेति वा । पा रक्षणे पाने वा : 'सर्वधातुभयः ष्ट्रन्' । उपां 4/158 इति ष्ट्रन् । आधेय धारपावस्तु । तत्पर्यायः । भाजनम् । भाण्डम् इत्यादि

[55]शब्दकल्पद्रुम, तृतीय भास्कर, पृ0 108-109 पात्रः त्रि : नाना गुणालंकृतो जनः । 'अपात्रः पात्रता याति यत्र पात्रौ न विद्यते' । इत्युपादिवृत्ति कृटुज्ज्वलदत्तः । महाभारते 13/69/22 । 'शुभे पात्र ये गुणा गो प्रदाने तावान दोषो ब्राह्माण स्वापहारे तथा च देवी भागवते 1/2/40 । 'सकल गुण गण नामेक पात्रं पवित्रमखिल भुवनमातुर्नान्यवद्यद्धिचित्रम् । योग्यम् ।

यहां हमारे लिए अभीष्ट 'पात्र' का तात्पर्य है; काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में वे व्यक्ति जो उस कथावस्तु की घटनाओं के घटक होते हैं और जिनके क्रियाकलाप या चरित्र से कथावस्तु की सृष्टि या परिपाक होता है । नाटक में वे अभिनेता या नट; जो नाट्य व्यक्तियों का वेशभूषा आदि के माध्यम से रूप धारण करके उनके चरित्रों का अभिनय करते हैं; पात्र कहलाते हैं जैसे किसी नाटक के लिए कहा जाए कि उसमें दस पुरुष और छः स्त्री पात्र हैं ।

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ई.एम. फार्स्टर के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'आत्माभिव्यक्ति करता हुआ उपन्यासकार कुछ एक शब्द मूर्तियां गढ़ता है फिर उनके साथ नाम और लिंग जोड़ता है । उन्हें अनुभव प्रदान करता है । उनसे उद्धरण चिन्हों में बातचीत करवाता है और कदाचित् उनसे एक सा व्यवहार भी करवाता है । इस प्रकार ये शब्द मूर्तियां ही उसके पात्र हैं ।' [56]

इन शब्द मूर्तियों को समालोचक डॉ रामशंकर त्रिपाठी शब्दोपाधि कहते हुए लिखते हैं 'साहित्यकार शब्द की उपाधि से पात्रों को रूपायित करता है और इस प्रकार शब्दोपाधि से स्वरूप प्राप्त करने वाले पात्र पाठक अथवा श्रोता-प्रेक्षक को बुद्धि के विषयीभूत होकर तत्तत् रूपों; राम, दुष्यंत, मनु, स्कंद आदि को प्रत्यक्ष के समान ज्ञान कराने में कारण होते हैं।' [57]

इस तरह रस निष्पत्ति का मूलाधार विभाव ही अपनी साहजिकता में पात्र कहा जा सकता है । पात्रों की गतिमानता साहित्य की विविध विधाओं को श्लक्षणता प्रदान करती है । राग-पक्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने का एकमात्र तरीका यही है कि विभाव पक्ष को विस्तार एवं गहराई से अंकित अथवा वर्णित किया जाए । भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति नहीं हो सकती । केवल भावप्रदर्शक काव्यों में भी होता यह है कि पाठक या श्रोता अपनी ओर से अपनी भावना के अनुसार आलम्बन का आरोप किए रहता है, अस्तु । रचना में पात्रों का विशेष महत्व है जिसे दृष्टिगत रखते हुए इसी अध्याय के एक उपशीर्षक 'उपन्यास में पात्रों का महत्व' में इसका विवेचन किया गया है ।

---

[56] E.M. Forster, Aspects of the Novel, P. 44 'The novelist…..makes up a number of word-masses roughly describing himself…..gives the names and causes them to speak by the use of inverted commas and perhaps to behave consistently. These word-masses are his characters.'

[57] डॉ रामशंकर त्रिपाठी, साहित्य में पात्र-प्रतिमान और परिरेखन, पृ0 4

ख. पात्र : स्वरूप एवं प्रकार

(i) पात्रों का स्वरूप

उपन्यास साधारण जीवन के समानांतर चलने का पूरा प्रयत्न करता है । उपन्यासकार नाटकीयता का आश्रय प्रत्यक्षीकरण करते हुए अपने मनोभावों को पात्रों के द्वारा प्रकट करता है । उपन्यास की गति प्रखर है । अतएव इसके पात्र मनुष्य सरीखे होकर भी विलक्षण हैं । उपन्यास के पात्रों के स्वरूप पर विचार करते हुए डब्ल्यू. जे. हार्वी अपनी पुस्तक कैरेक्टर एण्ड द नोवेल में लिखते हैं 'साधारण बोलचाल में किसी-किसी को देखकर हम कह उठते हैं कि ''क्या कैरेक्टर है'' ? उस समय हमारे मन में रहता है कि इस आदमी में जीवन कला का अनुकरण कर रहा है । यह व्यक्ति जीवन से बढ़कर (Larger than life) है या इसमें कथा जैसी कोई विलक्षणता है तभी यह औरों से अलग दीख रहा है । वैसे; हम जानते हैं कि जीवन स्वयं कथा की अपेक्षा अधिक अद्‌भुद और बहुरंगा है । यह जो व्यक्ति चमत्कृत कर रहा है; अनोखा दीख रहा है । यही कैरेक्टर गहराई से देखने पर जीवन की तुलना में हल्का और अधूरा सिद्ध हो सकता है । फिर कैरेक्टर और साधारण न में अंतर क्या है? कैरेक्टर की विलक्षणता स्पष्ट दिखती है और साधारणजन की विलक्षणता और विशिष्टता शेष जीवन की साधारणता में खो सी जाती है तो क्या ये कैरेक्टर या कथा के पात्र का केवल बाहरी और अधूरा पक्ष ही प्रस्तुत करते हैं?, पात्र जीवन से बढ़कर होते हैं, क्या यह मानना मात्र भ्रम है?' [58]

हार्वी द्वारा उठाई गई इस समस्या के उत्तर में डॉ शशिभूषण सिंहल लिखते हैं 'पात्र मूलतः साधारण जीवन जैसा होते हुए भी अपने प्रस्तुतीकरण और निखार में उससे भिन्न; विलक्षण होता है । साधारण जीवन में बहुत कुछ है, जो बिखरा हुआ है; गड्‌डमड्‌ड है और एक रस है किन्तु पात्र में एक तराश होती है, जो उसके दृष्टव्य पक्ष को तीखेपन से उभारती है । उपन्यासकार किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के घेरे में रखकर पात्र के रूप को देखता-दिखाता है । पात्र को परिस्थितियों का यह घेरा या जीवन प्रसंग पात्र के उल्लेखनीय पक्ष को उसके शेष जीवन प्रवाह से अलग करके तराशता है । इस प्रकार तराशा हुआ पात्र जीवन के साधारण जनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है । जीवन में हम अपने बारे में तो प्रायः अभिज्ञ होते हैं परन्तु दूसरों के विषय में हमारा ज्ञान सीमित होता है । हम दूसरों के कुछ लक्षण देखकर अनुमान के आधार पर अनके व्यक्तित्व का सरलीकरण करते हैं । पात्र; उपन्यास में हमसे परे

---

[58] W.J. Harvey, Character and the Novel, P. 58 अनुवाद एवं संदर्भ - डॉ शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास : नए क्षितिज, पृ0 20

दूसरा व्यक्ति ही है फिर भी वह जीवन के अन्य लोगों की भाँति अनदेखा, अनुमित और अतिसरलीकृत नहीं होता । उसमें पारदर्शिता होती है । उपन्यासकार के लिए उसका अंतःकरण अभेद्य नहीं है । वह अपनी सहज कल्पना से उसके मन की गहराई में उतर जाता है । अतः पात्र के विषय में कहा जा सकता है कि यह जीवन से चुना हुआ और तराशा गया एक पारदर्शी व्यक्तित्व है । इसमें साधारण जीवन के स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा अधिक अर्थवत्ता होती है ।' [59]

पात्र के संस्कारों की समष्टि को चरित्र कहा जा सकता है । पात्र का स्वभाव वैचित्र्य ही समष्टि रूप में उसका चरित्र है । पात्र और चरित्र में कथा और कथावस्तु की भँति ही अभिन्न संबंध होते हुए पर्याप्त अंतर है । उपन्यास की कथा में जितने व्यक्ति आ जाते हैं वे सभी उस कथा के पात्र हैं; परन्तु चरित्र केवल वे ही व्यक्ति हैं जिनके सहारे कथावस्तु का निर्माण होता है । चूंकि व्यक्तित्व के विकास तथा गतिशीलता की आधारभूमि का निर्माण समाज द्वारा ही होता है । व्यक्तित्व का सामाजिक संपर्क ही उसे नैतिकता एवं वैधानिकता की ओर उन्मुख करता है और समाज की मान्यताएँ तथा नैतिकता उसमें चरित्रगत विशेषताओं के रूप में कतिपय मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास करती है । अतः चरित्र व्यक्तित्व का नैमिक और सदाचारीय पक्ष है अर्थात् चरित्र का प्रवर्तक उसका व्यक्तित्व है । व्यक्तित्व (आंतरिक एवं बाह्य) जब घटनाओं या जीवन के संपर्क में आने से गतिशील होकर उद्घाटित होता है; तब वह उसका चरित्र कहलाता है और पात्रों ही की मनोभावनाओं और क्रियाकलापों से उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है ।

उपन्यास की सहज संवेद्यता इसी पर निर्भर करती है कि उसके पात्र कितने जीवंत हैं । समर्थ उपन्यासकार अपनी कल्पना शक्ति से इस प्रकार के सजीव पात्रों की सृष्टि कर सकता है; जो जीवन की कोरी प्रतिकृति न होने पर भी जीवन की वास्तविकता को सहज संवेद्य बनाते हैं । इसी कारण औपचारिक पात्रों का चुनाव उपन्यासकार अपने परिवेश से ही करता है । जितना ही बड़ा उसका परिवेश होगा ; उतने ही बड़े पैमाने पर उसकी पात्र सृष्टि होगी ।

उपन्यास में पात्रों की स्थिति पर विचार करते हुए डॉ सिंहल कहते हैं 'पात्र उपन्यास में 'स्व' का प्रकाशन करता है । स्व के अंतर्गत उसका इतिहास तााि गतिविधि

[59] डॉ शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास : नए क्षितिज, पृ0 20-21

रहती है । मानव की जन्मजात मूल वृत्तियां बचपन में ही परिस्थितिवश विशिष्ट रूप धारण कर लेती हैं । इन्हें हम व्यक्ति का मूल संस्कार कह सकते हैं । मूल संस्कार की पूंजी लेकर मनुष्य जीवन जीता है । परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और समस्याएँ; दुविधाएँ सामने आने पर अपना मार्ग चुनता है और निर्णय लेता है । पात्र के मूल संस्कारों और गत निर्णयों का संकेत देकर उपन्यासकार उसे अग्रसर होने देता है । यही पात्र के स्व का प्रकाशन है ।' [60]

उपन्यास में पात्र मेरुदण्ड के समान हैं । उपन्यास मानव जीवन की कथा है और उपन्यास के पात्र मानव जीवन के प्रतीक हैं । उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने 'उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र' कहकर उपन्यास में मात्र को महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है । प्रसिद्ध विदेशी उपन्यासकार हेनरी जेम्स ने भी चरित्र चित्रण के महत्व को समझते हुए लिखा है 'उपन्यास के अस्तित्व का एकमात्र कारण यह है कि वह मानव जीवन के चित्रण का प्रयास करता है।' [61] जीवन के अनुभवों तथा जीवन के विविध रूपों के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा ही उपन्यासकार पात्र सृष्टि का सृजन करता है । यह देखते हुए कहा जा सकता है कि उपन्यासकार का व्यक्तित्व उपन्यास के पात्रों में अंतर्निहित रहता है । वास्तव में उपन्यासकार की अनुभूति अल्पना के रंग में रंगकर पात्र के चरित्र का निर्माण कर देती है ।

डॉ भगवतशरण अग्रवाल के मत से क्योंकि मनुष्य ही उपन्यासकार है; मनुष्य ही पाठक है और मनुष्य का जीवन चरित्र ही उपन्यास में अंकित किया जाता है । इसलिए उपन्यास के पात्र वास्तविक और सजीव लगें; उनका ऐसा चित्रण आवश्यक है वे पात्र हमारे दैनिलक जीवन से संबंधित न भी हों पर उनकी मानवोचित भावनाओं में उनका दुःख और सुख, हर्ष और विषाद, क्रोध, घृणा, राग-द्वेष, दया, ममता इत्यादि वैसे ही होने चाहिए जैसे कि हम नित्य प्रति के जीवन में देखते है । पात्रों का व्यक्तित्व कुछ ऐसा प्रभावोत्पादक होना चाहिए जिसे हम आसानी से भुला न सकें । [62]

यह तो सर्वस्वीकृत है ही कि उपन्यास के पात्र सप्राण, सहज और विश्वसनीय होने चाहिए । साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि उपन्यास में पात्रों की श्रेष्ठता-निकृष्टता

---

[60] डॉ शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास : नए क्षितिज, पृ0 21

[61] Henry James,The Art of Fiction, P. 393

[62] डॉ भगवतशरण अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास और राजनीतिक आन्दोलन, पृ0 13

का आधार उनमें निरूपित गुण-दोष नहीं प्रत्युत उनका रूपायन होता है । दुष्टातिदुष्ट पात्र के आरेखन में भी यदि लेखक सफल रहता है तो उस पात्र निरूपण को श्रेष्ठ माना जाएगा ।[63]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि औपन्यासिक घटनाओं को विकास क्रम की अवस्था से पार कर उसके अंतिम उद्देश्य तक ले जाने की प्रक्रिया मे जो भी प्राणी सहयोग देते हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से संबद्ध होते हैं; वे चाहे मनुष्य हों या मनुष्येतर प्राणी; पात्र का स्वरूप निर्मित करते हैं ।

(ii) पात्रों के विविध प्रकार

उपन्यास मानव जीवन का सूक्ष्म, व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण चित्रण है । उपन्यासकार मानव समाज का ही एक अंग होता है । अतः उसके द्वारा पात्र चयन भी उसके चारों ओर व्याप्त समाज से ही होता है । स्वभाव, प्रवृत्तियों और क्रियाकलाप इत्यादि की दृष्टि से समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं । यही कारण है कि उपन्यासों में भी अनेक प्रकार के पात्रों की योजना होती है । सुविधा की दृष्टि से औपन्यासिक पात्रों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है ।

क. उपन्यास कथा में महत्व की दृष्टि से पात्र-वर्गीकरण

प्रत्येक उपन्यास के कथा विकास में अनेक पात्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहता है । इसमें से कुछ पात्र तो कथा को अंतिम परिणाम तक ले जाने में सक्रिय रहते हैं ; कुछ आवश्यकता और अवसर के अनुसार उसे कोई नया मोड़ देकर तिरोहित हो जाते हैं तथा कुछ पात्र अपना कोई पृथक अस्तित्व न रखकर अन्य पात्रों के चरित्र विकास का माध्यम मात्र बनकर आते हैं । अतः कथा में पात्रों के महत्व को दृष्टि में रखते हुए पात्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; प्रधान पात्र, गौड़ पात्र तथा सामान्य (उपकरण) पात्र ।

प्रधान पात्र वे होते हैं जिन पर संपूर्ण कथानक आश्रित होता है अर्थात् जो कथा का नेतृत्व करते हैं । नायक-नायिका, सहनायक-सहनायिका तथा

[63] डॉ रजनीकान्त शाह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ0 69

प्रतिनायक-प्रतिनायिका प्रधान पात्रों के अंतर्गत आते हैं । इनमें से नायक-नायिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते है, क्योंकि उपन्यास की केन्द्रीय घटना; उसका मूल कथानक इन्हीं से संबंधित होता है । पुरुष पात्रों में सर्वप्रधान पात्र; जो प्रारंभ से लेकर अंत तक उपन्यास को और उसके साथ ही पाठकों के ध्यान को; अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता है । इस पात्र का लक्ष्य ही उपन्यास का लक्ष्य होता है । इसी को केन्द्र मानकर उपन्यास और उसके सभी तत्व घूमते हैं । सुखांत उपन्यास में जो फल का उपभोक्ता होता है और दुःखांत उपन्यास में जिसके प्रति सबसे अधिक सहानुभूति उपड़ पउती है, वही उपन्यास का नायक होता है । [64] यही परिभाषा नायिका के लिए भी उपयुक्त बैठती है । अंतर मात्र इतना है कि जहां नायक सर्वप्रधान पुरुष पात्र होता है, वहां नायिका सर्वप्रधान स्त्री पात्र । सामान्यतः उपन्ास के नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी को ही नायिका माना जाता है परन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं है । प्रत्येक उपन्यास में नायक और नायिका दोनों का होना अनिवार्य हो; यह भी नहीं कहा जा सकता । किसी उपन्यास में नायक और नायिका दोनों हो सकते हैं और केवल नायक या केवल नायिका भी । नायक प्रधान उपन्यास के नायक की पत्नी का नायिका होना अनिवार्य नहीं और न ही नायिका प्रधान उपन्यास की नायिका के पति का नायक होना । इस बारे में भी कोई निश्चित नियम नहीं है कि उपन्यास में नायिका की अपेक्षा नायक को ही प्रमुख माना जाए । समाज में पुरुष की अपेक्षा स्त्री का स्थान गौण होने के अनुरूप ही कदाचित उपन्यास में भी नायिका का स्थान गौण रखे जाने की परिपाटी रही । लेकिन जैसे-जैसे समाज में नारी का सीान पुरुष की बराबरी का होता जा रहा है, उसी अनुपात में हम देखते हैं कि उपन्यास में भी नायिका अधिक प्रमुख होती जा रही है । आजकल नायिका प्रधान उपन्यास अधिक देखने में आ रहे हैं । स्त्री विमर्श इसी से एक अलग वाद चल पड़ा है ।

संस्कृत के अनेक आचार्यों ने नाटक के संदर्भ में नायक-नायिका के लक्षणों तथा भेदोपभेदों का विस्तार से वर्णन किया है । उनका यहां उल्लेख अभिप्रेत नहीं, क्योंकि उपन्यास में उनका विकास किसी प्रकार की सीमाओं में बँधकर नहीं होता । उपन्यास के पात्र निरंतर विकासमान रहते हैं और उनका चरित्र नवीन दिशाएँ ग्रहण करता रहता है ।

सहनायक और सहनायिका को एक प्रकार से नायक-नायिका का सहयोगी कहा जा सकता है । इनका अपना कोई पृथक लक्ष्य नहीं होता । ये तो नायक-नायिका की

[64] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 55

पीठ ठोंकते रहते हैं; उनके अनुकूल वातावरण का निर्माण करते हैं तथा उन्हीं के कार्य-व्यापार में योग देकर उनकी लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक बनते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने प्रासंगिक कथा के नायक को सहनायक बताया है । उनकी दृष्टि में यह नायक की सी प्रकृति वाला, पर गुणों में उससे कम होता है । [65]

नायक की लक्ष्य-प्राप्ति में सर्वाधिक बाधा उपस्थित करने वाले पुरुष पात्र को प्रतिनायक तथा नायिका के मार्ग में सबसे अधिक प्रतिरोध करने वाले स्त्री पात्र को प्रतिनायिका कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने प्रतिनायक के लक्षण बताते हुए लिखा है कि वह धीरोद्धत, पापाशय तथा व्यसनी होता है । [66] उन्होंने प्रतिनायक में धीराद्धत नायक के सभी गुण तो माने ही हैं; उसका पापी और व्यसनी होना भी माना है । इस प्रकार धीरोद्धत नायक और प्रतिनायक में अत्यंत सूक्ष्मम अंतर यह रह जाता है कि धीरोद्धत नायक में इतने अवगुण होते हुए भी उसकी प्रवृत्ति पाप की ओर नहीं होती परंतु प्रतिनायक अथवा प्रतिनायिका स्वार्थ सिद्धि के लिए सत्य और असत्य तथा पाप और पुण्य के भेद को मिटा देते हैं । जिस प्रकार हर प्रकार के नायक में धीरता [67] का होना अनिवार्य माना गया है, उसी प्रकार प्रतिनायक में भी धैर्य और दृढ़ता का होना आवश्यक समझा गया है । प्रतिनायक नायक की टक्कर का ही पात्र होता है। शक्ति और साधनों में वह किसी प्रकार भी नायक से कम नहीं बैठता बल्कि वह विरोधमूलक दृढ़ता और षडयंत्रकारिता में नायक को मात देने में समर्थ होता है । नायक के मार्ग में वह जितना सबल अवरोध खड़ा करता है, उसे पार करने में नायक को उतना ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है । इसी से उसके चरित्र में निखार आता है यही स्थिति उपन्यास में प्रतिनायिका की होती है । इस प्रकार नायक-नायिका के चरित्र विकास में प्रतिनायक-प्रतिनायिका का विशेष हाथ होता है ।

उपर्युक्त प्रधान पात्रों के अतिरिक्त प्रत्येक उपन्यास में कुछ गौण पात्र भी होते हैं जो कथानक की दृष्टि उतने महत्वपूर्ण नहीं होते । ये मात्र साधन रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं । इसकी अवतारणा कथानक को तीव्रता प्रदान करने, प्रधान पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने, उन पर टीका टिप्पणी करने, वातावरण में परिवर्तन लाने

---

[65] आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक 78

[66] आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक 163

[67] आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक 163 (धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित एवं धीरप्रशांत)

तथा वातावरण की सृष्टि आदि के लिए की जाती है । इन पात्रों का औपन्यासिक जीवन अपने लिए नहीं; दूसरों के लिए होता है । उनका आत्मोत्सर्ग अपनी इच्छा से नहीं वरन् उपन्यास की आवश्यकता पूर्ति के लिए होता है ।[68] इस प्रकार के सहायक पात्रों को अंग्रेजी में फ्लैट, पिन या डिस्क चरित्रों का नाम दिया गया है । उपन्यास में इनका चित्रण अधिक गहराई लिए हुए नहीं होता । इनका चित्रण भले ही गहराई लिए हुए न हो, पर उपन्यास में इनकी उपादेयता किसी प्रकार भी कम नहीं कही जा सकती अवसर विशेष पर; जिनके लिए इनका समावेश किया जाता है; इनका महत्व और प्रभाव किसी प्रकार भी कम नहीं होता । इनमें और प्रधान पात्रों में अंतर यह है कि उपन्यास के कथानक का इनके जीवन से सीधा संबंध नहीं होता और न ही ये उपन्यास जगत के स्थायी सदस्य बन पाते हैं ।

इनके अतिरिक्त उपन्यास में कुछ पात्र ऐसे होते हैं, जो बहती जल-धारा में तृण-पत्रवत् अनायास सम्मिलित हो जाते हैं और उपन्यास में क्षणिक स्थान ग्रहण करने के उपरांत तुरंत लुप्त हो जाते हैं । ऐसे पात्रों को सामान्य या उपकरण पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है । इनका कोई निजी अस्तित्व नहीं होता और न ही उपन्यास कथा को मोड़ देने की शक्ति इनमें होती है । सामान्यतः किसी उत्सव आदि के समय उपस्थित रहने वाला अनाम जन समुदाय, युद्धों आदि में उपस्थित रहने वाला अनाम सैनिक समुदाय, बड़े परिवारों के सेवक-सेविकाएँ, राजघरानों के चौकीदार, परिचारिकाएँ आदि ऐसे पात्र हैं, जिन्हें सामान्य कहा जा सकता है ।

ख. चारित्रिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से पात्र-वर्गीकरण

इस दृष्टि से पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । पहले प्रकार के पात्र वे होते हैं, जो समाज के किसी वर्ग की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते है, ऐसे पात्रों को वर्गगत अथवा प्रतिनिधि पात्र (Type Characters) कहा जाता है । उपन्यास अपने समग्र रूप में संपूर्ण मानव जाति या समाज का चित्र कहा जाता है । इस दृष्टि से प्रत्येक उपन्यास के पात्र अनिवार्य रूप से समाज के किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं ।[69] डॉ राही मासूम रज़ा ने इस प्रकार के पात्रों की रचना न के बराबर ही की है । दूसरे प्रकार के पात्र वे होते हैं जो निज की विशेषताओं को लेकर उपन्यास में पदार्पण करते हैं, जिनका स्थानापन्न कोई अन्य पात्र नहीं हो सकता तथा

[68] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 55
[69] डॉ प्रताप नारायण टण्डन, हिन्दी उपन्यास कला, पृ0 180

जा विलक्षण होते हैं । इस प्रकार के पात्र वर्ग विशेष के गुण दोषों का प्रतिनिधित्व न कर अपनी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करते हैं; इन्हें व्यक्तित्व प्रधान पात्र (Individual Characters) कहते हैं ।

वर्गगत पात्रों में वे विशेषतायें मुख्य रूप से सामने लाई जाती हैं जो समाज के अन्य व्यक्तियों में सामान्य रूप से मिलती हैं । इस स्थान पर आकर पात्र समाज के एक प्रतिनिधि का रूप धारण कर लेता है । वह समाज का मुख बन जाता है । इसके विपरीत व्यक्तित्व प्रधान पात्रों में अपनी निजी विशेषतायें अधिक होती हैं । वे उपन्यास में ऐसी क्रियायें करते हुए और उस प्रकार से सोचते हुए नहीं दिखाए जाते; जैसे कि अधिकांश व्यक्ति करते हैं । उनका रहन-सहन, सोचना-विचारना आदि दूसरे लोगों से कुछ भिन्न प्रकार का एक नयापन लिए हुए होता है । इसका अभिप्राय यह नहीं ि कवे अतीन्द्रिय लोक के काल्पनिक पात्र होते हैं; प्रत्युत इसका अभिप्राय है कि उनके चरित्र की उन विशेषताओं को उभरा और विकसित दिखाया जाता है; जिनके आधार पर उन्हें सर्व-साधारण के साथ नहीं लिया जा सकता । वर्ग-पात्र इतना अधिक और सामान्यीकृत और पाठक का जाना-पहचाना होता है कि उपकी प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान हो जाने के कारण पाठक का उससे इतना अधिक तादात्म्य स्थापित हो जाता है कि उसमें रुचि और जिज्ञासा निःशेष हो जाती है । इसके विपरीत व्यक्ति-पात्र इतना अधिक विलक्षण होता है कि पाठक का उससे तादात्म्य स्थापित नहीं हो पाता और उसके प्रति केवल विस्मयबोध ही उत्पन्न होता है । अतः पात्रों की स्वाभाविकता और सफलता की कसौटी यही है कि टाइप और व्यक्तिगत विशेषताओं का अपूर्व समन्वय किया जाए ।

डॉ प्रताप नारायण टण्डन ने वर्गगत पात्रों का एक और भेद स्वीकार किया है इस भेद के अंतर्गत उन्होंने उन पात्रों को रखा है जो किन्हीं विशेष वर्गों के तो होते हैं; परंतु उनमें अपनी चारित्रिक विशेषतायें भी होती हैं । अपनी इसी विशेषता के कारण ये पात्र भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त किए जाते हैं । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पात्रों का एक भेद उनके बौद्धिक वर्ग के अनुसार भी किया जा सकता है । इस श्रेणी के पात्रों की एक विशेषता यह होती है ि कवे समाज के चाहे जिस वर्ग के प्रतिनिधि हों; उपन्यास में उन्हीं आदर्शों व विचारों का प्रचार करते हुए दिखाइ देंगे; जिसके अंतर्गत वे बौद्धिक दृष्टि से आते हैं । यदि किसी अवसर विशेष पर उनमें किसी प्रकार का सैद्धांतिक संघर्ष संभाव्य होगा तो वे यथाशक्ति उसकी उपेक्षा करेंगे और अपने बौद्धिक स्तर सिद्धांतों से समझौता नहीं करेंगे । इस दृष्टि से इस कोटि के

पात्रों का चरित्र प्रभावशाली होता है ।[70] ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ टण्डन ने व्यक्तित्व प्रधान पात्रों को पृथक न मानकर वर्गगत पात्रों के अंतर्गत ही समाविष्ट कर लिया है तथा वर्गगत पात्रों के एक भेद के रूप में ही स्वीकार कर लिया है ।

इन टाइप और व्यक्तिगत चरित्र के प्रश्न को आज के यथार्थवादी आलोचकों ने भी अपनी दृष्टि से उठाया है । इस संबंध में हंगेरियन मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री जॉर्ज लुकाच (George Lukacs) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Studies in European Realism' में यथार्थ की कसौटी निश्चित करते हुए इसका सारा श्रेय टाइप चरित्र को प्रदान करते हैं । उनकी मान्यता है "The central category and criterion of realist literature is the type, a particulars synthesis which organically binds together the general and particulars both in characters and situations".

इस प्रकार जहां व्यक्तिगत और समाजगत गुण एक ही पात्र में विभिन्न परिस्थितियों में दिखाए जाते हैं; लुकाच उसी पात्र को टाइप पात्र कहते हैं । टाइप की परिभाषा देते हुए मास्को से निकलने वाले एक पत्र के संपादकीय लेख मे बताया गया है "Typification is the correct reflection of life in realist art".[71]

तात्पर्यतः यथार्थवादी साहित्य में जीवन का यथार्थ चित्रण टाइप चरित्र द्वारा ही संभव है । इसका मूलभूत कारण यह भी हो सकता है कि मार्क्सवादी मान्यताओं के अनुसार सामाजिक जीवन इतना सामान्य एक-सा और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से रहित हो जाता है कि उसमें ऊपर से एकरूपता के ही दर्शन होते हैं । अतः यदि उसके पात्रों को टाइप ही माना जाए तो उसका कोई विशेष औचित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

इस संबंध में भारतीय विचारकों का यह मत ग्रहणीय माना जा सकता है कि जिस पात्र में व्यक्तिगत विशेषतायें प्रधान न होकर समाजगत विशेषतायें प्रधान रहती हैं; वही टाइप कहा जा सकता है । एंगिल्स ने भी इसको इस तरह कहा है "Each

---

[70] डॉ प्रताप नारायण टण्डन, हिन्दी उपन्यास कला, पृ0 180-181
[71] Kummunist, No. 18, Year 1955

person is a type but at the sometime a quite definite personality". एंगिल्स के अतिरिक्त मार्क्स, लेनिन, गोर्की आदि सभी मार्क्सवादी विचारकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि जब तक पात्र में व्यक्तिगत विशेषतायें नहीं होंगी, तब तक वह इस दुनिया का व्यक्ति किस प्रकार माना जाएगा? फिर तो वह Prototype हो जाएगा, अस्तु । हमारे विचार से प्रेमचन्द जी के इस मत को स्वीकार्य समझा जाना चाहिए कि पात्रों की स्वाभाविकता और सफलता की कसौटी इसी में है कि उनमें टाइप और व्यक्तिगत विशेषताओं का अपूर्व समन्वय किया जाए ।

ग. चारित्रिक परिवर्तनशीलता की दृष्टि से पात्र-वर्गीकरण

इस आधार पर उपन्यासों में प्रायः दो प्रकार के पात्र दृष्टिगोचर होते हैं स्थिर एवं गतिशील ।[72]

जो पात्र प्रारंभ से अंत तक एक समान रहते हैं तथा वातावरण, परिस्थितियों तथा घटनाओं के घात-प्रतिघात का जिन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उन्हें स्थिर पात्र कहा जाता है । इसके विपरीत जो पात्र वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं तथा कथानक के विकास के साथ-साथ जिनका चरित्र विकसित होता है, उन्हें गतिशील पात्र कहा जाता है । इन्हें विकसनशील पात्र भी कहा जा सकता है क्योंकि परिस्थिति का छोटा सा आघात भी इनकी जीवन दिशा और विचार पद्धति को बदल देता है ।

उपन्यासकार प्रारंभ से ही स्थिर पात्रों की रूपरेखा इतनी पक्की और स्पष्ट बना लेता है; उनकी रुचि और अरुचि, प्रेम और घृणा, प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषयों को ऐसा निश्चित कर देता है कि उन पूर्व निर्धारित सीमाओं को तोड़ने का उनके लिए प्रश्न ही नहीं उठता । अपने परिपार्श्व के प्रति उनका जो दृष्टिकोण उपन्यास के प्रारंभ में बन जाता है, वह किसी प्रकार भी विकसित नहीं होता और कथानक के अंत तक वैसा ही रहता है । ऐसे पात्र प्रारंभ से अंत तक स्थिर रहते हैं । वे स्वयं नहीं बदलते; केवल बदलता है उनके संबंध में पाठकों का ज्ञान । [73]

---

[72]बाबू गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ0 179

[73] Edwin Muir, The Structure of the Novel, P. 24-25. "Their (of flat characters) weaknesses, their vanities, their foibles; they possess from the beginning and never lose to end and what actually does chane is not these but our knowledge of them."

गतिशील पात्र स्थिर पात्रों की भाँति प्रारंभ से ही पूर्ण नहीं होते और न ही उनकी कोई पूर्व निर्धारित सीमाएँ होती हैं । उनके विकास की कोई भी अवस्था स्थिर और अंतिम नहीं कही जा सकती । किस क्षण वे क्या कर देंगे? इस विषय में कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता । स्थिर पात्रों की परिस्थितियां और उनका परिपार्श्व तो बदलता रहता है; वे स्वयं नहीं बदलते । दूसरी तरफ गतिशील पात्रों की परिस्थितियां चाहे न बदलें; एक दूसरे की क्रिया-प्रतिक्रिया से ही उनका विकास होता रहता है । [74]

स्थिर पात्रों की विशेषतायें कुछ ही वाक्यों में चित्रित की जा सकती हैं परंतु गतिशील पात्रों की विशेषताओं का वर्णन कुछ वाक्यों में नहीं किया जा सकता क्योंकि वे विकसनशील होते हैं और उनमें परिवर्तन होता रहता है । [75] ई. एम. फार्स्टर की दृष्टि में गतिशील पात्रों की सबसे बड़ी परीक्षा होती है कि किसी विशेष वातावरण में उनमें पाठकों को आश्चर्य में डालने की क्षमता है या नहीं । अगर वे स्वाभाविक ढंग से अपने परिवर्तन द्वारा आश्चर्यचकित करने में असमर्थ रहते हैं तो वे स्थिर पात्र ही होते हैं; भले ही वे गतिशील पात्र होने का बहाना क्यों न करें । [76] डॉ रांग्रा की दृष्टि में स्थिर पात्र प्रायः व्यक्ति नहीं; प्रकार (टाइप) होते हैं, किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि । [77]

पात्रों की क्रियाशीलता को दृष्टि में रखते हुए फार्स्टर ने सजीव, सशक्त तथा गतिशील पात्रों को राउण्ड तथा अनिश्चित रूप वाले एवं चेतना शून्य स्थिर पात्रों को फ्लैट कहा है । [78] स्थिर पात्रों का एक दूसरा पक्ष भी हैजिसमें उनकी एकरसता तथा अस्वाभाविकता असहज होकर हास्य-व्यंग्य की उद्‌भावना करती है । कुछ पात्र हमारे सामने अपने अतिरंजित रूप में आते हैं और अपने विशेष चिन्हों या हाव-भावों के आधार पर एकदम पहचान लिए जाते हैं । ऐसे पात्रों के प्रति हमारा व्यंग्य भाव उसी प्रकार जाग्रत हो जाता है जिस प्रकार किन्हीं विख्यात व्यक्तियों को उनके कार्टून

[74] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 61

[75] Edwin Muir, The Structure of the Novel, P. 141

[76] E. M. Forster, Aspects of the Novel, P. 106. "The test of a round character is whether it is capable of surprisisng in a convincing way. If it never surprise it is flat. If it does not convince, it is flat pretending to be round."

[77] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 60-61

[78] E.M.Forster, Aspects of the Novel, P. 93

देखकर । 17वीं शताब्दी में इस प्रकार के फ्लैट चरित्रों को ह्यूमर्स तथा कभी-कभी टाइप्स व कैरीकेचर कहते थे ।[79]

आधुनिक उपन्यासों में स्थिर पात्रों की अपेक्षा गतिशील पात्रों की अवतारणा अधिक की जाती है क्योंकि गतिशील चरित्र यथार्थ के अधिक निकट होते हैं । स्थिर पात्र उपन्यास में आते ही पाठकों द्वारा पहचान लिए जाते हैं क्योंकि प्रारंभ में उनकी जो विशेषतायें दिखाई देती हैं; वही अंत तक विद्यमान रहती हैं । इस प्रकार के पात्रों से कभी-कभी पाठकों का मन ऊबने लगता है तथा उनकी उत्सुकता समाप्त हो जाती है । इसके विपरीत गतिशील पात्रों के बदलते हुए रूपों तथा गतिविधियों को जानने की उत्सुकता निरंतर बनी रहती है । वह जब भी हमारे सम्मुख आते हैं; अपने में एक नवीनता लिए आते हैं और अपनी उस नवीनता से हमारा मन सहज ही आकर्षित करने में समर्थ हो जाते हैं । परंतु इसके कुछ अपवाद भी, यदि कोई उपन्यासकार स्थिर पात्रों के सब गुण-दोषों का; उनके स्वभाव की सभी विशेषताओं का एकदम उद्‌घाटन न करके एक-एक कर प्रकाश में लाए तो पाठकों की रुचि और उत्सुकता ज्यों की त्यों बनी रह सकती है ।

आधुनिक उपन्यासों में पात्रों का एक नवीन भेद भी परिलक्षित होता है । प्रतीक पात्र उपन्यासकार के विचार, जीवन-दर्शन आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं । यदि ये प्रतीक पात्र विचार और जीवन-दर्शन के वाक्य मात्र होते हैं तो उबाने वाले सिद्ध होते हैं; किन्तु यदि ये युग सत्य के उद्‌घाटन के साधन बनकर आते हैं तो पाठकों पर इनका आत्यंतिक प्रभाव पड़ता है । ये पात्र युग चेतना की अभिव्यक्ति के उपयुक्त माध्यम होते हैं परंतु इनकी परिकल्पना में अतिरिक्त सावधानी अपेक्षित होती है ।

पात्रों का उपर्युक्त तीन प्रकार का वर्गीकरण ही सामान्य रूप से प्रचलित है । किन्तु इन तीन प्रकार के वर्गीकरण से पात्रों की अन्य प्रवृत्तियों का निदर्शन नहीं हो पाता है । दूसरे इस प्रकार से किए गए वर्गीकरण में पात्रों का स्पष्ट भेद भी नहीं ज्ञात हो पाता है । इसीलिए डॉ प्रताप नारायण टण्डन ने पात्रों के भेद इस प्रकार किए हैं -

1. प्रमुख और सहायक पात्र
2. पुरुष और स्त्री पात्र

[79] Do, P. 75. " We may devide characters into flat and round. Flat characters were called 'humours' in the the seventeenth century and are sometimes called types and sometimes caricatures."

3. खल पात्र
4. यथार्थवादी पात्र
5. व्यक्तिवादी पात्र
6. मनोवैज्ञानिक पात्र
7. मानसिक असंतुलन वाले पात्र
8. प्रतीकात्मक पात्र
9. ऐतिहासिक पात्र
10. सामाजिक पात्र
11. राजनीतिक पात्र
12. धार्मिक पात्र
13. पौराणिक पात्र
14. बुद्धिजीवी पात्र[80]

औपन्यासिक दृष्टि और पात्रों की विविधता को समेटने के लिए कभी कभी सुविधानुसार पात्रों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है । राही जी के पात्रों का वर्गीकरण आगामी अध्याय में विस्तार से किया गया है ।

2. साहित्य में पात्रों का महत्व

साहित्य की सभी विधाओं में पात्रों का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का । जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निरर्थक हो जाता है उसी प्रकार पात्रों के बिना साहित्यिक कृति प्राणहीन हो जाती है । पात्र ही वह आधार है जिस पर किसी साहित्यिक कृति रूपी इमारत खड़ी होती है । यहां हम राही के उपन्यासों को आधार बनाकर उनकी स्थापनाओं पर विचार कर रहे हैं, अस्तु । साहित्य के स्थान पर यहां उपन्यास का उल्लेख उपलक्षण रूप में किया जाता है वस्तुतः साहित्य की सभी विधाओं के लिए यहां उसका अभिप्राय है । पात्रों के बिना उपन्यास के अन्य तत्व बेकार हो जाते हैं । उपन्यास चाहे घटना प्रधान हो या चरित्र प्रधान या मनाविश्लेषलात्मक या ऐतिहासिक; उसमें एकाधिक पात्र का होना आवश्यक है । उपन्यासकार में कल्पना की अपूर्व क्षमता होती है । उसी के आधार पर वह पात्रों को गति देता है । पात्र संपूर्ण मानव जगत के प्राणियों के अनुभवों को स्वयं में धारण किया हुआ होता है । पात्र का कोई निजी अस्तित्व नहीं होता है । वह लेखक के दृष्टिकोण का प्रतिरूप होता है ।

[80] डॉ प्रताप नारायण टण्डन, हिन्दी उपन्यास कला, पृ0 61

सफल उपन्यास के पात्र कल्पित होते हुए भी सजीव मानव चरित्र होते हैं । क्योंकि उपन्यास के पात्र कल्पित होते हैं इसलिए हम उन्हें भी मीमांसा की कसौटी पर कसते हैं । वही पात्र और उसका जीवन इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है जो अनुभव अध्ययन मनोविज्ञान के ज्ञान के बल पर अध्यवसाय द्वारा उद्देश्य की भावना के द्वारा चित्रित किया गया हो ।

उपन्यास में कथानक के समान पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है । उपन्यासकार कथानक के अनुकूल पात्रों का संयोजन करता है । वह उनकी आकृति, विचार, मनोभावों, कार्यकलापों आदि का चित्रण करता है । इस तरह वह कथानक को सजीव एवं राचक बनाता है ।

उपन्यासकार को यथासंभव इस बात का प्रयत्न करना पड़ता है कि उसके पात्र सजीव मानव चरित्र हों और वे किसी न किसी रूप में मानव चरित्र का प्रतिनिधित्व करे । इस संबंध में प्रेमचन्द का यह मत उल्लेखनीय है 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यासकार का कर्तव्य है ।' [81]

प्रसिद्ध अंग्रेजी विचारक हेनरी जेम्स ने अपनी पुस्तक दि आर्ट आफ फिक्शन में एक स्थल पर स्पष्ट रूप से कहा है कि उपन्यास के अस्तित्व का एक मात्र कारण यह है ि कवह जीवन के चित्रण प्रयास करता है । [82] उपन्यास का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, वह कोरा मनोरंजक हो या समाजोपयोगी हो; मनोवैज्ञानिक हो अथवा सत्यान्वेषी हो; इससे कोई अंतर नहीं पड़ता । यहां तक कि कोरे कौतूहलोद्दीपक, तिलिस्मी और ऐय्यारी तथा जासूसी उपन्यासों में भी पात्रों के चरित्रों को उनके कृत्य तथा कथोपकथनों द्वारा व्यक्त करने का प्रयास मिलता है । कई स्थलों पर पात्र को उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है । केवल उपन्यास साहित्य में ही नहीं अपितु नाटक, कहानी, एकांकी, महाकाव्य तथा खण्डकाव्य सहित सभी विधाओं में पात्रों का विशेष महत्व है । सच पूछा जाए तो बिना पात्रों के कोई रचना हो ही नहीं सकती । उपन्यास में लेखक अपने-अपने पात्रों को इच्छानुसार भिन्न-भिन्न स्थलों पर जिस प्रकार चाहे वार्तालाप प्रस्तुत कर सकता है; जबकि नाटक, एकांकी आदि में इस प्रकार नहीं कर सकता । उपन्यासकार न केवल पात्रों के विषय में वक्तव्य प्रस्तुत कर सकता है; जैसा डॉ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में किया है , वरन् वह उनके चरित्र

[81] प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ0 38
[82] Henry James, The Art of Fiction, P. 393

और वक्तव्य की उन सूक्ष्म पर्तों को हमारे सामने निरावृत कर सकता है जिससे पाठक स्तर की उसी गहराई में उस पात्र की चेतना और अनुभूतियों से परिचित हो सकता है

यदि कोई उपन्यासकार अपनी कृति में सशक्त एवं प्रभावशाली पात्रों की सृष्टि नहीं कर पाता तो वह कदापि सफल नहीं हो सकता । यदि किसी उपन्यास के पात्रों में सजीवता या सशक्तता होती है तो वे पाठक के हृदय पर भारी प्रभाव डालते हैं और यदि उनमें इन गुणों का अभाव होता है तो वे प्रभाव रहित ही सिद्ध होते हैं तथा पाठक को किसी प्रकार का भी चिंतन करने की प्रेरणा देने में असमर्थ रहते हैं । [83]

लेखक स्वयं पात्रों का वर्णन इस ढंग से करता हुआ प्रतीत होता है मानो वह अपने पाठकों पर किसी पात्र विशेष के चरित्र की अच्छी या बुरी धाक जमाना चाहता हो । पात्रों की स्वाभाविकता इसी में है कि वे जीवन के स्वाभाविक धर्मों, राग-द्वेष, घृणा, करुणा, प्रेम आदि से स्वयं प्रभावित हों और हमें भी प्रभावित करें । वे पाठक को यह प्रतीत करा दें ि कवे भी सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होने वाले मांस निर्मित सांसारिक मानव की तरह हैं । वास्तविक जीवन में भी हर व्यक्ति अपना एक अलग व्यक्तित्व रखता है जिसके कारण वह समूह में भी पहचाना जाता है । उसका यही व्यक्तित्व जीवन के संघर्ष में उसे आगे बढ़ाता है । पात्रों में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वे परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए तथा उन्हें बनाते बिगाड़ते हुए आगे बढ़े यदि पात्रों में कोई अपनी जीवनी शक्ति अथवा अपना निजी व्यक्तित्व नहीं होगा तो वह लेखक के हाथों की कठपुतली बन जाएगा ।

समीक्षकों की दृष्टि में चरित्रांकन की सफलता तो यह है कि उपन्यास के पात्र जीवित स्त्री-पुरुषों की भाँति दृष्टिगोचर हों । पुस्तक बंद कर देने पर भी वे हमारी स्मृति में जीवित रह सकें । स्वयं डॉ राही मासूम रज़ा ने कहा है 'मैं प्यार में विश्वास नहीं करता । मेरी श्रद्धा मानवीय संवेदनाओं में है; इसलिए मेरे लेखन का केन्द्र मनुष्य है, कैरेक्टर है । यदि प्लाट भारी पड़ गया तो इस कैरेक्टर को विकास का मौका नहीं मिलेगा और यदि हम अमूर्तता में सोचते रहे तो बेचारे कैरेक्टर पर एमरजेंसी लदी रहेगी । यह मुझे कतई पसंद नहीं ।' [84]

---

[83] डॉ प्रताप नारायण टण्डन, हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ0 61

[84] सारिका, 1 दिसंबर 1978, पृ0 11

अंत में हम सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ रणवीर रांग्रा के शब्दों में कह सकते हैं कि पात्र या चरित्र-चित्रण उपन्यास का एक अभिन्न तत्व है; उपन्यास में वह अनायास प्रस्तुत हो या सायास, उसमें वह साधन बनकर आया हो या साध्य बनकर । [85]

3. साहित्य और पात्र-परिकल्पना : तात्पर्य एवं परिभाषा

'गिरा अरथ' तथा 'जल-बीचि' के समान पात्र तथा पात्र-परिकल्पना भी कहने भी को ही भिन्न हैं । वस्तुतः दोनो आधाराधेय ही नहीं, अंगांगी भाव से भी एक हैं । पात्र-परिकल्पना अथवा चरित्र-चित्रण के माध्यम से ही साहित्य के पृष्ठों पर पात्र अमर-अक्षर बनते हैं तथा वे भावको-पाठकों की चेतना में प्रभाव-भास्वर बनते हैं ।

पात्र-परिकल्पना का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए हर्बर्ट-ओ-हारा ने लिखा हे 'शारीरिक चेष्टाओं, बाह्याकृति, वर्णन, कार्य, प्रेरणा अथवा किसी विधि से पात्रों के व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण ही पात्र-परिकल्पना है ।' [86] वहीं मेरेडिथ के अनुसार 'चरित्र चित्रण कथा पात्रों के व्यक्तिगत एवं (प्रकृति के) गुणों को उद्घाटित कर उन्हें एक दूसरे से भिन्न दिखाने की विधि है ।' [87] मेरेडिथ की इस परिभाषा पर विचार करते हुए डॉ रणवीर रांग्रा ने टिप्पणी की है 'इस परिभाषा के मूल में ही कहीं गड़बड़ है । पात्रों को एक-दूसरे से न्यारा दिखलाना चरित्र-चित्रण का साध्य नहीं; उसका साध्य तो उनके चरित्र का प्रकाशन है ।' [88] मेरेडिथ की दी गई परिभाषा से किमधिक यही निष्कर्ष डॉ सूरजकांत शर्मा ने भी निकाला है । [89]

किन्तु डॉ रांग्रा के अनुसार मेरेडिथ की परिभाषा में एक बात विचारणीय है कि क्या पात्रों के केवल न्यारे गुण या स्वभाव के प्रकाश से उनका चरित्र-चित्रण अप्राकृत एवं अधूरा न हर जाएगा । मनुष्य मात्र का मूल एक होने से उनमें भिन्नता होते हुए भी कुछ-न-कुछ समानता अवश्य रहती है । अपनी इस बात की पुष्टि डॉ रांग्रा

---

[85] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 61

[86] Herbert-O-Hara, Introduction to the Teatre (Under the Chapter – A Dictionary to the terms used in playwriting). "Characterization is the bringing out of personality by members of setting, physical action, personal appearance, description, motivation or by other means."

[87] Meredith, Stuffing the Hollowman : Characterization, P. 61. "Characterization….is the method of distinguishing your story people from one another…by revealing the individual and distinctive qualities."

[88] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 27

[89] डॉ सूरजकांत शर्मा, हिन्दी नाटक में पात्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण, पृ0 73

प्रेमचन्द के कथन को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं 'सब आदमियों के चरित्र में बहुत कुछ समानतायें होते हुए भी कुछ विभिन्न्तायें होती हैं । यही चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता; अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व; दिखाना ही उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है । जिससे चूक जाने पर उपन्यास के पात्रों पर उँगलियां उठने लगती हैं ।' [90] उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का अपने पूर्ण रूप में मूल कथन भी मेरेडिथ की बात का आधार है 'किसी भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलती; उसी भाँति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते । जैसे सब आदमियों के हाथ-पाँव, आँख, कान, नाक, मुँह होते हैं; पर उतनी समानता रहने पर भी जिस तरह उनकी विभिन्नता मौजूद रहती है; उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में भी बहुत कुछ समानतायें होते हुए भी कुछ विभिन्नतायें होती हैं यही चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता; अभिन्नत्व में भिन्न्त्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व; दिखाना ही उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है ।' [91] प्रेमचन्द जी का एक अन्य कथन भी मेरेडिथ के चिन्तन का मूल बनता है 'चरित्रों में कुछ न कुछ विशेषता भी रहनी चाहिए । जिस तरह संसार में कोई दो व्यक्ति समान नहीं होते; उसी भाँति उपन्यास में भी न होना चाहिए । कुछ लोग तो बातचीत या शक्ल-सूरत से विशेषता उत्पन्न कर देते है लेकिन असली अंतर तो वह है; जो चरित्रों में हो ।'

पात्र-परिकल्पना को स्पष्ट करते हुए एक अन्य विचारक एम.एल. राबिन्सन ने कहा है 'कथा में लोगों (लोगों) को पर्याप्त मूर्तिमत्ता और स्वाभाविकता के साथ इस प्रकार परिकल्पित करना िकवे पाठकों के लिए छाया नाम न रहकर पुस्तक के समतल पन्नों से उभर आयें और; कम से कम उस समय के लिए तो; व्यक्तित्व के मूल तत्वों से संपन्न हो जायें ।' [92]

डॉ रांग्रा ने इस परिभाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि पात्रों का इस प्रकार चित्रण कि वे व्यक्तित्व धारण कर पाठकों की कल्पना में सजीव होकर नाच उठें; उनके विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ही प्रकाशन होगा, पर पात्रों का चरित्र विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक कब, क्यों और कैसे पहुँचा; यह दिखाये बिना चरित्र-चित्रण अधूरा रह जाएगा । इसके विपरीत, वस्तुस्थिति यह है कि विकास

[90] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 28

[91] प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ0 47

[92] M.L. Robison, Writing for Young People, P. 11. "The Characterization means briefly the setting of people in the story with a sufficient degree of visibility and plausibility so that they may for the redaders emerge from the flat page as more than shadowy names; and possess for the time atleast; the rudiments of personality."

की विभिन्न अवस्थाओं का प्रकाशन अपने में कब, क्यों और कैसे की अवस्थिति प्रक्रिया को स्वतः समाहित-अंतर्हित किए हुए है । विकास की विभिन्न अवस्थाओं का प्रकाशन छलांग लगाते हुए करने की बात विचारातीत है । सच्चाई तो यह है कि पात्रों का चित्रण जितना स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा; उतना ही अलग ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा और यह लेखक की रचना-शक्ति पर निर्भर है । जिस तरह किसी मनुष्य को देखते ही हम उसके मनोभावों से परिचित नहीं हो पाते, ज्यों-ज्यों हमारी घनिष्ठता उससे बढ़ती है; त्यों-त्यों उसके मनोरहस्य खुलते हैं, उसी तरह चरित्र भी लेखक की कल्पना में पूर्णरूप से नहीं आ जाते; बल्कि उनमें क्रमशः विकास होता है । यह विकास इतने गुप्त; अस्पष्ट रूप से होता है कि पढ़ने वालों को किसी तब्दीली का ज्ञान भी नहीं होता । [93]

ई. एम. फार्स्टर के शब्दों में रचनाकार की एक आवश्यक शर्त यह है कि 'उसे (रचनाकार को) अपने पात्रों का पूर्ण ज्ञाता बनना होगा । पात्रों के संबंध में रचनाकार को पूर्ण जानकारी रखनी होगी और उस जानकारी को पाठकों पर प्रकट करते हुए उन्हें प्रतीति करा देनी होगी कि भले ह ीवह समय और स्थान के अभाव में अपने पात्रों की पूर्ण व्यवस्था न कर सका; पर उसके पात्र पहेली नहीं हैं ।' [94]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रचनाकार के लिए अपने पात्रों का एक साथ सृष्टा और जीवनीकार दोनों ही होना आवश्यक है, तभी उसके पात्र सजीव हो सकेंगे । ऐसी प्रतीति करा सकना असाध्य तो नहीं; कष्ट साध्य अवश्य है, पर सच्चा रचनाकार कष्ट सहने में कसर कब उठा रखता है?

क. पात्र-परिकल्पना के सिद्धांत : प्राच्य एवं पाश्चात्य संदर्भ में

यों तो साहित्य सार्वभौम मानव रागों का प्रस्तोता है और इस नाते क्या भारतीय और क्या पाश्चात्य; सभी साहित्यों के अलक्ष्य अंतस्तल में एक ही अविच्छिन्न धारा प्रवहमान है फिर भी दृष्टि भेद से दोनों के आदर्शों और मानकों में कुछ अंतर है, जिसे यहां रेखांकित करने का प्रयास किया जाता है ।

---

[93] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 29

[94] E.M. Forster, Aspects of the Novel, P. 61. "A Character in a book is real when the novelist knows everything about it. He may not choose to tell us all he knows. But he will give us the feeling that though the character has not been explained; it is explicable."

प्राच्य साहित्य मनीषियों का आदर्श यह रहा है कि लिखना उसी को चाहिए जो संघर्ष की अवस्था पार करके कहीं पहुँच चुका हो । प्राच्य मतानुसार लेखक को समदर्शी और अनासक्त होना चाहिए । उसे बहुश्रुत एवं शास्त्र प्रवीण होना चाहिए; जैसा गोस्वामी तुलसीदास ने अपने अमर ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में निवेदन स्वरूप लिखा है

''नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वात्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ।।'' [95]

कवि को हमारे यहां ऋषि और दृष्टा कहा गया 'ऋषयोंः मंत्र दृष्टारः' । इसके विपरीत पश्चिम का आदर्श यह है कि केवल संघर्ष में डूबा हुआ और छटपटाता व्यक्ति ही कलाकार हो सकता है । इसीलिए पात्रों की परिकल्पना में प्राच्य आचार्य तथा कविगण पात्रों के बाह्य रूपाकार, चेष्टा-व्यापार तथा विनिश्चित भाव-रसों के वर्णन-अभिव्यंजन को ही अलम् समझते रहे जबकि पाश्चात्य विचारक तथा रचनाकार मानव के निगूढ़ अंतःवैचित्र्य के अनाख्येय क्षेत्रों का उद्घाटन और निरूपण करते हुए असाधारण चरित्रों के सृजन में सन्नद्ध रहे । असाधारण चरित्रों का सृजन करके प्राच्य मनीषी कृतनाम हुए किन्तु उन पात्रों की गुणावली; विरुदावली प्रायः मानवातीत होने के कारण असामान्य लगती है । इसीलिए शिल्पन की रूपरेखा भारत में बँधी बँधाई, कुछ हद तक स्थूलबद्ध, हो गई जबकि पाश्चात्य साहित्य में वर्ग-बद्ध शिल्प के साथ-साथ व्यक्ति पात्रों की कला-बीथिका दिखाई पड़ती है । इसका आधार अतिमानवीय कृत्य उतना नहीं है; जितना अनंत आयामी मानवीय अंतःकरण । यह दृष्टिभेद दोनों के पात्र-परिकल्पना सिद्धांतों में स्पष्टतः देखा जा सकता है ।

प्राच्य नाट्यशास्त्र में नाटक के मूल तत्व माने गए; वस्तु, नेता एवं रस [96] तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र में कथानक, चरित्र-चित्रण, पद-रचना, विचार तत्व, दृश्य विधान तथा गीत; नाटक के ये छः मूल तत्व स्वीकार किए गए हैं । [97] भरत प्रभृति प्राच्य

---

[95] गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड का श्लोक 7

[96] आचार्य धनंजय, दशरूपक (अनुवादक गोविन्द त्रिगुणायत)1/11, ''वस्तुनेतारसस्तेषां भेदको...''

[97] डॉ नगेन्द्र (संपादक), अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ0 20

आचार्यों ने 'रस' को प्रामुख्य दिया तो अरस्तू आदि पाश्चात्य विचारकों ने कथावस्तु को प्रमुखता दी परन्तु दोनों परंपराओं में चरित्र को निर्विवाद रूप से नाटकादि का अपरिहार्य तत्व स्वीकार किया गया । बल्कि कालांतर में पाश्चात्य विचारणा ने 'चरित्र' को ही प्राधान्य प्रदान कर दिया और आधुनिक प्राच्य साहित्य-धारा ने साहसिक व्याहारिकता को ध्यान में रखते हुए पाश्चात्य चरित्र प्राधान्य सिद्धांत को अपनी स्वीकृति दे दी । उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि पाश्चात्य विधायें हिन्दी साहित्य के लिए प्रभाविका ही नहीं; मार्गदर्शिका भी बनीं, प्रेमचन्द जी ने यह निःसंकोच स्वीकार किया है ।[98]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पात्र-परिकल्पना के विषय में आधुनिक काल में पर्याप्त अर्थों में प्राच्य-पाश्चात्य का भेद मिट गया । आधुनिक पात्र अथवा पात्र-परिकल्पना का आधार वस्तुतः पाश्चात्य पात्र-परिकल्पना के सिद्धांत ही हैं । और तो और महाकाव्य जैसी धीर-गंभीर और अपेक्षाकृत स्थिर विधा के मानक भी प्राचीन प्राच्य लक्षणों पर आधारित न रह गए । 'कामायनी' का नायक नायकों की पारंपरिक चारों कोटियों में मुश्किल से समायोजित होता है; बल्कि सही तो यह है कि नायक-प्रतिनायक, दोनों के वैशिष्ट्य उसके चरित्र में व्याप्त हैं ।

ख. पात्र-परिकल्पना की विधियाँ

उपन्यास में नियोजित विविध पात्रों का चरित्र-चित्रण करने तथा उनको सजीवता प्रदान करने के लिए उपन्यासकार को भिन्न-भिन्न विधियों का आश्रय लेना पड़ता है । प्रमुख रूप से चरित्रांकन की दो ही विधियाँ मान्य हैं - विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक ।[99] इन्हीं को क्रमशः प्रत्यक्ष तथा परोक्ष अथवा प्रकाश तथा विकास[100] विधि भी कहते हैं । डॉ रांग्रा ने चरित्र-चित्रण की तीन विधियाँ स्वीकार की हैं - बहिरंग, अंतरंग तथा नाटकीय ।[101]

---

[98] प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ0 34 । ''हमें यह स्वीकार कर लेने में संकोच न होना चाहिए कि उपन्यासों ही की तरह आख्यायिका की कला भी हमने पच्छिम से ली है....कम से कम इसका आज का विकसित रूप तो पच्छिम का है ही ।''

[99] (क) डॉ श्यामसुन्दर दास, साहित्यालोचन, पृ0 165

(ख) डॉ धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 447-448

[100] डॉ रामशंकर त्रिपाठी, साहित्य में पात्र : प्रतिमान और परिरेखन, पृ0 271

[101] डॉ रणवीर रांग्रा, हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ0 62

बहिरंग विधि के अंतर्गत उपन्यासकार स्वयं पात्रों की आकृति, वेशभूषा, स्वभाव, अनुभाव आदि का वर्णन करता है । अंतरंग विधि या प्रणाली का प्रयोग पात्रों के आंतरिक चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए किया जाता है । नाटकीय विधि में उपन्यासकार स्वयं किसी पात्र के संबंध में कुछ नहीं कहता । पात्र अपने क्रिया-कलापों, वार्तालापों आदि के द्वारा चरित्र को अनावृत करता है । इन विधियों में बहिरंग तथा नाटकीय विधियाँ या शैलियाँ ऊपर बताई गई विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक विधियों से अभिन्न हैं । अंतरंग विधि को पृथकतः स्वीकार किया जा सकता है । इसका विकास मनोविश्लेषण शास्त्र के आधार पर हुआ है तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इसका विशेष प्रयोग दृष्टिगोचर होता है । इस विधि को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति भी कह सकते हैं ।

इन विधियों के अतिरिक्त आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी आदि विधियाँ भी मानी गई हैं किन्तु इनका समावेश उपर्युक्त तीन विधियों में ही हो जाता है । पत्र एवं डायरी नाटकीय विधि के अंतर्गत आ जाती हैं । आत्मकथात्मक (आत्मप्रकाशक) विधि भी नाटकीय विधि में ही समाविष्ट हो जाती है । यद्यपि मनोविश्लेषण के फलस्वरूप आत्मचिंतन के लिए आत्मकथात्मक विधि अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है; इसलिए इसका समावेश अंतरंग विधि में होना अधिक संगत है, अस्तु ! पात्र-परिकल्पना या चरित्र-चित्रण की निम्नलिखित तीन विधियाँ उपयुक्त कही जा सकती हैं -

1. वर्णनात्मक अथवा बहिरंग विधि
2. अभिनयात्मक अथवा नाटकीय विधि; तथा
3. मनोविश्लेषणात्मक अथवा अंतरंग विधि

इस पुस्तक के सप्तम अध्याय में राही जी की पात्र चित्रण-कला के संदर्भ में इन विधियों पर सविस्तार विचार किया गया है ।

तृतीय अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के पात्रों का वर्गीकरण

उपन्यास कला के विवेचकों ने उपन्यास में पात्रों को सामान्यतः तीन प्रकार से वर्गीकृत किया है -

1. उपन्यास कथा में महत्व की दृष्टि से : प्रधान, गौण एवं सामान्य
2. चारित्रिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से : वर्गगत एवं व्यक्तित्व प्रधान तथा
3. चारित्रिक विकास की दृष्टि से : स्थिर एवं गतिशील ।

वास्तव में मानव जीवन की अनेकरूपता और विश्वजनीन मानव संदर्भों के वैविध्य को कतिपय वर्गों; उपवर्गों में सीमित करता अत्यंत दुष्कर कार्य है । यही कारण है कि किसी भी उपन्यासकार का कोई भी वर्गीकरण पूर्णतया वैज्ञानिक और सांगोपांग नहीं कहा जा सकता । राही जी के उपन्यासों विविध व अनेकरूपेण पात्र-सृष्टि विद्यमान है । उनके उपन्यासों में पात्रों की अत्यधिक वैविध्यपूर्ण सर्जना होने के कारण उन्हें वर्गीकृत करना अत्यंत कठिन है; तथापि उनके पात्रों के सभी रूपों को दृष्टिगत रखते हुए अधोप्रस्तुत वर्गीकरण तैयार किया गया है । प्रस्तुत वर्गीकरण उनके उपन्यासों के गंभीर अध्ययन का परिणाम है । इसके प्रस्तुत करते समय विशेष सतर्कता से काम लिया गया है और इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि किसी वर्ग की उपेक्षा न हो तथा किसी पात्र को उसकी प्रवृत्तियों के प्रतिकूल पूर्वाग्रहवश किसी भिन्न वर्ग में न रखा जाए । तदपि इसकी पूर्णता और वैज्ञानिकता का दावा नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी उपन्यासकार के पात्रों का वर्गीकरण कौन किस रूप में स्वीकार करता है? यह पाठकों एवं आलोचकों की भिन्न-भिन्न रुचियों पर भी निर्भर करता है । राही के औपन्यासिक पात्रों की प्रचुरता और उनकी विविध आयामी दृष्टि को उपर्युक्त मुख्य तीन वर्गों में नहीं विभाजित किया जा सकता है । क्योंकि पात्रों के वर्गीकरण से अध्येय कृतियों को विश्लेषित करने में सुगमता हो जाती है; अतः भिन्न-भिन्न आधारों और चेतनाओं की दृष्टि से पात्रों का वर्ग विभाजन उनके भेदोपभेदों सहित निम्नलिखित क्रम से प्रस्तुत किया जाता है

1. उपन्यासगत महत्व एवं स्थान के आधार पर : प्रधान, गौण एवं सामान्य

2. लिंग के आधार पर : पुरुष, स्त्री एवं हिजड़ा

3. संप्रदाय के आधार पर : हिन्दू, मुस्लिम एवं अन्य(सिख, ईसाई एवं सिंधी)

4. वर्ग अथवा चारित्रिक वैशिष्ट्य के आधार पर : वर्गगत एवं व्यक्तित्व प्रधान

5. देश (स्थान) के आधार पर : देशी (ग्रामीण एवं शहरी) एवं विदेशी

6. काल (समय) के आधार पर

7. चारित्रिक परिवर्तनशीलता के आधार पर : स्थिर एवं गतिशील

8. व्यवसाय अथवा कार्यों के आधार पर : कृषक, मजदूर, व्यापारी, अधिकारी-कर्मचारी, सेवक एवं अन्य (दलाल, बेरोजगार आदि)

9. वय (अवस्था) के आधार पर : बाल, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध

10. चारित्रिक गुणों के आधार पर : सद् एवं असद्

11. पारिवारिक संबंधों के आधार पर : पिता, माता, पति, भाई, बहिन, पुत्रवधू एवं सास

1. उपन्यासगत महत्व एवं स्थान के आधार पर

उपन्यास मूलतः मानव चरित्र से उद्भूत है । अतः प्रत्येक उपन्यास के कथा विकास में अनेक पात्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहता है । इनमें से कुछ पात्र तो कथा को अंतिम परिणाम तक ले चलने में सक्रिय रहते हैं और कुछ बीच-बीच में आकर; अवसर और आवश्यकता के अनुसार; उसे कोई नया मोड़ देकर फिर तिरोहित हो जाते हैं । कुछ पात्र अपना कोई पृथक अस्तित्व न रखकर अन्य पात्रों के चरित्र विकास का माध्यम बनकर आते हैं । उपन्यास कथा में महत्व एवं स्थान के आधार पर विवेच्य उपन्यासों के पात्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

क. प्रधान पात्र
ख. गौण पात्र तथा
ग. सामान्य पात्र

क. प्रधान पात्र

जिस प्रकार समाज का स्वरूप कतिपय सक्रिय व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित होता है; उसी प्रकार उपन्यास का ढॉचा कुछ ऐसे जीवंत पात्रों पर निर्भर करता है, जिन पर

संपूर्ण कथानक आश्रित होता है अर्थात् जो कथानक का नेतृत्व करते हैं । कथा-तंतु के संयोजक इन पात्रों को ही प्रधान अथवा प्रमुख पात्र मानना चाहिए । कुछ समीक्षक उपन्यास के नायक-नायिकाओं को ही पुमुख पात्रों के अंतर्गत रखते हैं । पात्र-परिकल्पना अथवा पात्र-विवेचन की यह पद्धति सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि प्रत्येक उपन्यास में नायक-नायिका तो एक-एक ही हो सकते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ पात्र उपन्यास में ऐसे भी होते हैं जिनका कथानक से अत्यंत घनिष्ठ संबंध होता है और जिनके बिना उपन्यास के कथ्य, स्वरूप और मर्म की पूरी परिकल्पना ही विश्रृंखलित तथा विखंडित हो सकती है । उदाहरण के लिए राही जी के 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास के आशाराम को लिया जाए तो ज्ञात होता है ि कइस उपन्यास के नायक और नायिका तो क्रमशः देशराज और बिल्लों हैं किन्तु आशाराम भी उपन्यास में आदि से अंत तक छाया रहता है । इस पात्र के बिना कथानक का पूरा ढॉचा ही परिवर्तित हो जाएगा । अतः इस प्रकार के पात्रों को किसी भी तरह गौण पात्रों के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता । वास्तव में उपन्यासकार की चरित्र-चित्रण क्षमता को विशेष रूप से उद्घाटित करने वाले सभी पात्रों को प्रमुख माना जाना चाहिए

राही जी के सभी आठ उपन्यासों में ऐसे प्रधान पात्रों की नाम तालिका उपन्यास क्रम में इस प्रकार है -

'आधा गॉव' उपन्यास के प्रमुख पुरुष-स्त्री पात्र फुन्नन मियां, परसराम, मौलवी बेदार, कुलसुम, सितारा, अब्बास, सैफुनिया, झंगटिया बो, बछनिया, सुलेमानचा, मिगदाद, जवाद मियां, हम्माद मियां, कम्मो (कमालुद्दीन), हकीम अली कबीर, सैयद फुस्सू, छिकुरिया, अब्बू मियां, रब्बन बी तथा सईदा आदि हैं । यह एक आंचलिक उपन्यास भी कहा गया है क्योंकि इसमें किसी नायक-नायिका को नहीं अपितु संपूर्ण गंगौली अंचल के एक भाग को उसकी समग्रता में उभारा गया है । इस उपन्यास में मोहर्रम के त्योहार को केन्द्र में रखकर शियाओं के धार्मिक ढकोसले एवं आंतरिक कृत्रिमता और जीवन संघर्ष का चित्रण किया गया है ।

'हिम्मत जौनपुरी' में राही जी ने प्रमुख स्त्री-पुरुष पात्र हिम्मत जौनपुरी, शेख मुबारक अली, आरजू पहलवान, नादिर जौनपुरी, दिलगीर जौनपुरी, इमाम बांदी, सुक्कन बी, जमुना, गफ्फार चचा आदि का प्रभावशाली विवरण प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास का नायक; जैसा उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है; हिम्मत जौनपुरी है, जिसकी जिजीविषा की कहानी जीवनी पद्धति से इस उपन्यास में कही गई है ।

'टोपी शुक्ला' में राही ने प्रमुख पात्रों के अंतर्गत टोपी उर्फ बलभद्र नारायण शुक्ला, इफ्फन उर्फ सैयद ज़रगाम मुरतुज़ा, सकीना, भृगु नारायण, सैयद मुरतुज़ा हुसैन आदि को प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में बेरोजगारी, अकेलेपन, टूटन और संत्रास की अभिव्यक्ति को टोपी नामक पात्र के माध्यम से सहज ही समझा जा सकता है ।

'ओस की बूँद' में सांप्रदायिक समस्या को उठाने के लिए राही ने प्रमुख रूप से वहशत अंसारी, बजीर हसन, ठाकुर शिवनारायण सिंह, शहरनाज, शहला, बेहालशाह, हयातुल्ला अंसारी, हाजरा तथा दीनदयाल नामक प्रमुख स्त्री-पुरुष पात्रों का आश्रय लिया है ।

'दिल एक सादा काग़ज़' में समलैंगिकता जैसी नितांत वैयक्तिक समस्या को उभारने; जमींदारों, सामंतों तथा शोषक वर्ग द्वारा जनता का शोषण करने एवं लालफीताशाही शासन व्यवस्था के दमनकारी चरित्र का उद्‌घाटन किया गया है । इस कथा का निर्वाह रफ्फन, मौलवी तकी हैदर, जन्नत, सैयद अली, रफ़अत जैदी, बाग़ी आज़मी आदि प्रमुख स्त्री-पुरुष पात्रों द्वारा होते हुए दिखाया गया है ।

'सीनः '75' उपन्यास में फिल्मी दुनिया के खोखले चरित्र को सामने रखने के लिए जिन प्रमुख स्त्री-पुरुष पात्रों को आश्रय बनाया गया है; उनमें हैं - अली अमजद, वी.डी.(वीरेन्द्र कुमार), भोलानाथ खटक , रमा चोपड़ा, हरीश राय, फंदाजी पटियालवी, अलीमुल्लाह खां आदि ।

'कटरा बी आर्जू' नामक उपन्यास आपात्काल की यातनाओं तथा तत्कालीन प्रशासनिक दुरवस्थाओं को अंकित करता है । इस कथा के प्रमुख स्त्री-पुरुष निर्वाहक पात्र है - देशराज सिंह, बिल्लो, आशाराम, भोलानाथ पहलवान, इतवारी बाबा, प्रेमानारायण, बाबू गौरीशंकर लाल पाण्डेय आदि ।

'असन्तोष के दिन' नामक राही के अंतिम उपन्यास में प्रमुख स्त्री-पुरुष पात्र हैं - सैयदा, अब्बास, गोपीनाथ बर्क़ उर्फ औरंगाबादकर, माजिद, रवि, संगीता आदि कुछ हिन्दू-मुस्लिम पात्रों की सांप्रदायिक दंगों के दौरान सौहार्दपूर्ण दृष्टि का मानवतावादी रूप इस उपन्यास में दृष्टव्य है ।

इन पात्रों में फुन्नन मियां, परसराम, मौलवी बेदार, अब्बास, सुलेमान चा, मिगदाद, जवाद मियां, हम्माद मियां, कमालुद्‌दीन, हकीम अली कबीर, सैयद फुस्सू,

अब्बू मियां (आधा गॉव); हिम्मत जौनपुरी, आरजू पहलवान, नादिर जौनपुरी, शेख मुबारक अली, दिलगीर जौनपुरी, गफ्फार चचा (हिम्मत जौनपुरी); टोपी उर्फ बलभद्र नारायण शुक्ला, इफ्फन, भृगुनारायण शुक्ला, सैयद मुरतुज़ा हुसैन (टोपी शुक्ला); वहशत अंसारी, वजीर हसन, शिवनारायण सिंह, बेहाल शाह, हयातुल्ला अंसारी, दीनदयाल (ओस की बूँद); रफ्फन, मौलवी तकी हैदर, सैयद अली, रफअत जैदी, बाग़ी आज़मी (दिल एक सादा काग़ज़); अली अमजद, वी.डी., भोलानाथ, हरीश राय, फंदा पटियालवी, अलीमुल्ला खां (सीनः '75); देशराज सिंह, आशाराम, भोलानाथ पहलवान, इतवारी बाबा, बाबू गौरीशंकर लाल पाण्डेय (कटरा बी आर्जू); अब्बास, गोपीनाथ बर्क़ औरंगाबादकर, माजिद, रवि (असंतोष के दिन) आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं तथा कुलसुम, सितारा, सैफुनिया, झंगटिया बो, बछनिया, छिकुरिया, रब्बन बी, सईदा (आधा गॉव); इमाम बांदी, सुक्कन बी, जमुना उर्फ जुबेदा, सुक्कन बी (हिम्मत जौनपुरी); सकीना (टोपी शुक्ला); शहरनाज, शहला, हाजरा (ओस की बूँद); जन्नत (दिल एक सादा काग़ज़); रमा चोपड़ा (सीनः '75); बिल्लो, प्रेमानारायण (कटरा बी आर्जू); सैयदा, संगीता (असन्तोष के दिन) आदि प्रमुख स्त्री पात्र हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास साहित्य में प्रमुख पात्रों का विवेचन अपनी प्रगतिशील चेतना को मुखरित करने के लिए तो किया ही है; साथ ही शिया समाज की जटिलताओं, हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक समस्या के कारणभूत तत्वों तथा बेरोजगारी सहित सभी तत्कालीन विकराल होती समस्याओं का चित्रण अपने प्रधान पात्रों को सृजित करके अपने उपन्यास साहित्य द्वारा किया है ।

ख. गौण पात्र

प्रत्येक उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त कुछ गौण पात्र भी होते हैं जिनका उपन्यास में स्थान महत्वपूर्ण न होकर द्वितीयक ही रहता है । इनकी परिकल्पना कथानक को तीव्रता प्रदान करने, प्रधान पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने, उन पर टीका-टिप्पणी करने, वातावरण को परिवर्तित करने एवं वातावरण की सृष्टि करने आदि के लिए की जाती है । इस प्रकार उनका औपचारिक जीवन अपने लिए नहीं; दूसरों के लिए होता है, पर उनका यह आत्मोत्सर्ग अपनी इच्छा से नहीं; उपन्यास की आवश्यकता पूर्ति के लिए होता है । राही जी के उपन्यासों में इस प्रकार

के पात्रों की प्रचुरता पाई जाती है । यद्यपि कुछ उपन्यासों की प्रासंगिक कथाओं से संबंधित अनेक पात्र उपन्यास के पूरे कलेवर में बहुत साधारण होते हुए भी, अपने विशिष्ट संदर्भ में अपनी कुछ न कुछ महत्ता अवश्य रखते हैं, लेकिन उन्हें फिर भी प्रमुख पात्रों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता । इन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए राही जी के उपन्यासों में परिकल्पित गौण पात्रों की नाम-तालिका उपन्यास क्रम में इस प्रकार है -

'आधा गॉव' के गौण पुरुष पात्र कुंवरपाल सिंह, बरकतुआ, कोमिला, समीउद्दीन, ठाकुर हरनारायण थानेदार, गया अहीर, गुज्जन, तन्नू, सद्दन, मंजूर मियां, मगफिये, सफिरवा, मासूम, राही मासूम रज़ा, मूनिस भाई, बलरमवा, झिंगुरी हलवाई, अब्बाद मियां, सैयद अली हाजी जैदी, फिद्दू आदि हैं तथा एक विधवा ब्राह्मणी, बदरुन, मेहरुनिया, ज़मुर्रद, गुलबहरी, रजिया, मुमताज, ईदू नाइन इत्यादि गौण स्त्री पात्रों का वर्णन आधा गॉव में हुआ है । उपन्यासकार ने आधा गॉव में गंगौली नामक गॉव के आंचलिक परिवेश को उभारने में प्रमुख पात्रों के समान ही इन पात्रों का महत्व निर्धारित किया है ।

'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास में गौण पुरुष पात्र बाबू रामलखन लाल, कल्लू उस्ताद, हसन खां, मासूम, लेखक, बर्क़ जौनपुरी आदि तथा अख्तरी, मुश्तरी, दुल्हन बी आदि स्त्री पात्रों का प्रभावशाली चित्रण किया गया ळे । इन पात्रों ने हिम्मत के निकम्मेपन से लेकर उसके जीवन संघर्ष की कथा निभाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है ।

'टोपी शुक्ला' उपन्यास के गौण पुरुष पात्र हैं - रमेश, पहलवान अब्दुल गफूर, महेश, बाबू गोपीनाथ, मुनेश्वर नारायण उर्फ मुन्नी बाबू, डॉ शरफुद्दीन, अब्दुल वहीद, भैरव नारायण आदि तथा गौण स्त्री पात्र हैं - शबनम, रामदुलारी, सलीमा, सिस्टर आलेमा, मदर सुपीरियर आदि । यह पात्र टोपी शुक्ला की बेरोजगारी के कथ्य को तीव्र गति प्रदान करते हैं ।

'ओस की बूँद' उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने इन गौण पात्रों का प्रशंसनीय रेखांकन किया है - श्री गोबर्धन बेकल चिरैय्याकोठी, अली बाकर, रामअवतार, कल्लू हज्जाम, झूलन, जिलाधीश, सरदार कुलजीत सिंह, गुल्लू, बाबू बांके बिहारी लाल, बाबू अंबिका प्रसाद, बाबू चंद्रिका प्रसाद, गुलाम मुहम्मद उमर, रामधनी चपरासी, जोखन, रशीदुल्ला अहरारी आदि पुरुष पात्र तथा बुतुल, शमसुन्निसा, बहू आबेदा, जद्दन बाई,

शहजादी तवायफ, हशमत नामक स्त्री पात्र कथानक के वातावरण को निर्मित तथा परिवर्तित करते हुए उपन्यास में वर्णित किए गए हैं ।

'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यास में गौण पुरुष पात्र हैं - चंचल, तिरछे खां, बावर्ची अब्दुस्समद, नौकर शर्फुआ, बाबूराम, ठाकुर(सिंह) साहब, चीफ साहब, ब्रिगेडियर न्याजी, मुनीश तथा स्त्री पात्र हैं - शहरबानो, शारदा, बेला आदि । यह पात्र कथानक के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयासरत रहते हुए उपन्यास में दिखाई देते हैं ।

'सीनः '75' में लेखक ने क्रमशः जिन गौण पुरुष तथा स्त्री पात्रों कल्पित किया है, उनमें हैं 7 रामनाथ उर्फ पीटर, बाबूलाल श्रीवास्तव, राममनोहर, तोलाराम दलाल, पंचारण मिश्र, छत्ताराम मनचंदानी, हाज़ी फकीरा; सरला मिढ़ा, मिस दिलगीर, राधिका, पुष्पलता, मिस डिक्रूज, सईदा, रुकैया, किश्वर, लता सिन्हा आदि । ये पात्र फिल्मी जीवन के बनावटीवप, यौन दुराचरण आदि समस्याओं का चित्रण करते दीख पड़ते हैं

'कटरा बी आर्जू' उपन्यास के क्रमशः गौण पुरुष तथा स्त्री पात्रों को क्रमशः इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है - शम्सू मियां, जोखन मियां, मास्टर बदरुलहसन, अशफाकुल्ला खां, रामअवतार, मौलवी खैराती, मनोहर, बाबूराम, राजाराम बेकल; महनाज, शहनाज, आलम आरा बेगम, लैला, फत्तो, उम्मन, रामदई, सकीना आदि । ये पात्र आपातकाल से जुड़ी अनेक घटनाओं यथा, नसबंदी प्रचार आदि की परिणति करते हैं । कुछ पात्र आपातकाल की आड़ में अपने विरोधियों से बदला लेते हुए भी चित्रित हैं जैसे, आलम आरा बेगम, अशफाकुल्ला खां आदि ।

'असन्तोष के दिन' उपन्यास के गौण पात्र प्रधान पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने का कार्य करते दिखाए गए हैं । ऐसे पुरुष तथा स्त्री पात्र क्रमशः इस प्रकार हैं - रेवती श्रीवास्तव, सैयद मुरतुज़ा नक़वी, नट्टा करीम, विष्णु मेहरोत्रा, राममोहन ; सलमा, तसनीम, तहसीन, फात्मा, हलीमा, कान्ता मेहरोत्रा आदि ।

उपर्युक्त कथा विवेचन के आधार पर पात्रों का वर्गीकरण यह स्पष्ट करता है कि लेखक ने उपन्यास की घटनाओं तथा कथागत स्थिति को समाज के सम्मुख रखते हुए गौण पात्रों का नियोजन किया है । इन पात्रों के माध्यम से राही जी अपने मूल मंतव्य को प्राप्त करने में सफल रहे हैं ।

ग. सामान्य पात्र

राही जी के उपन्यासों में सजीव एवं सहायक पात्रों के अतिरिक्त ऐसे पात्रों की भी सृष्टि की है जो बती जल-धारा में तृण-पत्रवत् होते हैं और 'ज्यों तारा परभात' लुप्त हो जाते हैं । उनके पृथक निजी अस्तित्व की उल्लेखनीय सार्थकता नहीं है और न ही उनमें उपन्यास कथा को मोड़ देने की शक्ति है । सामान्यतः किसी उत्सव; नुक्कड़ नाटक के दर्शक, राजनैतिक सभाओं के श्रोता, नौहों या पारिवारिक बैठकों आदि के समय उपस्थित रहने वाले पात्र, अनाम जन समुदाय, युद्धों आदि में उपस्थित रहने वाला अनाम सैनिक समुदाय, बड़े परिवारों के सेवक-सेविकायें, राजघरानों के चौकीदार, परिचारिकायें आदि ऐसे पात्र हैं जिन्हें कथा के सामान्य या उपस्कारक पात्र ही कहा जा सकता है । राही जी के उपन्यास साहित्य में उदाहरण के लिए इस प्रकार के पात्र अधोलिखित हैं -

'आधा गॉव' उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने छोटे-छोटे कृषक, मजदूर तथा सेवक-सेविकाओं का उल्लेख किया है यथा, पंडित मातादीन, विधवा ब्राह्मणी का बेटा, तमोली, सिराजुद्दीन खां, मनहारिन, हज्जाम का लड़का, कहार, अहीर, घुरुवा, ड्राइवर, चन्दाबाई, दुखीराम, छन्नूलाल सुनार, रघुनाथ भर, भंगिन आदि । इन सामान्य पात्रों के नियोजन का मुख्य उद्देश्य जमींदार वर्ग, सामंतों तथा नौकरशाहों की सेवा कराते हुए दिखाकर उनकी बुर्जुवावादी मानसिकता का चित्रण करना है ।

'हिम्मत जौनपुरी' में मशेन टेलर, ईदू बी, एक मुल्ला जी, नासिरी आदि उपकरण पात्र समाज के प्रभावशाली व्यक्तियों की सेवा करते हुए चित्रित किए गए हैं । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में उपकरण पात्र हैं - बालकृष्ण, इफ्फन की बाजी, नुजहत, ठा0 हरिनाम सिंह, बहरुल काहिल, सिगार हुसैन जैदी, मूनिस साहब, के. पी. सिंह, तोंद वाले पंडित जी आदि । ये सामान्य पात्र यद्यपि किसी वर्ग की सेवा में निरत नहीं हैं किन्तु ये उपन्यास के कथानक की बहती जल-धारा में तिनके की भॉति सम्मिलित हुए हैं, जिनके पृथक निजी अस्तित्व की कोई उल्लेखनीय सार्थकता नहीं है । 'ओस की बूँद' उपन्यास के उपकरण पात्र हैं - मास्टर अज्ताफ, मुहसिन गफूर, नइमवा का बेटा, रामधनी का बड़ा भाई, रफीक मामू, उदयभान सिंह, जयपाल सिंह, हमीदुन नाइन, नसीबन नौकरानी, पद्मा, आयशा, एक रण्डी आदि । ये पात्र औपन्यासिक प्रतिपाद्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने में मदद करते हैं ।

'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यास में लेखक ने इस्लामी फौज के सिपाही, मुसलमान शरणार्थी आदि सामान्य वर्ग के पात्रों का चरित्र उद्घाटित किया है । 'सीनः

'75' में सामान्य पात्रों की भूमिका निभाने वाले पात्र हैं - भोलानाथ चोपड़ा, मुरारीलाल, मिस फर्नांडिज, नज्मा, श्रीकण्ठ गुप्ता आदि । 'कटरा बी आर्जू' में हीराबाई, रहमतुल्लाह खां, कामरेड माबूद, अब्दुल हक़, बेनी बाबू, नरायना, भरत कुमार, मुनिया, ग्राहक आदि पात्र सामान्य कोटि के अंतर्गत रखे जा सकते हैं । ये पात्र कथानक की गति को बढ़ाने में सहायक हुए हैं । 'असन्तोष के दिन' में सैयद अमीर अली, हीराबाई, अलाउद्दीन खां, तसनीम का एक नीग्रो मित्र इत्यादि पात्र सामान्य वर्ग के हैं

उपन्यास का कोई पात्र कथा के निर्वाह में यदि उपकरणवत् भी सार्थक सिद्ध नहीं होता है तो इसे उपन्यासकार की कमजोरी कहा जाता है । डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ऐसे निरर्थक; निष्प्रयोज्य पात्रों की सर्जना नहीं हुई है । अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राही जी ने कथागत महत्व के आधार पर जिन पात्रों का चित्रण किया है, वह उनका विशिष्ट वर्गीकरण है । यद्यपि राही जी के औपन्यासिक पात्रों को किसी निश्चित वर्ग में सरलता से नहीं बॉटा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक पात्र एक स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है तथापि उपन्यासगत स्थान एवं महत्व की दृष्टि से उनके पात्रों के व्यक्तित्व को अलग-अलग श्रेणी में उपर्युक्त ढंग से विभाजित करना उपयुक्त होगा ।

2. लिंग के आधार पर

सामान्यतः तीन लिंगों का अस्तित्व वर्तमान युग में दिखाई पड़ता है; पुंलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग । औपन्यासिक पात्रों के विवेचन में पुंलिंग से अभिप्राय पुरुष पात्रों से, स्त्रीलिंग से अभिप्राय स्त्री पात्रों से तथा नपुंसकलिंग से तात्पर्य किन्नरों (हिजड़ों) से लगाया जाता है । राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में पुरुष तथा स्त्री पात्रों का वर्णन तो किया ही है अल्पांश में हिजड़े पात्र भी उनकी कथा के संवाहक बने हैं । राही के उपन्यासों में उक्त तीनों प्रकार के पात्रों का औपन्यासिक विवेचन इस प्रकार है -

क. पुरुष पात्र

इस सृष्टि को पुरुष और स्त्री सम्मिलित रूप से संचालित करते हुए परस्पर पूरक भूमिका निभा रहे हैं । समाज की कथा को ही उपन्यास में विवेचित किया जाता है । यह कार्य संपन्न कराने हेतु पुरुष पात्रों का महती योगदान रहता है । राही के उपन्यासों में पुरुष पात्रों का समावेश इस प्रकार है -

'आधा गॉव' में मंजूर मियां, सुलेमान चा, हम्माद मियां, फुन्नन मियां, गुज्जन, फुस्सू, मिगदाद, तन्नू, मौलवी बेदार, कमालुद्दीन, सद्दन; 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत, आरजू पहलवान, नादिर जौनपुरी, दिलगीर जौनपुरी, रामलखनलाल, कल्लू; 'टोपी शुक्ला' में टोपी, इफ्फन, भृगुनारायण, महेश, रमेश, अब्दुल गफूर; 'ओस की बूँद' में वजीर हसन, रामअवतार, दीनदयाल, वहशत अंसारी, गुल्लू, झूलन, बेहालशाह; 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन, मौलवी तकी हैदर, रफ़अत जैदी, बाग़ी आज़मी, चंचल, तिरछे खां, शर्फुआ, अब्दुस्समद; 'सीनः '75' में अली अमजद, वी.डी., हरीश राय, फंदाजी पटियालवी, भोलानाथ खटक, 'कटरा बी आर्जू' में देशराज, आशाराम, भोलानाथ पहलवान, इतवारी बाबा, बाबू गौरीशंकरलाल पाण्डेय, शम्सू मियां, जोखन, मास्टर ब दर तथा 'असन्तोष के दिन' में अब्बास, गोपीनाथ, माजिद, रेवती श्रीवास्तव, राममोहन इत्यादि अनेक पुरुष पात्रों द्वारा लेखक ने अपने उपन्यासों को प्रभावशाली बनाया है ।

ख. स्त्री पात्र

दुनिया की आधी जनसंख्या स्त्रियों की है । उपन्यास में मानव समाज का चित्रण किया जाता है । अतः स्वाभाविक है कि उपन्यास में स्त्री पात्रों की संख्या अच्छी होगी । 'आधा गॉव' में मेहरुनिया, सैफुनिया, ज़मुर्रद, गुलबहरी, कुलसुम, बछनिया, गुलाबी जान, झंगटिया बो; 'टोपी शुक्ला' में सकीना, शबनम, सिस्टर आलेमा; 'हिम्मत जौनपुरी' में इमाम बॉदी, अख्तरी, मुश्तरी, जमुना (जुबेदा), सुक्कन बी, ईदू बी; 'ओस की बूँद' में शहरनाज, शहला, हाजरा, बहू आबेदा, हशमत, शहजादी तवायफ; 'दिल एक सादा काग़ज़' में जन्नत, शारदा, शहरबानो; 'सीनः '75' में राधिका, पुष्पलता, सरला मिढ़ा, रमा मनचन्दानी, लिजा; 'कटरा बी आर्जू' में बिल्लो, महनाज, शहनाज, उम्मन, फत्तो, लैला, आलमआरा बेगम तथा 'असन्तोष के दिन' में सैयदा, संगीता, सलमा, तसनीम, तहसीन आदि नारी पात्रों की परिकल्पना राही के उपन्यासों के कथ्य को जीवन्त करने एवं अपने समाज की भीतरी सच्चाई को सामने रखने के लिए की है ।

राही ने अपने उपन्यास साहित्य की वर्णन प्रामाणिकता हेतु उचित संतुलन में स्त्री पात्रों को परिकल्पित करके कथानकों को सार्थकता प्रदान की है ।

ग. नपुंसक पात्र

ऐसे पात्रों में न तो पुरुष पात्रों की गणना की जाती है, न ही स्त्री पात्रों की । किन्नर पात्र इसी कोटि के अंतर्गत परिगणित किए जाते हैं । राही ने अपने 'सीनः

'75' उपन्यास में एक हिजड़ा पात्र रखकर इस वर्ग की उपस्थिति भी अपने साहित्य में दर्शाई है ।

3. संप्रदाय के आधार पर

राही के उपन्यासों की कथावस्तु को दृष्टिगत रखते हुए जाति के आधार पर उनके औपन्यासिक पात्रों का प्रस्तुतीकरण निम्नवत् किया जा सकता है -

क. हिन्दू पात्र
ख. मुसलमान पात्र तथा
ग. अन्य पात्र; सिख, ईसाई, सिंधी आदि ।

क. हिन्दू पात्र

जैसा कि हम जानते हैं इस वर्ग के पात्र मूर्ति तथा प्रकृति पूजा के उपासक होते हैं । ये अनेक देवी-देवताओं में विश्वास करते हैं । इस धर्म में प्राचीन काल से अनेक संप्रदायों का उदय हुआ है । हिन्दू धर्म में अनेक जातियां विद्यमान हैं । प्राचीन काल में जातियों द्वारा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का पता चल जाता था । राही ने हिन्दू धर्म की लगभग सभी जातियों के पात्रों को अपने उपन्यासों में रखा है ।

'आधा गॉव' में परसराम एम.एल.ए., गया अहीर, पंडित मातादीन, एक विधवा ब्राह्मणी, कोमिला चमार आदि हिन्दू पात्रों की रचना की गई है । इसमें विधवा ब्राह्मणी एक ताजिया को बिना उल्ती गिराए आगे बढ़ जाने पर उसे अपने लिए अपशकुन के रूप में लेती है । 'हिम्मत जौनपुरी' में जमुना, बाबू रामलखनलाल; 'टोपी शुक्ला' में कथा का नायक वैष्णव धर्मानुयायी टोपी उर्फ बलभद्र नारायण शुक्ला तथा उसके माता पिता; 'ओस की बूँद' में रामअवतार, दीनदयाल, ठाकुर शिवनारायण सिंह; 'दिल एक सादा काग़ज़' में सेठ मनोहर लाल, चंचल, बाबूराम; 'सीनः '75' में वी.डी. भोलानाथ, रमा, सरला, फंदा पटियालवी, हरीश राय, पंचारण मिश्र; 'कटरा बी आर्जू' में उसके प्रतिपाद्यानुरूप अपेक्षाकृत अधिक हिन्दू पात्रों की सर्जना के अंतर्गत देशराज, बिल्लो, आशाराम, बाबूराम, भोलानाथ पहलवान, इतवारी बाबा, पं0 गौरीशंकरलाल पाण्डेय, प्रेमानारायण, रामदीन, मनोहर, भाग्यमती, जगदंबा प्रसाद तथा 'असन्तोष के दिन' में गोपीनाथ बर्क, विष्णु मेहरोत्रा, रवि, संगीता आदि पात्रों को परिकल्पित करके राही ने हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द एवं धार्मिक मान्यताओं की वास्तविकता दिखाई है । राही के अनेक औपन्यासिक हिन्दू पात्र मुस्लिम नाम से तो अनेक मुस्लिम पात्र हिन्दू नाम से उपन्यासों में चित्रित किए गए हैं । कुछ हिन्दू पात्रों के माता या

पिता में से एक मुस्लिम तो मुस्लिम पात्रों के माता या पिता में से एक हिन्दू सदस्य का योगदान उस पात्र विशेष के गढ़ने में राही ने दिखाया है । ऐसा उन्होंने अपने साहित्य में कल्पित करके ही नहीं अपितु अपनी पारिवारिक संरचना द्वारा व्यावहारिक धरातल पर भी परिणत कर दिया है ।

ख. मुसलमान पात्र : आधुनिक उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने अपने साहित्य में मुसलमान पात्रों को विशिष्ट महत्व दिया है । मुसलमान पात्रों का प्रचुर मात्रा में चित्रण करके उन्होंने देश के छठवें हिस्से अर्थात् मुस्लिम समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का वर्णन पूरी प्रामाणिकता के साथ अभूतपूर्व ढंग से किया है । इस वर्ग के अंतर्गत आने वाले पात्र निराकार ब्रह्म में आस्था रखते हैं । इस संप्रदाय में भी दो; शिया और सुन्नी; भेद पाए जाते हैं । राही के उपन्यासों में अधिकांश शिया मुसलमान पात्रों की कथा आई है ।

'आधा गॉव' में फुन्नन मियां, मौलवी बेदार, कुलसुम, सितारा, अब्बास, सैफुनिया, सुलेमान, मिगदाद, जवाद मियां, कमालुद्दीन, हकीम अली कबीर, फुस्सू, अब्बू मियां, रब्बन बी, सईदा, समीउद्दीन, बदरुन, ज़मुर्रद, गुलबहरी, रजिया, मुमताज; 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत, आरजू जौनपुरी, नादिर जौनपुरी, दिलगीर जौनपुरी, इमाम बॉदी, दुल्हन बी, बर्क़ जौनपुरी; 'टोपी शुक्ला' में इफ्फन, सकीना, शबनम, सलीमा, डॉ शरफुद्दीन, अब्दुल गफूर, अब्दुल वहीद; 'ओस की बूँद' में वहशत अंसारी, वजीर हसन, बुतुल, शमसुन्निसा, अली बाकर, बहू आबेदा; 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन, तिरछे खां, अब्दुस्समद, इस्लामी फौज, ब्रिगेडियर न्याजी, शहरबानो, शर्फुआ, रफ़अत जैदी, बाग़ी आज़मी; 'सीनः '75' में अली अमजद, अब्दुल गफूर, सईदा, रुकैया, हाजी फकीरा, अलीमुल्ला खां, मो0 अब्दुल्ला खां; 'कटरा बी आर्जू' में जोखन, शमसू मियां, महनाज, शहनाज, आलमआरा बेगम, कामरेड मबूद, मास्टर बदरुल हसन, अशफाकुल्ला खां तथा 'असन्तोष के दिन' में सैयदा, अब्बास, तसनीम, तहसीन, फ़ात्मा, हलीमा, सैयद मुरतुज़ा नक़वी, नट्टा करीम, अलाउद्दीन खां, मुज़तफा, वाहिद आदि मुसलमान पात्र अपने समाज की विशेषताओं को लिए हुए आए हैं ।

मुस्लिम वर्ग के पात्रों को राही जी ने अपने उपन्यासों में विशिष्ट तौर पर सम्मिलित किया है जिनसे राही जी की धर्म निरपेक्षता, सर्व धर्म समन्वय एवं सांप्रदायिकता उन्मूलन किए जाने की आवश्यकता के बारे में पता चलता है ।

ग. अन्य पात्र

संप्रदाय अथवा जाति आधारित अन्य पात्रों में सिख, ईसाई तथा सिंधी जाति के पात्रों का विवेचन राही जी के उपन्यासों के संदर्भ में कर सकते हैं
सिख जाति के लोग गुरु की महत्ता को प्राथमिकता प्रदान करते हैं । ये भी निराकार ब्रह्म के उपासक होते हैं । इस संप्रदाय के जन्मदाता गुरुनानक देव थे । इसका पल्लवन गुरु तेगबहादुर एवं गुरु गोविन्द सिंह के समय में हुआ । राही जी ने अपने उपन्यास 'टोपी शुक्ला' में सांप्रदायिक दंगों के दौरान एक सरदार जी की उपस्थिति सिख पात्र के रूप में दिखाई है । उन्होंने 'ओस की बूँद' में एक सरदार कुलजीत सिंह को जिलाधीश के पद पर कार्यरत दिखाकर इस वर्ग को धार्मिक समन्वयवादी प्रवृत्ति तथा विकास हेतु प्रतिबद्ध संप्रदाय के रूप में स्थापित किया है ।

ईसाई संप्रदाय के पात्रों का भी एकाधिक वर्णन उनके उपन्यासों में मिलता है, जैसे तसनीम का एक नीग्रो मित्र (असन्तोष के दिन); मिस डिक्रूज, रामनाथ पीटर (सीनः '75); सिस्टर आलेमा, मदर सुपीरियर (कटरा बी आर्जू) आदि । सिंधी जाति के पात्र भी राही के उपन्यास साहित्य में विद्यमान हैं जैसे तोलाराम दलाल, छत्ताराम मनचन्दानी (सीनः '75) आदि ।

उपर्युक्त धर्म आधारित संप्रदायों के विवेचन से स्पष्ट है कि राही जी ने अपने उपन्यासों में धर्म को विशिष्ट स्थान दिया है । उन्होंने प्रेमचन्द की भाँति धार्मिक जीवन में प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी विचारधारा का समर्थन किया है । आधुनिक युग में मुस्लिमों की साधना पद्धति विकृत एवं पाखण्ड पूर्ण हो गई है । इसी प्रकार हिन्दू धर्म का भी साधना पक्ष लुप्त हो गया है । इन धर्मों में बाह्याडंबरों को ही धर्म समझा जाने लगा है । इनमें संवेदना का पक्ष धूमिल पड़ गया है । धर्म के ये बिगड़ते स्वरूप ही धर्म के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है । राही ने प्रेमचन्द की भाँति धर्म संबंधी समस्त रुढ़ियों एवं आडंबरों का उन्मूलन करने के लिए प्रयास किए । उन्होंने अपना साहित्य सृजन मानव धर्म की प्रतिष्ठापनार्थ किया । मानव धर्म के अनुसरण से ही व्यक्ति अपनी आत्मोन्नति एवं समाज की प्रगति में सहायक हो सकता है ।

4. वर्ग अथवा चारित्रिक वैशिष्ट्य के आधार पर

इस वर्ग के अंतर्गत पात्रों का प्रवृत्ति वैशिष्ट्य या व्यक्तित्व वैशिष्ट्य देखा जाता है । इस आधार पर यदि उपन्यासों के पात्रों पर विचार करें तो दो प्रकार के पात्र

दृष्टिगोचर होते हैं; वर्गगत तथा व्यक्तित्व प्रधान । राही जी के उपन्यासों में वर्गगत पात्रों की संख्या अधिक है; व्यक्तित्व प्रधान पात्रों की कम । दोनों प्रकार के पात्रों की नाम-तालिका नीचे दी जा रही है ।

क. वर्गगत पात्र (Type Characters)

जो पात्र समाज के किसी वर्ग की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हों; वर्गगत पात्र कहलाते हैं । राही के उपन्यासों में फुन्नन मियां, परसराम एम.एल.ए, मौलवी बेदार, ठाकुर हरनारायण थानेदार, झिंगुरी हलवाई, मुमताज, फुट्टू, मश्शू, फुस्सू, हम्माद मियां, कमालुद्दीन, सैफुनिया, गुलाबी जान, गुलबहरी (आधा गॉंव); हिम्मत, दिलगीर जौनपुरी, नादिर जौनपुरी, आरजू जौनपुरी, इमाम बॉंदी (हिम्मत जौनपुरी); टोपी शुक्ला, इफ्फन, सकीना, भृगुनारायण (टोपी शुक्ला); वजीर हसन, वहशत अंसारी, शहरनाज, शहला, दीनदयाल, झूलन, हशमत, गुल्लू (ओस की बूँद); रफ्फन, मौलवी, जन्नत, रफ़अत जैदी, बाग़ी आज़मी (दिल एक सादा काग़ज़); अली अमजद, वी. डी, हरीश राय, फंदाजी पटियालवी, रामनाथ उर्फ पीटर, तोलाराम दलाल, पंचारण मिश्र (सीनः '75); देशराज, बिल्लो, आशाराम, भोलानाथ, इतवारी बाबा, बाबू गौरीशंकर लाल पाण्डेय, मास्टर बदरुल हसन, बाबूराम (कटरा बी आर्जू); सैयदा, अब्बास, गोपीनाथ (असन्तोष के दिन) आदि पात्र वर्गगत पात्र हैं ।

इन पात्रों की परिकल्पना राही ने सर्वहारा वर्ग के विकास के लिए की है । राही जी सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं । वर्गगत पात्रों के सृजन में लेखक ने जातीय, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखा है; जिससे जो पात्र जिस वर्ग का चरित्र निभा रहा होता है उसमें उस वर्ग की सभी व समुचित विशेषतायें दिखाई पड़ें ।

ख. व्यक्तित्व प्रधान पात्र (Individual Characters)

जो पात्र वर्ग विशेष के गुण-दोषों का प्रतिनिधित्व न करके अपनी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताओं को लेकर उपन्यास में पदार्पण करते हैं तथा जिनका स्थानापन्न कोई अन्य पात्र नहीं हो सकता; व्यक्तित्व प्रधान पात्र कहे जाते हैं । राही जी के उपन्यासों में बछनिया, झंगटिया, मिगदाद (आधा गॉंव); जमुना (हिम्मत जौनपुरी);

रामदुलारी, शबनम, महेश, रमेश (टोपी शुक्ला); बुखारी, गोवर्धन बेकल चिरैयाकोठी (ओस की बूँद); चंचल, तिरछे खां, शर्फुआ, अब्दुस्समद (दिल एक सादा काग़ज़); सरला मिढ़ा, रमा मनचन्दानी, राधिका, पुष्पलता, राममनोहर (सीनः '75); प्रेमानारायण, भाग्यमती, लैला(कटरा बी आर्जू); हीराबाई, अलाउद्दीन खां(असन्तोाष के दिन) आदि पात्र व्यक्तित्व प्रधान पात्र माने जा सकते हैं ।

राही जी के उपन्यासों में वर्गगत तथा व्यक्तित्व प्रधान पात्रों का उपर्युक्त वर्गीकरण पूर्णतया वैज्ञानिक होने का दावा नहीं किया जा सकता क्योंकि इन दोनों प्रकार के पात्रों के बीच एक भेदक रेखा खींचकर इन्हें अलग-अलग करना अत्यंत दुष्कर कार्य है । प्रत्येक वर्गगत पात्र में कुछ व्यक्तिगत विशेषतायें होती हैं; वहीं प्रत्येक व्यक्तित्व प्रधान पात्र में कुछ वर्गगत विशेषतायें भी होती हैं । यदि ऐसा न हो तो पात्र समाज के अपवाद मालूम पड़ने लगें । इस संबंध में विस्तृत विवरण पुस्तक के दूसरे अध्याय में पात्रों के विविध प्रकार उपशीर्षकांतर्गत हुआ है ।

5. देश (स्थान) के आधार पर

देश या स्थान के आधार पर राही के उपन्यास साहित्य में पात्रों का विवेचन निम्नवत् किया जा सकता है

क. देशी पात्र तथा
ख. विदेशी पात्र

क. देशी पात्र : इस वर्ग के अंतर्गत आने वाले पात्र अपने देश के किसी राज्य या क्षेत्र में निवास करते हैं । इन्हें स्वदेशी पात्र भी कहते हैं । राही जी के उपन्यासों में इस वर्ग के पात्रों का वर्णन दो बिंदुओं ग्रामीण तथा शहरी पात्र इस प्रकार है

i. ग्रामीण पात्र तथा
ii. शहरी पात्र

i. ग्रामीण पात्र : इस वर्ग के पात्रों का निवास स्थान गॉव होता है । राही जी ने प्रेमचन्दीय परंपरा का अनुसरण करते हुए ग्रामीण व्यक्तियों की दशाओं एवं

समस्याओं को चित्रित करने के लिए इस वर्ग के पात्रों को समुचित एवं प्रभावशाली स्थान दिया है ।

'आधा गॉव' उपन्यास इस दृष्टि से राही जी के उपन्यासों में सर्वोच्च शिखर पर आसीन है जिसमें ग्रामीण पात्रों की भरमार की गई है । इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें गंगौली गॉव के आधे हिस्से यानि उत्तर पट्टी की कथा कही गई है । आंचलिक उपन्यास होने के कारण इसमें अधिकांश पात्र ग्रामीण हैं । उदाहरण के लिए कुछ प्रभावशाली ग्रामीण पात्रों के नाम हैं; फुन्नन मियां, परसराम, मौलवी बेदार, सुलेमान चा, मिगदाद, सैफुनिया, कमालुद्दीन, छिकुरिया, झंगटिया, बछनिया, विधवा ब्राह्मणी, गया अहीर तथा कुछ जुलाहे एवं राकी परिवार ।

इन पात्रों द्वारा राही ने ग्रामीण व्यक्तियों की पीड़ा का अनुभव कराया है । राही ने अपने गॉव वासियों को राजेन्द्र अवस्थी के कथा पात्रों की भॉति भोले लोगों का स्वर्ग नहीं बनाया है अपितु उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसे पात्रों की चतुराई, कुटिलाई तथा राजनीतिक समझ रखने जैसी विशेषताओं को सामने रखा है । राही ने इन पात्रों गॉव की समस्याओं यथा सामंती प्रथा, जमींदारी, धार्मिकता के ढकोसले, अनमेल विवाह, नारी विडंबना सहित अनेक सामाजिक कुरीतियों को दिखाया है ।

ii. शहरी पात्र : इस वर्ग के पात्र जीविकोपार्जन एवं शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से शहरी जीवन व्यतीत करते हैं । राही के उपन्यास 'आधा गॉव' को छोड़कर अधिकांश कस्बों और नगरों की कहानी कहते हैं । अतः स्वाभाविक है कि उनके उपन्यासों में शहरी पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होगी । 'आधा गॉव' में थानेदार हरनारायण, शिवधनी सिंह, सईदा, अब्बास, राही मासूम रज़ा आदि पात्र शहरी हैं । 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत, आरजू जौनपुरी, जमुना, गफ्फार चचा, मासूम, कल्लू उस्ताद, इमाम बॉदी जैसे पात्र ग़ाज़ीपुर तथा मुंबई शहर के हैं । 'टोपी शुक्ला' के टोपी, इफ्फन, मूनिस, के.पी. सिंह, महेश, रमेश, भृगुनारायण बनारस तथा अलीगढ़ शहरों के हैं । 'ओस की बूँद' में वजीर हसन, वहशत अंसारी, हाजरा, दीनदयाल, अलीबाकर, रामअवतार आदि पात्र ग़ाज़ीपुर शहर से संबंध रखते हैं । 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन, ब्रिगेडियर न्याजी, मुनीश, जन्नत, सेठ मनोहरलाल, शर्फुआ, अब्दुस्समद आदि पात्र जैदी विला, ढाका तथा कराची शहरों से आते हैं । 'सीनः '75' में भोलानाथ खटक, अली अमजद, वी.डी, हरीश राय, रमा मनचंदानी, फंदा जी पटियालवी देश के विभिन्न शहरों से आकर मुंबई में फिल्मी माहौल के अंग बनते हैं । 'कटरा बी आर्जू' में इलाहाबाद के एक मुहल्ला कटरा की आपातकालीन कहानी कहने के लिए राही ने देशराज, बिल्लो, आशाराम, भोला पहलवान, शम्सू मियां, जोखन, मास्टर बदर आदि

पात्रों को चुना है तथा 'असन्तोष के दिन' में सैयदा, अब्बास, गोपीनाथ, हीराबाई, अलाउद्दीन खां इत्यादि पात्र भी शहरी पृष्ठभूमि के हैं ।

राही जी ने इन शहरी पात्रों के माध्यम से शहरों के लोगों की तथाकथित विकसित मानसिकता, विलासिता, उन्मुक्त यौनाचार, बनावटीपन तथा अमीर व ग़रीब की बढ़ती खाई का प्रभावशाली चित्रण किया है ।

ख. विदेशी पात्र

इस वर्ग के पात्र दूसरे देशों में निवास करते हैं । राही ने अपने उपन्यासों में विदेशी पात्रों की रचना करके इन पात्रों की स्थिति से अवगत कराया है । उन्होंने अपने उपन्यासों 'आधा गाँव' में अबुल कासिम चा, बद्दन भाई, तन्नू भाई, तस्सन, कैसर, अख्तर, गिग्गे, कुद्दन; 'टोपी शुक्ला' में गोपीनाथ का इंजीनियर बेटा, इफ्फन की बहिन तथा बहनोई; 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन के भाई जान, मुस्लिम शरणार्थी; 'सीनः '75' में सईदा, रुकैया, सबैया; 'ओस की बूँद' में अली बाकर, पद्मा के पिता; 'कटरा बी आर्जू' में अब्दुल हक़, अल्ला रक्खे का बड़ा भाई तथा 'असन्तोष के दिन' में रेवती श्रीवास्तव, सलमा, तसनीम, तहसीन, हलीमा, मुरतुज़ा नक़वी आदि विदेशी पात्रों का संबंध कराची, लाहौर, ढाका, नैरोबी, न्यूयार्क, लन्दन, अबूधाबी आदि नगरों से दिखाया है ।

इन विदेशी पात्रों के माध्यम से राही ने भारत विभाजन के बाद बने पाकिस्तान तथा पाकिस्तान विभाजन के बाद अस्तित्व में आए बांगलादेश नामक नए देशों में रहने वाले भारतीयों तथा विभाजनोपरान्त बने इन नए देशों के भारत में रहने वाले लोगों की कहानी बुनी है । इन परिवारों की आपस में रिश्ते नाते भी हैं किन्तु देश विभाजन के बाद इनके परिवार टूट गए हैं । राही ने मुस्लिम परिवारों में से आजीविकोपार्जन हेतु गए कुछ लोगों का संबंध विदेशों से दिखाया है ।

6. काल अथवा समय के आधार पर

काल अथवा समय की दृष्टि से राही के उपन्यास सन् 1937 से 1984 तक की कालावधि को अपनी कथावस्तु में समाहित किए हुए हैं । इनके उपन्यासों की प्रमुख घटनायें 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के प्रथम चुनाव, 1939 का द्वितीय विश्व युद्ध, 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन, 1946 में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान नाम के अलग देश की मांग, 1947 में देश को प्राप्त स्वतंत्रता साथ ही हिन्दुस्तान-पाकिस्तान

का विभाजन, 1950 में देश का संविधान प्रभावी होना, 1952 के आम चुनाव एवं जमींदारी उन्मूलन, 1962 का चीन युद्ध, 1965 तथा 1971 के पाकिस्तान युद्ध, 1975 में आपातकाल की घोषणा एवं उसकी यातनायें, 1977 में जनता पार्टी का सरकार बनना तथा 1984 में श्रीमती इन्दिरा गॉधी की हत्या इत्यादि हैं । राही के रचनाकाल में विभिन्न सांप्रदायिक दंगे हुए जिनकी प्रतिध्वनि और पीड़ा उनके उपन्यासों में दिखाई पड़ती है ।

'आधा गॉव' उपन्यास का कथाकाल 1937 से लेकर 1952 तक का है । 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास की समय सीमा राही जी के अन्य उपन्यासों से भिन्न है क्योंकि उसमें चार पीढ़ियों की कथा है । यह उपन्यास लगभग दो सौ वर्षों की कथा को समेटे हुए है । 'टोपी शुक्ला' के कथानक में 1937 से 1963-64 तक का काल अंतर्भुक्त है । 'ओस की बूँद' की कथा अवधि 1942 से बाद 1952 तक के ग़ाज़ीपुर की है । 'दिल एक सादा काग़ज़' की कथावस्तु 1935-1936 से बांगलादेश के निर्माण तक चलती है । 'सीनः '75' की कथा 1950 से 1977 तक घूमती है । 'कटरा बी आर्जू' का कालखण्ड मात्र 1975-1977 तक के 18 माह का ही है । राही जी के अंतिम उपन्यास 'असन्तोष के दिन' का रचनाखण्ड भी बहुत सीमित है । यह उपन्यास 1986 में प्रकाशित हुआ और इसमें 31 अक्टूबर 1984 अर्थात् श्रीमती इन्दिरा गॉधी की हत्या के बाद की कथा कही गई है ।

इस प्रकार राही जी उपन्यासों का कथा काल कथानक के मर्म एवं पात्रों की विशेषताओं को उभारने की उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान करता है ।

7. चारित्रिक परिवर्तनशीलता के आधार पर

चरित्रगत स्वरूप या परिवर्तनशीलता के आधार पर पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है

क. स्थिर पात्र

ख. गतिशील पात्र

क. स्थिर पात्र (Flat Characters)

स्थिर पात्रों का चारित्रिक विकास एक निश्चित दिशा में होता है । परिस्थितियों एवं अनेक घटनाओं के घात-प्रतिघात से उनके चरित्र में विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता । वे परिस्थितियों से जूझकर आगे बढ़ते हैं बल्कि परिस्थितियां ही उनकी

विशेषताओं का उभारती हैं किन्तु वे इस प्रकार के पात्रों को बदल नहीं पाती, अस्तु ! परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से प्रभावित न होकर अपरिवर्तित रहने वाल पात्र स्थिर पात्र हैं ।

'आधा गॉव' में राही ने मौलवी बेदार, हकीम अली कबीर, सुलेमान चा, फुन्नन मियां, झंगटिया बो, मिगदाद, बछनिया, छिकुरिया आदि पात्रों को चरित्र विशेष के आधार पर घटनाचक्र में घात-प्रतिघात करते हुए दिखाया है । ये पात्र कथानक को स्थिरता प्रदान करते हुए आगे बढ़े हैं । 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत तथा दिलगीर जौनपुरी के चरित्र स्थिर हैं । ये पात्र जीवन की विभिन्न संघर्षमयी अवस्थाओं से जूझते हुए विकसित होते हैं । 'टोपी शुक्ला' में टोपी, टोपी की मां रामदुलारी, पिता भृगुनारायण तथा टोपी के ही मित्र इफ्फन के पिता मुरतुज़ा हुसैन जैसे पात्र स्थिर पात्र हैं । उपन्यास का नायक टोपी अनेक प्रकार की बाधाओं को झेलता हुआ आत्महत्या कर लेता है किन्तु वह इस समाज से समझौता नहीं कर पाता ।

'ओस की बूँद' में स्थिर चरित्र के प्रकाशक पात्र हैं - वहशत अंसारी, वजीर हसन, दीनदयाल, झूलन तथा हाजरा । ये पात्र सांप्रदायिकता तथा चुनाव के झंझावातों से निकलकर कथानक को स्थिरता प्रदान करते हैं । 'दिल एक सादा काग़ज़' में मौलवी तकी हैदर तथा जन्नत बाजी स्थिर पात्र हैं । 'सीनः '75' में फंदाजी पटियालवी, भोलानाथ खटक, बाबूलाल श्रीवास्तव आदि पात्र मनुष्य के बनावटी जीवन की निस्सारता को सामने रखकर कथानक की गति को स्थिरता प्रदान करते हैं । 'कटरा बी आर्ज़ू' मे देशराज को अतिक्रमण हटाने के नाम पर चला बुलडोजर उसके प्राणों सहित सपनों को चकनाचूर कर देता है । प्रेमानारायण, बिल्लो, इतवारी बाबा, भोलानाथ पहलवान आदि पात्रों को भी परिस्थितियॉ बदल नहीं पाती । ये पात्र कथानक को स्थिरता प्रदान करने में पूर्णतः सफल रहे हैं । 'असन्तोष के दिन' में अब्बास और सैयदा सांप्रदायिक दंगों के समय भी अपने हिन्दू मित्रों और सहायकों के प्रति सहानुभूति और सहयोग का भाव रखते हैं ।

स्थिर पात्रों के विवेचन में हम देखते हैं कि लेखक ने स्थिर पात्रों के माध्यम से घटनाक्रम पर घात-प्रतिघात प्रस्तुत करके कथानक को स्थिरता प्रदान की है ।

ख. गतिशील पात्र (Round Characters)

ये पात्र अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण प्रत्येक परिस्थिति में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विकसित होते हैं । गतिशील पात्रों के जीवन में उत्कर्ष-अपकर्ष के

लक्षण प्रकट होते हैं, अस्तु ! परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से प्रभावित होकर चोला बदलने वाले पात्र गतिशील पात्र हैं कहलाते हैं ।

'आधा गॉव' में फुस्सू, फुन्नन मियां, परसराम एम.एल.ए, सितारा, अब्बास, तन्नू आदि पात्र अत्यंत संवेदनशील हैं और प्रत्येक परिस्थिति में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गतिशील हैं । यही कारण है कि जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदार फुस्सू अपनी एक जूतों की दुकान खोल लेते हैं जिससे उनकी आजीविका का निर्वाह हो सके । 'हिम्मत जौनपुरी' में इमामबॉदी, राजा, जुबेदा, गफ्फार चचा, नादिर जौनपुरी, त्रिपाठी डाकिया आदि पात्र उपन्यास के घटनाक्रम में कुछ समय के लिए प्रभाव डालने के निमित्त विभिन्न परिस्थितियों में विकसित हुए हैं । 'टोपी शुक्ला' में इफ्फन, सकीना; 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन, शर्फुआ; 'सीनः '75' में सैयद अली अमजद हुसैनी तिरमिज़ी बारहबंकवी, वी.डी, अली मुल्लाह, रामनाथ उर्फ पीटर; 'कटरा बी आर्जू' में आशाराम श्रीवास्तव, पं0 गौरीशंकर लाल पाण्डेय एम.पी; 'असन्तोष के दिन' में गोपीनाथ बर्क़, संगीता, रवि, माजिद आदि पात्र सांप्रदायिक दंगों के पीड़ित पात्र हैं । इस उपन्यास के यह हिन्दू तथा मुसलमान पात्र आपस में विवाह एवं रिश्ते निभाते हुए चित्रित किए गए हैं । 'ओस की बूँद' में रामअवतार, शहला, शहरनाज, बेहाल शाह, गुल्लू आदि पात्रों को सांप्रदायिक दंगों के उत्तरदायी पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है । दंगों की आड़ में ये अपने कुत्सित स्वार्थ भी पूरे करते हुए वर्णित हैं । उदाहरण के लिए बेहाल शाह नामक पात्र शहला के साथ दंगों के दौरान अपनी हविश शान्त करता है ।

इस प्रकार लेखक ने समकालीन विभिन्न समस्याओं को उभारने के लिए अपने उपन्यासों में गतिशील चरित्रों की सृष्टि की है और अपने कथानक को उनके उद्देश्य तक पहुँचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ सूतदेव हंस स्थिर एवं गतिशील पात्रों के अंतर को एक स्पष्ट करने के लिएं एक रूपक देते हुए लिखते हैं कि जिस प्रकार सागर के विशाल वक्ष पर कहीं तो उत्ताल तरंगों की अनेक विधात्मक क्रीड़ायें दिखाई देती हैं और कहीं जल नितांत शान्त और स्थिर प्रतीत होता है; उसी प्रकार मानव समुदाय में कुछ व्यक्ति नितांत सक्रिय एवं उत्तरोत्तर गतिशील दिखाई देते हैं । अन्य अनेकजन सांचे में ढले सिक्केबंद पदार्थों की भॉति एक से; स्थिर तथा तटस्थ बने रहते हैं किन्तु यह आधार बहुत स्थूल एवं अस्पष्ट है क्योंकि स्थिर प्रतीत होने वाले पात्रों के मनोजगत में कितनी हलचल रहती है; यह कौन जानता है? इसी प्रकार गतिशील पात्रों

की गतिविधि मात्र शारीरिक अथवा बाहरी सक्रियता तक ही सीमित हो सकती है । उनका मन मस्तिष्क कितना जड़ है; यह बात विश्वासपूर्वक नहीं कही जा सकती ।[102]

हंस जी के इस कथन से असहमत हुए बिना नहीं रहा जा सकता है कि जिस प्रकार वर्गगत तथा व्यक्तिगत पात्रों के बीच एक विभाजक रेखा खींचकर भेद कर पाना दुष्कर है, उसी प्रकार स्थिर तथा गतिशील पात्रों को भी अलग कर पाना अत्यंत कठिन है ।

7. व्यवसाय अथवा कार्यों के आधार पर

व्यक्ति समाज में रहकर अपनी जीविका चलाने के लिए जो कार्य करता है, उसे व्यवसाय कहते हैं । व्यवसाय की दृष्टि से समाज में अधिकारी, व्यापारी, दलाल, सेवक आदि वर्गों को रखा जा सकता है, जो अलग-अलग तरह से कार्यों के आधार पर अपनी आजीविका का निर्वाह करते हैं । व्यवसाय समाज को जीवित रखने और उसके विभिन्न क्षेत्रों में विकास हेतु मूलाधार के रूप में अपनी विशिष्ट महत्ता रखता है । व्यावसायिक वर्ग के अध्ययन के बिना समाज का चिंतन पूर्ण नहीं हो सकता । राही जी ने अपने उपन्यासों में व्यावसायिक वर्ग के पात्रों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । इस वर्ग के पात्रों को हम इन उपशीर्षकों के अंतर्गत रखकर विभाजित कर सकते हैं -

क. कृषक पात्र
ख. मजदूर पात्र
ग. व्यापारी पात्र
घ. अधिकारी-कर्मचारी पात्र
च. सेवक पात्र
छ. अन्य - दलाल, बेरोजगार - पात्र

क. कृषक पात्र

जो पात्र कथा में खेती के माध्यम से जीविकोपार्जन करते हैं, ऐसे पात्रों को कृषक पात्र कहते हैं । भारत प्राचीनकाल से ही एक कृषि प्रधान देश है आज भी यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही अवलंबित है । राही जी ने समाज की

[102] डॉ सूतदेव हंस, उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र, पृ0 95

आर्थिक विषमता का भयावह रूप अपनी कृतियों में उजागर करने के लिए ऐसे पात्रों की सृष्टि की है ।

'आधा गॉव' उपन्यास में फुन्नन मियां, फुस्सू, हम्माद मियां जैसे जमींदार कृषक पात्रों की प्रभावकारी नियोजना है । जब जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन हो जाता है, तब इन जमींदारों को अपने घर का नितांत आवश्यक खर्च भी वहन करना दुस्साध्य हो जाता है, ऐसे में मिगदाद नामक पात्र अपने कृषक कर्म के प्रति समर्पित हुआ उपन्यास में चित्रित हुआ है । 'ओस की बूँद' उपन्यास में वजीर हसन, रामअवतार तथा दीनदयाल नामक पात्र पारंपरिक रूप से खेती पर ही आश्रित हैं ।

डॉ राही मासूम रज़ा एक प्रगतिवादी विचारक हैं, जिनका मानना रहा कि किसी राष्ट्र अथवा समाज की उन्नति उस समाज की व्यावसायिक संपन्नता और कृषि व्यवस्था के समुन्नत होने पर ही हो सकती है । राही जी ने अपने उपन्यासों में कृषक वर्ग की समस्याओं को सहानुभूति पूर्वक रखा है । उन्होंने कृषक वर्ग की दीन-हीन दशा से उत्पन्न दुष्परिणामों से समाज को आगाह किया है ।

ख. मजदूर पात्र

ऐसे व्यक्ति अपने भरण-पोषण के लिए जी-तोड़ मेहनत के बाद मात्र बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य पारिश्रमिक प्राप्त कर पाते हैं । राही जी ने शोषित वर्ग द्वारा किए गए अन्याय को चित्रित करने के लिए इस वर्ग के पात्रों को प्रस्तुत किया है । इस वर्ग के पात्रों की बड़ा प्रभावशाली वर्णन इनके उपन्यासों में मिलता है ।

'आधा गॉव' उपन्यास में राही ने जमींदार एवं सामंत वर्ग द्वारा दलितों एवं वंचितों को दी गई यातनाओं और उन्हें उनके देय से वंचित रखने को विवश करने जैसी परिस्थितियां निर्मित की हैं । दलित और वंचित समाज इस उपन्यास में अपना भरण-पोषण मजदूरी करके करता है । ऐसे पात्रों में गुलाबी जान, टामी, भंगिन, चंदाबाई, मदारन, जुलाहे तथा अनेक राकी परिवारों को सम्मिलित किया जा सकता है 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत नामक पात्र अपने पिता से पिटने के बाद ग़ाज़ीपुर से मुबई आता है । यहां वह फिल्म बनाने के सपने देखता है । किन्तु मुंबई में तो उसे जीने के ही लाले पड़ जाते हैं । वह परिस्थितियों से जूझता है; लड़ता है; मजदूरी करता है और अंत में थककर मर जाता है ।

'टोपी शुक्ला' में वाज़िद खां, मेहतरानियां तथा मोची आदि पात्रों को मजदूर श्रेणी के अंतर्गत परिगणित किया जा सकता है । 'ओस की बूँद' में नजीर भिश्ती तथा जोखन रिक्शे वाला मजदूर पात्र है जो समाज के अन्याय और शोषण को तो प्रस्तुत करते ही हैं; कथानक में रोचकता की भी अभिवृद्धि करते हैं । 'सीनः '75' में फूलवाला पात्र अपनी आजीविका फिल्म कालोनी के फ्लैट्स में अपने फूल बेचकर चलाता है । एक अन्य पात्र हाजी फकीरा भिखारियों का सरदार होता है, जो भिखारियों की माफियागीरी करते हुए उपन्यास में चित्रित है । 'कटरा बी आर्ज़ू' में रामदीन नामक पात्र रेजागीरी करता है, जो एक बहुमंजिले भवन में ईंट गारा देते समय मारा जाता है । इसी उपन्यास में मजदूरों की दयनीय अवस्था का मर्मांकन करने के लिए अन्य पात्र हैं - मनोहर एवं रामअवतार ।

मजदूर वर्ग के पात्रों के इस विवेचन से स्पष्ट है कि राही जी ने प्रेमचन्दीय परंपरा की साम्यवादी विचारधारा के पोषक हैं । उन्होंने प्रेमचन्द की भाँति मजदूर वर्ग की पीड़ा को अनुभूत किया है और जमींदार; पूँजीपति वर्ग के विरोध में मजदूर पात्रों का चित्रण किया है । यहां यह भी ध्यातव्य होगा कि राही का समाज दर्शन यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़ा होकर उस समाज के सुन्दर भविष्य की संभावना की खोज करता है । वह समाज को नैराश्य के गर्त में नहीं ढकेलता ।

ग. व्यापारी पात्र

ऐसे व्यक्ति जो समाज के हितसाधनार्थ उत्पादन के साधनों को एकत्र करके अन्य लोगों की सहायता करके उससे अपने लिए भी बुनियादी मुनाफा कमाते हैं, जिससे इनकी आजीविका चलती है; आदर्श रूप में व्यापारी कहे जाते हैं । व्यापारी वर्ग समाज को जीवित रखने तथा विभिन्न क्षेत्रों का विकास करने का मूलाधार हैं । अतएव इस वर्ग का उपन्यास साहित्य में चित्रित होना विशिष्ट महत्व रखता है ।

'आधा गॉव' में मनहारिन, हशमतुल्ला हलवाई, झिंगुरी हलवाई, छन्नूलाल सुनार, जूतों के दुकानदार फुस्सू आदि पात्र व्यापारी वर्गांतर्गत आते हैं । राही ने हलवाइयों के माध्यम से छुआछूत तथा तथाकथित कुलीनता के प्रश्नों को उठाया है । 'हिम्मत जौनपुरी' में मशेन टेलर कपड़े सिलने का काम करता है । इसी उपन्यास में एक झूलन चाय वाला है, जिसकी ग़ाज़ीपुर में प्रसिद्ध चाय की दुकान है । इस दुकान पर सभी बुद्धिजीवी आपस में बैठकर विचार-विनिमय करते हैं । 'टोपी शुक्ला' में डॉ शरफुद्दीन नीले तेल वाले हैं तो डॉ भृगुनारायण शुक्ला लाल तेल वाले हैं । ये दोनों कोई डाक्टरेट किए हुए अथवा मेडिकल उपाधि प्राप्त डॉक्टर नहीं है अपितु ये तेलों के

माध्यम से उपचार करते हुए अपनी ख्याति अर्जित किए हुए चित्रित हैं । 'ओस की बूँद' में कल्लू हज्जाम तथा झूलन चाय वाला व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । 'दिल एक सादा काग़ज़' में सेठ मनोहर लाल नकली दवाइयां बनाने का जघन्य मानवता विरोधी व्यापार करता है । ये सेठ ग़रीबों के लिए एक विशेष कफ़न भी बनवाते हैं । राही ने इस पात्र के माध्यम से मनुष्यता का गला घोंटने के बावजूद उसका संरक्षक बने रहने के पाखण्ड का विरोधाभासी चरित्र प्रस्तुत किया है ।

'सीनः '75' में फंदा जी पटियालवी फिल्मों में लेखक का कार्य व्यापारिक ढंग से करते हुए दिखाए गए हैं । 'कटरा बी आर्जू' में भोलू पहलवान की चाय और दूध की दुकान पर बड़े-बड़े निर्णय लिए जाते हैं । इसमें बाबू नानबायी, जोखन, शम्सू, बिल्लो लाउंड्री वाली, कादिर हलवाई आदि व्यापारी पात्रों का मार्मिक एवं प्रभावशाली वर्णन किया गया है । 'असन्तोष के दिन' में मि0 शर्मा गोदरेज वाले हैं । इसमें एक अन्य व्यापारी पात्र मैकेनिक सैयद मुरतुजा नक़वी है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि राही जी ने व्यावसायिक क्षेत्र के विकास के लिए छोटे व्यापारी पात्रों को अपने उपन्यासों में विशिष्ट स्थान दिया है । उन्होंने व्यापारी जगत की समस्याओं पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया है; साथ ही व्यापारियों के छद्म तथा अनुचित कर्म कौशल के दुष्परिणामों की ओर भी उनकी दृष्टि गई है ।

घ. अधिकारी-कर्मचारी पात्र

ये पात्र समाज के सभी वर्गों की समस्याओं का शिक्षित अथवा बौद्धिक दृष्टि से समाधान करते हैं । राही जी के उपन्यासों में न्यायाधीश, सेना के अधिकारी, मंत्री, लोकसभा तथा विधानसभा सदस्य, जिलाधीश, पुलिस महानिरीक्षक, डाक्टर, संपादक, पत्रकार, थानेदार, वकील, अध्यापक, नौकरी पेशा अधिकारी-कर्मचारी पात्रों का यथार्थ प्रस्तुतीकरण हुआ है ।

'आधा गाँव' में फखरू, अंग्रेज कलक्टर, गिरधारी लाल श्रीवास्तव जज, हाइकोर्ट के जस्टिस खन्ना, परसराम एम.एल.ए, अध्यापिका सईदा, वकील बशीर हसन, थानेदार हरनारायण और शिवधनी सिंह, दीवान समीउद्दीन खां; 'हिम्मत जौनपुरी' मासूम, दिलगीर जौनपुरी, नादिर जौनपुरी जैसे कवि और बुद्धिजीवी चित्रित किए गए हैं 'टोपी शुक्ला' में विश्वविद्यालयीन राजनीति का यथार्थ चित्रण करने करने हेतु सैयद मुरतुज़ा हुसैन, ठा0 हरिनाम सिंह, बालकृष्ण तथा गोपीनाथ का बेटा इत्यादि अधिकारी-कर्मचारी वर्ग के पात्र हैं । 'ओस की बूँद' में मुहसिन, गोवर्धन बेकल

चिरैयाकोठी, मुंशी मनोहरलाल, प्रिंसिपल अली मंजर; 'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन, ब्रिगेडियर न्याजी, मुनीश; 'सीनः '75' में टीचर मिस डिक्रूज, रामनाथ के क्लर्क पिता, पत्रकार पंचारण मिश्र, मि0 डिसूजा; 'कटरा बी आर्जू' में इंस्पेक्टर अशफाकुल्ला खां, सूरजनाथ, जगदंबा प्रसाद, प्रेमानारायण, डी.आइ.जी. खुर्शीद आलम खां; 'असन्तोष के दिन' में एक पत्रिका के संपादक अब्बास तथा उपसंपादक गोपीनाथ अधिकारी-कर्मचारी वर्ग के पात्रों में परिगणन किए जाने योग्य हैं ।

राही जी के यह पात्र शैक्षिक-बौद्धिक स्तर पर समाज की विकासधारा को आगे बढ़ाने में सतत प्रयासरत रहते हैं ।

च. सेवक पात्र

कथा में जो पात्र राज-परिवार, जमींदार या उच्च वर्गीय व्यक्तियों की सेवा में रत हों; उन्हें सेवक पात्रों की कोटि में रखा जाता है । राही जी ने इस वर्ग की दशा को अंकित करने के लिए इन्हें अपने उपन्यासों में समुचित स्थान दिया है ।

तमोली, कहार, हज्जाम, ईदू नाइन संदेश वाहिका ईदू बो (आधा गॉव); शेख शरफुद्दीन के नौकर-नौकरानियां (हिम्मत जौनपुरी); भृगुनारायण शुक्ला की नौकरानी सीता, केतकी (टोपी शुक्ला); हशमत, नसीबन, गफूर, हमीदुन नाइन, रामधनी और उसका बड़ा भाई चपरासी (ओस की बूँद); शर्फुआ, अब्दुस्समद (दिल एक सादा काग़ज़); रामनाथ उर्फ पीटर, राममनोहर, अब्दुल हसन, सोसायटी का चौकीदार फर्नाण्डिज (सीनः '75); नरायना (कटरा बी आर्जू) तथा राममोहन (असन्तोष के दिन) नामक पात्रों का नियोजन कथानक विकास, रोचकता एवं उसके उद्देश्य प्राप्ति हेतु लेखक ने किया है ।

सेवक वर्गीय उपर्युक्त पात्रों के विवेचन से स्पष्ट है कि राही ने व्यावसायिक क्षेत्र की प्रगति के लिए सेवक वर्ग के पात्रों को अपने उपन्यासों में रखा है । राही ने इस वर्ग की समस्याओं को सहानुभूति पूर्वक विचार करके उनके निराकरण के लिए प्रभावपूर्ण प्रयास किए हैं । 'असन्तोष के दिन' का राममोहन हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे में भी मालिक मुस्लिम मालिक पर भरोसा रखता है । ऐसा करके उन्होंने इस वर्ग की सरलता और निष्कपटता को रेखांकित किया है ।

छ. अन्य - बेरोजगार, दलाल - पात्र

जिन व्यक्तियों को अपनी योग्यता अथवा क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता; वे बेरोजगार कहे जाते हैं और जो व्यक्ति अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दो पक्षों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं; उन्हें दलाल कहते हैं । दलाल पात्रों में ऐसे पात्र भी आते हैं जो किसी काम के बदले रिश्वतखोरी अथवा सिफारिशखोरी करते हैं । राही जी ने अपने उपन्यासों में अन्य पात्रों के साथ इन पात्रों की भी सम्मिलित कर अपनी रचनाशक्ति का परिचय दिया है

डनके उपन्यासों के बेरोजगार पात्र हैं; अब्बास, कमालुद्दीन (आधा गॉव); हिम्मत, उस्ताद कल्लू, जमुना, गफ्फार चचा (हिम्मत जौनपुरी); टोपी, मूनिस, इफ्फन, हामिद, रिज़वी, के.पी. सिंह (टोपी शुक्ला) । 'टोपी शुक्ला' का तो कथानक ही बेरोजगारी की समस्या को उभारने के लिए बुना गया है । जिसमें कथा का नायक टोपी कहता है कि ''चलो! घर बैठे रहने से तो अच्छा है; आदमी पी-एच.डी. ही कर ले ।'' रफ्फन (दिल एक सादा काग़ज़), वी.डी, हरीश राय, अलीमुल्ला खां, अली अमजद (सीनः '75), आशाराम, शहनाज, इतवारी बाबा, रामदीन की अम्मा, अल्ला रक्खे (कटरा बी आर्जू) आदि पात्र भी बेरोजगारी की देशव्यापी भयावह समस्या को चित्रित करने के लिए की गई है ।

राही के उपन्यासों में दुखीराम कांस्टेबल, थानेदार हरनारायण सिंह, समीउद्दीन खां (आधा गॉव); रशीदुल्ला अहरारी (ओस की बूँद); तोलाराम दलाल (सीनः '75) तथा पुलिस कांस्टेबल (कटरा बी आर्जू) नामक पात्र दलाली करते हुए वर्णित हैं । राही ने इन पात्रों की परिकल्पना पूंजीवादी व्यवस्था के दोषों का उन्मूलन करने एवं समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने को आवश्यक बताने के लिए बेरोजगार एवं दलाल पात्रों को अपने उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

इस प्रकार सामाजिक चेतना के कुशल चितेरे डॉ राही मासूम रज़ा ने व्यावसायिक क्षेत्र के सभी वर्गों को अपने उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान दिया है । राही इस बात को भली भॉति समझते थे कि व्यावसायिक वर्ग के अध्ययन के बिना समाज का चिंतन पूर्ण नहीं हो सकता है, क्योंकि व्यवसाय ही समाज को जीवित रखने का एकमात्र साधन है । किसी भी राज्य एवं राष्ट्र का विकास तभी संभव हो सकता है, जबकि इसमें विभिन्न क्षेत्र - समाज, अर्थ, राजनीति एवं संस्कृति - विकसित

अवस्था में हों । कहने की आवश्यकता नहीं कि इनका विकास व्यावसायिक वर्ग की समुचित उन्नति द्वारा की जा सकती है ।

8. वय अथवा अवस्था के आधार पर

राही जी द्वारा अपने उपन्यासों में चित्रित पात्रों को वय अथवा अवस्थाओं के आधार पर निम्नलिखित प्रसिद्ध चार अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

क. बालावस्था
ख. युवावस्था
ग. प्रौढ़ावस्था तथा
घ. वृद्धावस्था

क. बाल पात्र

15 वर्ष से कम आयु के पात्र बाल पात्र कहे जाते हैं । वैदिक युग से ही हिन्दू समाज में चार आश्रम - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास - निर्धारित किए गए हैं । ये आश्रम आयु के आधार पर ही वर्गीकृत हैं आधुनिक उपन्यासकार डॉ राही मासूम रज़ा ने विभिन्न अवस्थाओं के पात्रों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है । उनकें उपन्यासवार बाल पात्र हैं - 'आधा गॉव' में स्वयं मासूम, मूनिस, फुस्सू, बदरुद्दीन, हज्जाम का लड़का, सलमा, फुस्सू की सात लड़कियां, उम्मुल, हवीबा, सैयदा का लड़का, आसिया के 6 बच्चे; 'हिम्मत जौनपुरी' में बिल्लो, रजिया; 'टोपी शुक्ला' में शबनम, टोपी, इफ्फन, जिलाधीश के पुत्र डब्बू-गुड्डू; 'ओस की बूँद' में गुल्लू, शहरू, शहला; 'सीनः '75' में वसीम, फातिमा; 'कटरा बी आर्जू' में फत्तो, उम्मन, बिल्लो की मासूम बच्ची तथा 'असन्तोष के दिन' में मुजतफा, वाहिद आदि पात्रों का बालोचित क्रियाकलापों द्वारा कथानकों में प्रभावान्विति के साथ-साथ रोचकता का सम्मिश्रण किया है ।

उक्त पात्रों से स्पष्ट है कि राही ने अपने उपन्यासों में प्रत्येक जाति और वर्ग के बाल पात्रों को अपने उपन्यासों में रखा है ।

ख. युवा पात्र

इस वर्ग के अंतर्गत 15 वर्ष से 35 वर्ष तक के पात्रों को रखा जाता है । युवा वर्ग हमारे समाज तथा राष्ट्र और इसीलिए साहित्य को प्रभावित करता है ।

युवाओं की दिशा और दशा यदि समाज द्वारा ठीक नहीं रखी गई तो यही वर्ग विध्वंसात्मक गतिविधियों में संलिप्त हो जाता है । कथा साहित्य में युवा पात्रों की इस महत्ता को देखते हुए राही जी ने अपने उपन्यासों में इस वर्ग को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है ।

'आधा गॉव' में कमालुद्दीन, रजिया, सितारा, अब्बास, मुमताज, फुट्टू, तन्नू, सद्दन, सल्लो, मिगदाद, सैफुनिया, बछनिया, अकबरी, सरबरी, फिद्दू, बिक्कन, दिलआरा, मुहम्मद आदि चरित्रों द्वारा राही ने दिखाया है कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात इन नौजवानों पर उसका क्या प्रभाव पड़ा? 'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत, मासूम, जमुना, राजा, बिल्लो, अख्तरी, मुश्तरी, नासिरी, गफ्फार चचा; 'टोपी शुक्ला' टोपी, इफ्फन, सकीना, अब्दुल वहीद, महेश, रमेश, मुन्नी, भैरव आदि पात्रों द्वारा टोपी के एकाकीपन, बेरोजगारी एवं आर्थिक संत्रास को व्याख्यायित किया गया है । 'ओस की बूँद' में वहशत अंसारी, आबेदा, रामअवतार, ठा0 शिवनारायण, शहरनाज, शहला बुखारी; 'दिल एक सादा काग़ज़' में चंचल, तिरछे खां, शर्फुआ, शहरबानो, जन्नत, शारदा इत्यादि पात्रों द्वारा युवाओं की घोर वैयक्तिक समस्याओं - समलैंगिक दुराचरण, अनुचित एवं अवैध संबंध आदि - को हमारे सम्मुख रखते हैं । 'सीनः '75' में नजमा, अलीमुल्ला, पुष्पलता, राधिका, सरला मिढ़ा, लिज़ा, मिस डिक्रूज, रमा मनचंदानी आदि पात्र प्रणय एवं रोमांस की कहानी कहते हैं ।

'कटरा बी आर्जू' में देशराज, आशाराम, बिल्लो, महनाज, शहनाज, मास्टर बदर, रामअवतार, मनोहर, भाग्यमती, लैला जैसे युवा चरित्रों के नियोजन द्वारा नसबंदी प्रचार सहित आवश्यक विषयों में युवाओं के योगदान को अभिव्यक्त किया गया है । 'असन्तोष के दिन' में तसनीम, तहसीन, रवि, संगीता, फ़ात्मा, माज़िद, हलीमा आदि पात्रों का नियोजन विभिन्न संप्रदायों में अंतर्जातीय संबंधों की पैरवी करने हेतु दीख पड़ता है ।

इस विवेचन में यह ध्यातव्य है कि कुछ बाल पात्र युवा पात्रों के रूप में भी उल्लिखित हैं क्योंकि उपन्यास मानव जीवन का महाकाव्य होता है । अतः यदि किसी व्यक्ति का चरित्र उसकी बालावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उपन्यास में वर्णित होता है तो उसकी अलग-अलग अवस्थाओं का अंकन वर्गीकरण करते समय करना समीचीन होगा ।

ग. प्रौढ़ पात्र

इस वर्ग में 40 वर्ष से 60 वर्ष तक की आयु वर्ग के पात्रों को नियोजित किया जाता है । राही के उपन्यास 'आधा गॉव' में अधिकतर प्रौढ़ पात्र जमींदार वर्ग से आए हैं । गया अहीर, फुस्सू, जवाद मियां, फुन्नन मियां, कुलसुम, सुलेमान चा, झंगटिया, सैफुनिया, मेहरुनिया जैसे पात्र जमींदार परिवारों से आते हैं । कुछ प्रौढ़ पात्र अन्य वर्ग से भी हैं जैसे थानेदार हरनारायण तथा शिवधनी सिंह ।

'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत के पिता नादिर जौनपुरी तथा इमाम बॉदी नामक वेश्या; प्रौढ़ पात्र हैं; जो आपस में प्रेम विवाह कर लेते हैं । ऐसा करके राही ने दिखाया है कि समाज के संभ्रांत व्यक्ति ही सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करते हैं 'टोपी शुक्ला' में भृगुनारायण, ठाकुर हरिनाम सिंह, शेख शर्फुद्दीन, बहरुल काहिल, सिगार हुसैन जैदी, डॉ कादरी, रामदुलारी आदि प्रौढ़ पात्रों में से बहरुल काहिल, जैदी तथा डॉ कादरी नामक चरित्र विश्वविद्यालयीन क्षुद्र राजनीति को प्रस्तुत करते हैं । 'ओस की बूँद' में वजीर हसन, दीनदयाल; 'दिल एक सादा काग़ज़' में बाबूराम, चीफ साहब, ब्रिगेडियर न्याजी; 'सीनः '75' में फंदाजी पटियालवी, भोलानाथ खटक आदि प्रभावशाली प्रौढ़ चरित्र हैं जो विवाहेतर यौन संबंधों को प्रश्रय देते दिखाई देते हैं 'कटरा बी आर्जू' में शम्सू मियां, जोखन, भोलू पहलवान, बाबू गौरीशंकर लाल पाण्डेय, जगदंबा प्रसाद, आलम आरा, अशफाकुल्ला खां, खुर्शीद आलम खां आदि प्रौढ़ पात्रों में से शम्सू मियां की लड़की महनाज का बेमेल विवाह शम्सू के समवयस्क जोखन मियां से कराकर राही समाज की इस समस्या को भी सम्मुख रखते हैं । 'असन्तोष के दिन' में विष्णुकांता मेहरोत्रा, सैयदा, अब्बास, रेवती श्रीवास्तव, सलमा आदि पात्र सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में अपना-अपना चरित्र निभाते हैं ।

घ. वृद्ध पात्र

इस वर्ग में 60-65 वर्ष से अधिक उम्र के पात्र आते हैं । इस आधार पर राही जी के उपन्यास 'आधा गॉव' में दद्दा (मासूम की मां), मौलवी बेदार, हकीम अली कबीर, बलराम चमार, नईमा दादी, मझले दा, हसीना दादी, गया की मां, रब्बन बी आदि; 'हिम्मत जौनपुरी' में दिलगीर जौनपुरी, बर्क जौनपुरी, दुल्हन बी, आरजू पहलवान, 'टोपी शुक्ला' में टोपी की दादी सुभद्रा देवी, इफ्फन की परदादी, दादी, मौलवी साहब; 'ओस की बूँद' में गुलाम मुहम्मद, हयातुल्लाह अंसारी, शेख सुबहानुल्लाह बर्क़ जौनपुरी; 'दिल एक सादा काग़ज़' में अनुचित यौन संबंधों को प्रोत्साहित करता हुआ मौलवी तकी हैदर; 'सीनः '75' में लाला अशरफी लाल,

घनश्याम प्रसाद, रुकमनी, शोभानाथ चोपड़ा; 'कटरा बी आर्जू' में इतवारी बाबा, बाबूराम आज़ाद आदि वृद्ध स्त्री-पुरुष पात्रों का नियोजन कथानक को समृद्ध करता है राही के अंतिम उपन्यास 'असन्तोष के दिन' में ज़र्रीक़लम सैयद अली अहमद जौनपुरी नामक वृद्ध पात्र के माध्यम से राही ने कुछ मुस्लिमों के पूर्व में हिन्दू होने के तथ्य का प्रस्तुतीकरण किया है ।

उपर्युक्त चारों आयु वर्ग के वर्गीकरण से स्पष्ट है कि राही ने अपने उपन्यासों में वय के आधार पर बाल, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध सभी अवस्थाओं के चरित्रों को समुचित स्थान देकर उपन्यासों को मानव जीवन की कथा के रूप में चरितार्थ कर दिया है ।

9. चारित्रिक गुणों के आधार पर

जिस प्रकार प्रत्येक मानव बाह्यतः अपने अंगों की दृष्टि से समान दिखता हुआ भी सूक्ष्मतः शरीर-गठन, नाक-नक्श और रूप-रंग में एक-दूसरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार उसके स्वभाव और विचार में भी पारस्परिक भिन्नता विद्यमान होती है जो उनके आचरण एवं व्यवहार के द्वारा परिलक्षित होती है । कुछ व्यक्ति तेज, त्याग, वीरता, कर्तव्यपरायणता आदि गुणों से मण्डित होते हैं तो कुछ कामुक, विलासी, स्वार्थी, प्रवंचक एवं धूर्त होते हैं । राही जी के उपन्यासों के पात्रों में भी इस प्रकार का चारित्रिक वैशिष्ट्य गुण वैविध्यपूर्ण चित्रित हुआ है । इस आधार पर उनके पात्रों को प्रमुखतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

क. सद् पात्र
ख. असद् पात्र

क. सद् पात्र

जिन पात्रों में त्याग, गंभीरता, वीरता, कर्तव्य परायणता आदि चारित्रिक गुण विद्यमान होते हैं, सद् पात्र कहलाते हैं । इन पात्रों का मुख्य उद्देश्य कर्म को करते हुए अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य को बनाए रखना तथा लक्ष्य प्राप्त करना होता है । ऐसे प्रतिनिधि पात्र कथानक में प्रारंभ से लेकर अंत तक सजीवता प्रदान करते हैं । राही जी के उपन्यासों में ऐसे पात्रों को उनके उपन्यास-क्रम में इस प्रकार रखा जा सकता है

'आधा गाँव' उपन्यास में फुन्नन मियां, परसराम एम.एल.ए, विधवा ब्राह्मणी, मिगदाद, फुस्सू, झंगटिया, बछनिया, छिकुरिया आदि अनेक पात्र सांप्रदायिक सद्भाव, त्याग, गंभीरता, कर्तव्य-निष्ठा आदि चारित्रिक गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं । फुन्नन मियां एक साहसी वीर योद्धा है । वह भारतीयता का प्रतिरूप है । इसीलिए कुछ समीक्षक फुन्नन मियां को स्वयं राही मासूम रज़ा का प्रतिनिधि पात्र कहते हैं । इस पात्र में उन्होंने अपने गुणों का आरोपण किया है । परसराम एम.एल.ए. शिया मुसलमानों के ताजिया उठवाने में सहायता करता है । एक विधवा ब्राह्मणी ताजियों को बराबर सम्मान देती है । छिकुरिया पाकिस्तानियों की तकरीर को सिरे से पूर्ण विरोध के साथ अस्वीकार करता है ।

'हिम्मत जौनपुरी' में हिम्मत नायक एवं सद् पात्र जो अंत तक अपने जीवन-संघर्षों के बावजूद नैतिक आचरण पूर्ण जीवन व्यतीत करता है । 'टोपी शुक्ला' में टोपी, इफ्फन, सकीना आदि सद् पात्र हैं । घर से भगाए जाने पर टोपी को इफ्फन और सकीना अपने घर में शरण देते हैं जिसके लिए उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों के लाञ्छन सहने पड़ते हैं । 'ओस की बूँद' में वजीर हसन, वहशत अंसारी तथा शहला सद् पात्रों के रूप में निरूपित हैं । वजीर हसन अपने घर के अंदर बने मंदिर के कुएं में रामअवतार द्वारा फेंके गए शंख को निकालकर मंदिर में पूजा करते हैं । तथापि पी. ए.सी. द्वारा उन्हें सांप्रदायिक दंगे भड़काने के मिथ्या आरोप में मार दिया जाता है ।

'दिल एक सादा काग़ज़' में रफ्फन एक उपन्यासकार एवं भावुक कवि है । जिस प्रकार गोदान में होरी की गाय मर जाती है, उसी प्रकार रफ्फन का जैदी विला भी बिक जाता है किन्तु वह फिर भी हिन्दुस्तान में अपनी क़िस्मत आज़माता है । 'सीनः '75' में अली अमजद उच्च शिक्षित सद् पात्र है । परिस्थितियों की विडंबना ऐसी कि उसे भिखारियों की टोली में भीख मांगने के लिए बोले जाने वाले नारे लिखने पड़ते हैं । वह किसी दुराचरण में लिप्त नहीं होता है ।

'कटरा बी आर्जू' में देशराज, बिल्लो, बाबूराम, भोलानाथ, प्रेमानारायण, इतवारी बाबा, शम्सू मियां आदि अनेक सद् पात्र हैं । बाबूराम आजीवन एक राजनैतिक दल के प्रति प्रतिबद्ध रहते हैं । वह चुनाव में दूसरे दल से खड़े अपने इकलौते बेटे आशाराम को इसी प्रतिबद्धता के चलते अपना मत न देकर त्याग तथा कर्तव्य निष्ठा का अद्भुद उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । 'असन्तोष के दिन' में सैयदा जैसी सद् पात्र यों तो हिन्दुओं को गाली देती है; पर सांप्रदायिक दंगों के दौरान अपने नौकर राममोहन को अपने घर में शरण देकर मानवीयता का पक्ष रखती है ।

इस प्रकार लेखक ने बाह्य एवं आंतरिक रूप से चारित्रिक विशेषताओं से युक्त पात्रों का उभारकर अपने औपन्यासिक घटना-क्रमों को प्रभावी बनाया है । राही के उपन्यासों में सद् पात्रों के चारित्रिक गुण कोई बहुत उच्च आदर्शों से प्रेरित नहीं हैं अपितु उपन्यासों में छोटी-छोटी दैनन्दिन व्यवहार में होने वाली घटनाओं में ही करणीयता का भाव दिखाकर अपने पात्रों की निष्ठा, ईमानदारी एवं त्याग भावना का चित्रण किया है ।

ख. असद् पात्र

जिन पात्रों का मुख्य लक्ष्य अपना कल्याण करना होता है, उन्हें असद् पात्र कहते हैं । ये पात्र समाज में विरोधी तत्व के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं । ये स्वभावगत कामुक, विलासी, स्वार्थी, प्रवंचक एवं धूर्त होते हैं । ऐसे पात्र समाज तथा राष्ट्र की नींव खोखली करने में प्रयत्नशील रहते हैं ।

राही के उपन्यास 'आधा गॉव' में हम्माद मियां, मौलवी बेदार, वजीर मियां, सुलेमान चा आदि अनेक पात्र असद् पात्रों के अवगुणों को धारण करते हैं । मौलवी बेदार अपनी चरम वृद्धावस्था पर होने के बावजूद एक निम्न जाति की युवती से मुता (विवाह) करने पर आमादा हैं । इसी प्रकार उपन्यासकार ने कथानक में अनेक जमींदार पात्रों को चित्रित किया है, जो निम्न जाति की अनेक नारियों से अपने दैहिक संबंध रखते हैं और फिर भी अपने सैयद होने की दुहाई देते हैं । 'हिम्मत जौनपुरी' में बर्क़ जौनपुरी और त्रिपाठी जी असद् पात्र हैं । त्रिपाठी जी एक डाकिया होते हैं किन्तु अनेक तिकड़मों द्वारा वे लोक सभा सदस्य चुन लिए जाते हैं ।

'टोपी शुक्ला' में अब्दुल वहीद, डब्बू, गुड्डू, सिस्टर आलेमा, मदर सुपीरियर जैसे असद् पात्रों को गतिशील दिखाया गया है । एक कलक्टर के पुत्र डब्बू और गुड्ड निर्दोष टोपी को अपने अल्सेशियन कुत्ते से कटवाते हैं । इसी प्रकार सिस्टर आलेमा और मदर सुपीरियर टोपी शुक्ला पर सकीना, जिससे उसके मुँहबोली बहिन के संबंध हैं, से अनैतिक संबंध होने का लाञ्छन लगाती हैं ।

'ओस की बूँद' में बेहाल शाह, रामअवतार तथा बुखारी जैसे असद् पात्रों का प्रभावशाली अंकन है । सांप्रदायिक दंगों की आड़ में ''अल्लाह बस बाक़ी हवस'' का पुजारी बेहाल शाह शहला से बलात्कार करता है; तदुपरांत उसकी हत्या कर देता है । रामअवतार वजीर हसन की हवेली में स्थित मंदिर के कुएं में मंदिर का शंख गिरा देता है । उसका आरोप वजीर हसन पर लगता है और वजीर पुलिस की गोलियों से मार

दिया जाता है । इसी प्रकार बुखारी भी अपने चरित्रगत अशिष्टता के लिए उपन्यास में अंतर्भुक्त हैं ।

'दिल एक सादा काग़ज़' में चंचल, तिरछे खां, अब्दुस्समद, शर्फुआ, चीफ साहब , सिंह साहब, सेठ मनोहर लाल जैसे असद् पात्रों की परिकल्पना हुई है । ये पात्र अप्राकृतिक मैथुन तथा वंचित वर्ग का शोषण करके अपने निजी स्वार्थों को सिद्ध करते हुए उपन्यास में दिखाई देते हैं । 'सीनः '75' में लिजा, सरला मिढ़ा, रमा मनचंदानी, मिस डिक्रूज, राधिका, पुष्पलता, राजा-गुण्डा, हाजी फकीरा आदि असद् पात्रों के विवरण द्वारा फिल्मी दुनिया की भीतरी सच्चाई को उघाड़ा गया है । समलैंगिकता, अनुचित यौन संबंध, धूर्तता तथा विलासप्रियता इनके असद् गुण हैं ।

'कटरा बी आर्जू' में पं0 गौरीशंकर लाल पाण्डेय, आशाराम, अशफाकुल्ला खां, राधेश्याम का लड़का, बनवारी लाल, कोतवाल श्री बांकेबिहारी लाल, जगदंबा प्रसाद, डी. आई.जी.खुर्शीद आलम खां जोखन आदि अनेक असद् पात्र चित्रित हैं । यह पात्र आपातकाल में विभिन्न शासनादेशों की आड़ में अनेक फाइलें खोलकर निर्दोष जनता का सताकर अपनी स्वार्थ सिद्धि में रत हैं । 'असन्तोष के दिन' में नट्टा करीम जैसा असद् पात्र अपने कुत्सित कामों को पूरा करने के लिए कथित शिवसेना जैसे सांप्रदायिक दल का क्षेत्रीय नेता रहा होता है ।

उपर्युक्त असद् पात्रों में कुछ पात्र ऐसे हैं जो आदि से अंत तक उपन्यास में अपनी धूर्तता एवं दुष्ट प्रकृति का परिचय देते हैं; यथा पं0 गौरीशंकर लाल पाण्डेय एम.पी.(कटरा बी आर्जू), बेहाल शाह (ओस की बूँद) । राही जी के उपन्यासों में कुछ पात्र ऐसे हैं जो प्रारंभ में उच्च विचार वाले होते हैं, परंतु बाद में किसी कारण प्रतिशोध की भावना से भर उठते हैं और नीचे गिरने लगते हैं; यथा फुन्नन मियां (आधा गॉव) । इन उपन्यासों में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो बुराई से अच्छाई की ओर प्रवृत होते हैं; यथा प्रेमानारायण (कटरा बी आर्जू), परसराम एम.एल.ए(आधा गॉव) ।

इनके अतिरिक्त पात्रों का एक वर्ग ऐसा भी है जो न तो पूरी तरह से सद्गुणों से युक्त है और न ही असद् प्रवृत्तियों से । उनमें मानवोचित अच्छाइयां और बुराइयां दोनों विद्यमान हैं । इस तरह के पात्रों की चरित्रगत संगति दर्शन और मनोविज्ञान में भी हो जाती है, जिनके अनुसार मनुष्य में सदसद् प्रवृत्तियां जन्म से ही मौजूद रहती हैं धर्मशास्त्रों में भी कहा गया है **जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात्द्विज उच्यते । वेदाभ्यासे**

भवेद् विप्रो ब्रह्म जानन्ति ब्राह्मणः ।। राही जी के उपन्यासों में अधिकांश पात्र इसी प्रकार के हैं ।

10. पारिवारिक संबंधों के आधार पर

सभी सामाजिक संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था परिवार ही है । सृष्टि की आदि नारी ने जब आदि पुरुष से संपर्क स्थापित किया होगा तो दोनों का पारस्परिक सान्निध्य, विश्वास, पूर्य-पूरक संबंध परिवार के रूप में प्रतिफलित हुआ । जीवन का आनंद और मनुष्य द्वारा किए जाने वाले कार्यों में रुचि का कारण एक सीमा तक परिवार ही है । परिवार; जहां व्यक्ति अपनत्व और ममत्व पाता है और देता भी है; जहां उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसकी किसी को आवश्यकता है, वह किसी के लिए है और कोई उसके लिए है । व्यक्ति और परिवार का संबंध वाणी और अर्थ के समान है । वाणी और अर्थ का गठजोड़ शंकर और पार्वती के समान रहता है; जैसा इस प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है **वागार्थामिव संपृक्तौ वागार्थ प्रतिपत्तये । जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।**

अतः मानव जीवन के किसी भी पक्ष का अध्ययन और विवेचन करते समय उसके पारिवारिक रूप को देखना-समझना भी अत्यंत आवश्यक है । पारिवारिक संबंधों के अंतर्गत मां, पिता, पति-पत्नी, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्रवधू, सास, ससुर तथा माता और पिता दोनों ओर के संबंधियों की गणना की जाती है । राही जी के उपन्यासों में जिन-जिन पारिवारिक रूपों का चित्रण मिलता है, वे इस प्रकार हैं

क. पिता के रूप में चित्रित पात्र

फुन्नन मियां, हम्माद मियां, सुलेमान चा, बलरमवा (आधा गॉव); नादिर जौनपुरी (हिम्मत जौनपुरी); भृगुनारायण शुक्ला, सैयद मुरतुज़ा हुसैन (टोपी शुक्ला); हयातुल्ला अंसारी, वजीर हसन, दीनदयाल (ओस की बूँद); भोलानाथ खटक, फंदाजी पटियालवी (सीनः '75); देशराज, शिवशंकर पाण्डेय, शम्सू मियां, बाबूराम (कटरा बी आर्जू); अब्बास, रेवती श्रीवास्तव, विष्णु मेहरोत्रा (असन्तोष के दिन) ।

ख. मां के रूप में चित्रित पात्र

कुलसुम, झंगटिया बो, विधवा ब्राह्मणी, सैयदा (आधा गॉव); इमाम बॉदी, सुक्कन बी (हिम्मत जौनपुरी); रामदुलारी, सकीना, सुभद्रा देवी (टोपी शुक्ला); हाजरा, आबेदा, बुतुल (ओस की बूँद); राधिका (सीनः '75); बिल्लो, महनाज, रामदयी, आलमआरा बेगम (कटरा बी आर्जू) तथा सैयदा, कांता मेहरोत्रा (असन्तोष के दिन) आदि ।

ग. पति के रूप में चित्रित पात्र

फुन्नन मियां, सुलेमान चा, हम्माद मियां, फुस्सू, मिगदाद, समीउद्दीन (आधा गॉव); नादिर जौनपुरी (हिम्मत जौनपुरी); इफ्फन, भृगुनारायण, सैयद मुरतुज़ा हुसैन (टोपी शुक्ला); वजीर हसन, ठा0 शिवनारायण सिंह, अली बाकर (ओस की बूँद); भोलानाथ, मि0 मिढ़ा, मि0 डिक्रूज, फंदाजी पटियालवी (सीनः '75); देशराज, जोखन मियां, अशफाकुल्ला खां (कटरा बी आर्जू) तथा अब्बास (असन्तोष के दिन) आदि ।

घ. भाई के रूप में चित्रित पात्र

मासूम, मूनिस, मुमताज (आधा गॉव); बर्क़ जौनपुरी (हिम्मत जौनपुरी); टोपी, डब्बू, गुड्डू, भैरव, मुन्नी (टोपी शुक्ला); रफ्फन (दिल एक सादा काग़ज़); वसीम (सीनः '75); मुजतफा, वाहिद (असन्तोष के दिन) आदि ।

च. बहिन के रूप में चित्रित पात्र

उम्मुल, हवीबा, सैफुनिया (आधा गॉव); नुजहत, सकीना (टोपी शुक्ला); बुतुल, शमसुन्निसा, शहरनाज (ओस की बूँद); जन्नत (दिल एक सादा काग़ज़); महनाज, फत्तो, उम्मन (कटरा बी आर्जू); तसनीम, तहसीन, संगीता (असन्तोष के दिन) इत्यादि

छ. पुत्रवधू के रूप में चित्रित पात्र

सैफुनिया, सैयदा (आधा गॉव); इमाम बॉदी, सुक्कन बी (हिम्मत जौनपुरी); रामदुलारी (टोपी शुक्ला); आबेदा (ओस की बूँद) तथा रामदयी (कटरा बी आर्जू) ।

ज. सास के रूप में चित्रित पात्र

सुक्कन बी (हिम्मत जौनपुरी); सुभद्रा देवी, रामदुलारी (टोपी शुक्ला) तथा हाजरा (ओस की बूँद) ।

उपर्युक्त पारिवारिक विवेचन से अभिप्रेत है कि राही ने पारिवारिक समस्याओं तथा स्थिति से पाठकों को अवगत कराने के लिए अपने उपन्यास साहित्य में प्रत्येक वर्ग तथा संबंध के पात्रों को यथेष्ट महत्व प्रदान किया है । भारत के परिवारों में अनेक प्रकार की समस्यायें फैली हुई हैं । उपन्यासकार ने इस स्थिति से उत्पन्न दुष्परिणामों का निराकरण करने के लिए पारिवारिक पात्रों को चित्रित कर अपने उपन्यास साहित्य को प्रामाणिक बनाया है । राही जी ने पारिवारिक संबंधों के मुख्य रिश्तों से पात्रों को चुनकर समाज के यथार्थ को रखकर प्रेम तथा सौहार्द का वातावरण स्थापित करने को आदर्श माना है ।

निष्कर्ष

राही जी के उपन्यासों का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है । उनके उपन्यासों में भिन्न-भिन्न वर्गों और विविध प्रवृत्तियों वाले पात्रों की सृष्टि हुई है । पूर्व पृष्ठों में उनके औपन्यासिक पात्रों का विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है और उसे यथासंभव वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया गया है । कथा के महत्व, लिंग, जाति, प्रवृत्ति वैशिष्ट्य, देश, काल, चरित्रगत स्वरूप, व्यवसाय एवं कार्य, अवस्था, चारित्रिक गुण तथा पारिवारिक संबंधों की दृष्टि से पात्रों की विविध कोटियां निर्धारित की गई हैं; जिससे पात्रों के अनेक आयामी व्यक्तित्वों से अवगत हुआ जाए और उपन्यासकार की दृष्टि का उन्मेष हो सके । किन्तु यह वर्गीकरण विशद होते हुए भी सर्वांग-संपूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता क्योंकि मानव जीवन की अनेकरूपता और विश्वजनीन मानव संदर्भों के वैविध्य को मात्र कतिपय वर्गों-उपवर्गों में सीमित कर देना अत्यंत दुष्कर कार्य है । कई स्थानों पर राही जी द्वारा चित्रित एक ही पात्र में अनेक भाव तथा प्रवृत्ति या गुण उपलब्ध हो जाते हैं । इस स्थिति में यह कठिनाई सामने आती है कि इस प्रकार के पात्र को किस वर्ग में रखा जाए । इस समस्या के कारण ही अनेक पात्रों को एक साथ एकाधिक वर्गों में परिगणित किया गया है ।

उपर्युक्त वर्गीकरण में अनेक विरोधाभासों अथवा मतवैभिन्य की संभावना भी हो सकती है, परंतु वर्गीकरण की ये असंगतियां वास्तव में दोष-द्योतक त्रुटियां न होकर राही जी की पात्र-परिकल्पना की सूक्ष्मता की द्योतक हैं ।

चतुर्थ अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के संवाहक पात्र

समाजिक-सांस्कृतिक चेतना

साहित्य की सृष्टि दो परस्पर सुसंबद्ध स्तरों पर होती है । एक है; विश्व प्रतीति एवं साहित्यकार के सामाजिक जीवन के ज्ञान का स्तर तथा दूसरा है; साहित्यकार के भाव-जगत, इन्द्रिय बोध और सौन्दर्य-बोध का स्तर ।

साहित्यकार सामाजिक यथार्थ या सत्य को रोचक एवं प्रभावशाली बनाकर कलात्मक ढंग से अपनी रचना में प्रस्तुत करता है । यही कारण है कि वही रचना साहित्य के रूप में मान्यता प्राप्त करती है, जो सामाजिक मान्यता प्राप्त प्रतीकों के आवरण में आवेष्टित होकर अवतरित होती है । इसलिए साहित्यकार का संसार सामाजिक भावना का संसार होता है, जिसका निर्माण एक के नही; सबके भावनात्मक संपर्क एवं जीवनानुभवों के फलस्वरूप होता है । इसमें लोक-सामान्य की भाव-भूमि प्रतिबिम्बित होती है । यों, सर्जनात्मकता संकल्प का परिणाम होती है और संकल्प समाज प्रसूत होते हैं । इसलिए सच्चा साहित्य सामाजिक जीवन से संपृक्त होता है ।

सामाजिक दृष्टि से साहित्य की सबसे बड़ी उपादेयता युगीन समाज का यथार्थपरक चित्रण है, जिसमें आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक कारणों से उत्पन्न असमानता, वर्ग-संघर्ष, नव विकसित जागीरदारी, जीवन मूल्यों का विघटन, पारिवारिक जीवन शैथिल्य, राजनैतिक उथल-पुथल, प्रेम संबंध, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन तथा सेक्स विषयक विभिन्न समस्याओं का सामान्य निरूपण उपलब्ध है ।

समाज में घटित कोई भी घटना उपन्यास या साहित्य का वर्ण्य विषय बने बिना नहीं रह सकती । साहित्य के अंतर्गत समाज के प्रत्येक पक्ष के दर्शन होते हैं । इसीलिए अधिकांश विद्वानों द्वारा साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है । साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं; परस्पर सुसंबद्ध हैं ।

डॉ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास साहित्य में जिस समाज का चित्रण किया है, वह स्वतंत्रता पूर्व से लेकर 20वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक फैला है । यह समाज भारत विभाजन की विभीषिका भी सहता है और इसे आधुनिक युग की अंधी में भी सम्मिलित होना पड़ता है । ग्राम्य एवं शहरी दोनों प्रकार के समाज का वर्णन राही जी ने अपने औपन्यासिक साहित्य में अपने परिकल्पित पात्रों के माध्यम से किया है । राही जी समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक बल देते हैं । वे उस व्यवस्था को नकारते हैं, जिसमें व्यक्ति का अपना कोई निजी अस्तित्व न हो और वह अपनी इच्छानुसार कोई कार्य न कर सके ।

मानव समाज किसी न किसी संस्कृति का संवाहक होता है । 'संस्कृति' शब्द संस्कृत के संस्कार और संस्क्रिया शब्द के 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत की 'डुकृञ' धातु के भाव-अर्थ में 'क्तिन' प्रत्यय करने पर बनता है । इसका शाब्दिक अर्थ साफ या परिष्कृत करना है । [103] संस्कृति शब्द का अर्थ कल्याण के हिन्दू संस्कृति विशेषांक में 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' बताया गया है । [104] नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार किसी जाति या राष्ट्र की वे सब बातें; जो उसके (मनुष्य के) मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल एवं सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक रहती हैं; संस्कृति के अंतर्गत आती हैं । [105] ज्ञान शब्द कोश में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण, सजावट व आचरणगत परंपरा को संस्कृति कहा गया है । [106]

संस्कृति संबंधी उपर्युक्त अर्थ-वैभिन्य को देखते हुए संस्कृति की परिभाषा जान लेना आवश्यक है । संस्कृति की परिभाषायें अनेक विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से दी हैं, जो आपस में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं । फिर भी इन विद्वानों की विचारधारा संस्कृति के कुछ पहलुओं को अवश्य बांध सकी है । डॉ राधाकृष्णन के अनुसार 'संस्कृति विवेक बुद्धि का; जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है ।' [107] डॉ मंगलदेव शास्त्री का कथन है 'सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि को संस्कृति समझना चाहिए ।' [108] डॉ रामधारी

---

[103] हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 801

[104] कल्याण (हिन्दू संस्कृति विशेषांक), पृ0 41

[105] नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ0 1388

[106] ज्ञान शब्द कोश, पृ0 802

[107] विश्वंभर नाथ त्रिपाठी (अनुवादक), स्वतंत्रता और संस्कृति (1955), पृ0 53

[108] डॉ मंगलदेव शास्त्री, भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), पृ0 64

सिंह दिनकर संस्कृति को जीवन का तरीका मानते हैं । उन्हीं के शब्दों में 'यह तरीका जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं ।' [109] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति को मानव की विविध साधनाओं की परिणति में निहित मानते हैं । [110]

संस्कृति के संबंध में यहां विदेशी; टायलर, मैकाइवर तथा पेज जैसे; समाजशास्त्रियों की विचारधारा को परिचयात्मक रूप से जान लेना उपयुक्त होगा । टायलर संस्कृति को जटिल संपत्ति मालते हुए उसके अंतर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा अन्य क्षमताओं को सम्मिलित बताते हैं; जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है । [111] मैकाइवर और पेज के मत से संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आनंद में पाए जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है ।

भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के; 1. धर्म, 2. दर्शन, 3. इतिहास, 4. वर्ण तथा 5. रीति-रिवाज; पांच अवयव हैं । [112] बाबू गुलाबराय जी धर्म, दर्शन, लोकवार्ता, राजनीति, साहित्य, संगीत तथा कला को संस्कृति के मुख्य अंग मानते हैं [113] सामान्यतः किसी भी समाज या राष्ट्र की संस्कृति इतिहास, धर्म, दर्शन और कलात्मक क्रिया-कलापों में झलकती हुई दीख पड़ती है ।

क्योंकि संस्कृति का भोक्ता समाज ही होता है । अतः यहां डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के पात्रों के संदर्भ में उनकी समाज और संस्कृति की समन्वित संचेतना का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत किया जाता है

1. धार्मिक चेतना

---

[109] डॉ रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 653

[110] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल (निबंध संग्रह), पृ0 64

[111] E.B. Tyler, Premetive Culture, P. 1. "Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, costume and other capabilities aquired by man as member of society."

[112] कल्याण (हिन्दू संस्कृति विशेषांक), पृ0 75

[113] बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा (आत्म निवेदन), पृ0 1

'धारतये इति धर्मः' अर्थात् जिसे हम धारण करते हैं; वह धर्म है । 'धारणाद्धर्मः' के अनुसार धर्म एक धारणा है; विश्वास और आस्था का नाम है, जो हमें कर्तव्य मार्ग का बोध कराके सत्यान्वेषण एवं ईश्वर के निकट पहुंचाने का माध्यम बनता है ।

सनातन काल से भारतीय संस्कृति एवं समाजं का मूलाधार धर्म रहा है । डॉ हेमेन्द्र कुमार पानेरी लिखते हैं 'भारतीय संस्कृति से धर्म का प्रगाढ़ संबंध है । सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का मूलाधार भी धर्म ही रहा है । परंपरा में धर्म को जीवन से पृथक नहीं देखा गया । भारतीय जीवन की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धर्म के प्रति आस्था अपने आप में एक विशेषता रही है ।' [114]

धर्म आदि काल से ही मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा संबल रहा है । समाज के अनेक कुत्सित कार्यों; अमानवीय वृत्तियों को नियंत्रित करने का कार्य धर्म द्वारा ही संपादित होता रहा है । व्यक्ति द्वारा किसी न किसी रूप में अदृश्य ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को मान्यता प्राप्त होती रही है । आधुनिक युग में भौतिकतापूर्ण जीवन जीने वालों में भी धर्म के प्रति निष्ठा का भाव सर्वत्र देखा जाता है । जब व्यक्ति निराशा, कुंठा, अनिश्चय व अत्याचार से ऊब जाता है; त बवह विश्वास, शांति एवं प्रेम पाने के लिए धर्म और ईश्वर का आश्रय खोजता है ।

दुर्भाग्यवश, आज धर्म को आधार बनाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मानवीय भावनाओं का शोषण किया जाने लगा है । भारत विभाजन जैसी घटना के मूल में धर्म ही रहा, जिसकी सांप्रदायिक अग्नि में अनेक निर्दोष व्यक्ति स्वाहा हो गए । भारतीय संस्कृति की विचारमुद्रा सहिष्णुता और सद्भाव को महत्व देते हुए कट्टरता या घृणा को अस्वीकारने की रही है । धर्म, संप्रदाय आदि के नाम पर किसी मानवता विरोधी कृत्य को भारतीय मनीषियों ने समर्थन नहीं दिया है ।

डॉ राही मासूम रज़ा की दृष्टि धर्म के उपर्युक्त प्रगतिशील स्वरूप को मान्यता देने वाल रही है । उनके सभी उपन्यास इस चेतना से ओत-प्रोत हैं । कुछ समय पूर्व गांव की संस्कृति में त्योहार और उत्सव भिन्न संप्रदाय के लोगों को निकट लाने और भाईचारे के निमित्त थे । 'आधा गॉव' में मोहर्रम मात्र मुसलमानों का पर्व नहीं है । मोहर्रम के ताजिया के साथ अहीरों का लट्ठबंद गिरोह चलता था, जो उलतियां

[114] डॉ हेमेन्द्र पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ0 265

गिराकर रास्ता बनाया करता था । एक विधवा ब्राह्मणी की उलती को बिना गिराए बड़ा ताजिया आगे बढ़ जाता है, तो वह आने वाली मुसीबत के भय से कॉप उठती है ''जरूर कोई मुसीबत आने वाली है; नही ंतो भला ऐसा हो सकता था कि बड़ा ताजिया उसकी उलती गिराए बिना चला जाता ।'' [115]

हिन्दुओं के अनेक देवी-देवता मुसलमानों में भी प्रचलित हो गए थे । 'टोपी शुक्ला' में इफ्फन की दादी नमाज़-रोज़े की पाबंद थी । जब इकलौते बेटे को चेचक तो वे चारपाई के पास एक टांग पर खड़ी होकर हिन्दू स्त्रियों के से विश्वास से कहती हैं ''माता मेरे बच्चे को माफ कर दो ।'' [116] राही के उपन्यासों में मुसलमानों के पीर-फकीर हिन्दुओं के श्रद्धास्पद थे तो इमाम साहब से हिन्दू स्त्रियां भी मनौती मानती थीं । 'ओस की बूँद' में वजीर हसन कुएं से बड़ी कठिनाई से शंख निकालकर सुबह की नमाज़ अता करने के बाद आदरपूर्वक शंख बजाता है ।

लेकिन भारत में एक ओर असांप्रदायिक आस्तिकता का यह भाव है तो दूसरी तरफ सांप्रदायिक कट्टरता का भयावह विष भी फैला हुआ है । यहां कट्टर लोगों के अपने-अपने भगवान या खुदा निश्चित हो गए । ऐसे लोगों के कारण धर्म और धार्मिक पर्व मेल-जोल के बजाय द्वेष और हिंसा के आलंबन बन गए । इसीलिए 'ओस की बूँद' में बीवी के कटरे में बने मंदिर में उसका शंख फेंक दिए जाने से उपजे सांप्रदायिक दंगे को मुसलमान अपने पूर्वजों को वास्ता देते हैं तो दूसरी तरफ वज़ीर हसन के लंगोटिया यार दीनदयाल को भी अपने मित्र और वतन से बढ़कर धर्म दिखाई देने लगता है ।

सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति मानवीय मूल्य एवं धर्मनिरपेक्षता के विपरीत पड़ती है । सांप्रदायिक शक्तियां अपने निहित स्वार्थों के लिए जन-साधारण के आपसी सद्भाव, मेल-जोल एवं सहकार भाव को दांव पर लगा देती हैं । 'आधा गॉव' में मुस्लिम सांप्रदायिकता हिन्दुओं की ''सिंसियारिटी को मशकूक'' [117] मानती है । हिन्दू सांप्रदायिकता के पास सबसे बड़ा उदाहरण औरंगज़ेब का है, जिसने बहुत से मंदिरों को ढहा दिया था । जिसके लिए राही ने सवाल पूछा है कि यदि एक औरंगज़ेब गुनहगार तो क्या सारी मुस्लिम बिरादरी इसके लिए दोषी है? 'आधा गॉव' का निरक्षर छिकुरिया इस सब पर विश्वास नहीं कर पाता क्योंकि गंगौली में तो मुसलमान जमींदार

[115] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 66
[116] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 35
[117] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 155

न केवल दशहरे का चंदा देते थे, बल्कि मठ के बाबा को भी जमींदारों ने कुछ बीघों की माफ़ी दे रखी थी । वह मास्टर साहब की बात नही मानता । रहा औरंगज़ब, वह जरूर कोई बदमाश होगा ।

इस समस्या को राही के उपन्यासों में कुछ इस तरह उभारा गया है कि यदि ग़लती कोलकाता के मुसलमानों ने की है तो उसका दण्ड गंगौली या अन्य जगहों के मुसलमानों को क्यों? या पूर्वजों ने गुनाह किए हैं तो आज के मुसलमान को उनकी सज़ा क्यों दी जाए? जिन मुसलमान बच्चियों ने छुटपन में उनकी गोद में पेशाब किया है, उनके साथ ज़िना(व्यभिचार) क्यों और कैसे की जाए? उन मुल्ला जी को कोई कैसे मारे, जो नमाज़ पढ़कर मस्जिद से निकलते हैं तो हिन्दू-मुसलमान सभी को फूंकते हैं । धर्म के आधार पर परस्पर लड़ने की बात राही जी के सदाशयी पात्र नहीं जानते । 'आधा गॉव' का छिकुरिया उस समूचे जनसाधारण का प्रतिनिधि है; जो धर्म एवं संप्रदाय की दीवारों को जानता है । वह जानता है कि कुछ तथाकथित पढ़े-लिखे लोग कोंच-कोंच कर लोगों को एक-दूसरे से घृणा करने के लिए तैयार करते हैं । व्यक्तियों के माध्यम से यह दो तरह के मूल्यों का जबर्दस्त संघर्ष है । एक ओर मास्टर साहब, फारुक (आधा गॉव) आदि प्रतिक्रियावादी व्यक्ति हैं जो क़ौम का वास्ता देकर स्वजातीय बंधुओं को उकसाते हैं तो दूसरी ओर सर्वपंथ समादर, राष्ट्र शक्ति और परस्पर आत्मीयता जैसे मानव मूल्यों के संवाहक छिकुरिया, फुन्नन मियां, तन्नू (आधा गॉव); वजीर हसन, वहशत अंसारी (ओस की बूँद) आदि भारतीयता के प्रतिनिधि चरित्र हैं जो आदमी-आदमी को लड़ाने वाले हर षडयंत्र के घोर विरोधी हैं ।

राही जी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति के कई अनावृत पहलुओं की ओर गई है । उन्होंने अपने साहित्य के शोध का विषय भी इसी प्रकार का रखा था । जिसमें मुसलमानों में प्रचलित कहानियों में भारतीय संस्कृति का वर्णन आया है । स्वाभाविक है कि उनके उपन्यासों में इसकी प्रतिध्वनि दिखाई देगी । दो ध्रुवांतों पर खड़ी मानी जाने वाली संस्कृति की एकता एवं समन्वय को राही के खोजपूर्ण उदाहरणों द्वारा प्रोत्साहन मिलना चाहिए । 'असन्तोष के दिन' के उस मर्सिये की वह पंक्ति उद्धरणीय है, जिसमें गाया जाता है ''फूल वह जो महेसर चढ़े'' । राही ने अपने औपन्यासिक पात्रों की धार्मिक एकता पर यह कहते हुए बल दिया है कि यहां के मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू ही थे । ज़र्रीक़लम सैयद अली अहमद जौनपुरी (असन्तोष के दिन) नाम से मुसलमान थे । इनके पुरखे मराठे और धर्म कट्टर हिन्दू था । वजीर हसन (ओस की बूँद) के पुरखों ने भी इस्लाम स्वीकार किया था ।

उपन्यासकार अपने पात्रों के माध्यम से उनके समन्वय एवं एकता को अनेक घटनाओं एवं स्थितियों द्वारा प्रस्तुत करता है । 'आधा गॉव में पड़ोस के गॉव के एक जमींदार ठाकुर जैपाल सिंह अतिवादी हिन्दुओं से बफ़ाती चा नामक कुंजड़े मुस्लिम को एक हमले में बचाते हैं । वह गॉव की समस्त मुस्लिम प्रजा को संरक्षण प्रदान करते हैं जैपाल सिंह हिन्दुओं की उत्तेजित भीड़ को ललकारते हुए कहते हैं ''बड़ बहादुर हव्वा लाग । अउर हिन्दू मरियादा के ढेर ख्याल बाए तुहरे लोगन के, कलकत्ते-लौहउर जाए के चाही ।'' [118] इसी प्रकार सैयदा (असन्तोष के दिन) हिन्दुओं को गाली देती है, पर अपने हिन्दू नौकर राममोहन से अपने परिवार को उसकी झोपड़ पट्टी से उठा लाने को कहती है । वह अपने हिन्दू मित्र गोपीनाथ की भी मौत पर रोती है । [119]

राही जी ने उज्जवल चरित्रों के पात्रों को उभारने के लिए अपने उपन्यासों में कुछ पात्रों को धार्मिक ढकोसलापन, अलगाववाद, ऊँच-नीच के भेद-भाव को मानने वाले, झूठ-फ़रेव और चोरी इत्यादि अधार्मिक-अनुचित प्रवृत्तियों से भी संपृक्त किया है राही के पात्रों की धार्मिक चेतना में बाह्याचारों की अतिशय व्याप्ति है । इनका मूल अज्ञान और अशिक्षा में है । धर्म के नाम का ढकोसलापन अधिक है । धार्मिक मठ-मंदिर बाह्याचार, व्यभिचार, जादू-टोने और जड़ता के अड्डे बन चुके हैं । राही के पात्र एक ओर अपनी कुलीनता और रक्त शुद्धता का आडंबर रचते हैं तो दूसरी ओर 'क़लमी औलादें' पैदा करते नहीं थकते । विवाह में रंडी नचवाने वालों पर ताने कसते हैं और घर हरामज़ादी संतानों से भरते रहते हैं । शिया और सैयद होने का घमण्ड करते हैं और मुसलमानों में ही सुन्नियों को हेय मानते हैं । ज़रा सी बात पर आपस में फौजदारी करते हैं; कचहरी में झूठे मुक़दमे बनाते हैं । धर्म के नाम पर साल में ढाई माह तक हंसना भी गुनाह मानते हैं, परंतु अनुसूचित जाति के एक निर्दोष व्यक्ति कोमिला को झूठे मुकदमें में फंसाकर फांसी की सज़ा दिलाते हैं ।

शियाओं की उपर्युक्त धार्मिक कट्टरता का परिहास और विडंबनाजनक स्थिति पर डॉ इन्दु प्रकाश पाण्डेय लिखते हैं वे 'एक ओर तो तेरह सौ साल पहले हुए क़त्ल का विरोध करते हैं और दूसरी ओर केवल अपनी दक्षिण पट्टी के ताजिए की शोहरत के लिए एक ब्राह्मण विधवा के जवान पुत्र का कानूनन क़त्ल करवाते हैं । चमार औरत को घर में पत्नी के रूप में रखते हैं, बच्चे पैदा करते हैं; परंतु उसके हाथ का बनाया खाना तक नहीं खाते । इस प्रकार कथावाचक ने बड़ी निर्ममता से अपने समाज की

[118] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 282-283
[119] डॉ राही मासूम रज़ा, असन्तोष के दिन, पृ0 28

झूठी एवं खोखली धार्मिकता का पर्दाफाश करते हुए उसके अंधविश्वास, अशिक्षा एवं अज्ञान को विस्तार से चित्रित किया है ।'

'आधा गॉव' में सर्वत्र शियाओं का सर्वप्रमुख एवं दुनिया का एकमात्र शोकपर्व मोहर्रम के छाए रहने पर आलोचक सुरेन्द्रनाथ तिवारी कहते हैं ''आधा गॉव' पढ़ने के बाद याद रहता है मोहर्रम; जो कामू के 'प्लेग' की तरह व्याप्त है ।' श्री तिवारी ने इस उपन्यास में मोहर्रम की कथा की प्रमुखता देखते हुए मोहर्रम को उपन्यास का नायक माना है । [120] आधा गॉव की कुछ इसी प्रकार की कमियों की ओर डॉ इन्दु प्रकाश पाण्डेय ने संकेत किया है । उन्होंने लिखा है 'इस मोहर्रम की भीड़ में कथावाचक ने लगभग 100 पात्र गंगौली की दक्षिण और उत्तर पट्टी में एकत्र कर दिए हैं, जो या तो साधारण नित्य-प्रति की घरेलू समस्याओं में व्यस्त हैं या मोहर्रम की बैठकों में मातम कर रहे होते हैं । कुछ पात्र तो केवल नाममात्र हैं, जिनके अस्तित्व का कोई भी रूप प्रकट नहीं होता है और कुछ जो मोटी रेखाओं में व्यक्त भी हुए हैं, वे कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करके भीड़ में खो जाते हैं ं याहं तक कि प्रारंभिक कथा का वाचाल एवं उत्साही कथावाचक मासूम भी ग़ायब हो जाता है । लगभग एक ही प्रकार के विचार वाले पात्रों की भीड़ में से 'नौहा' के स्वरों में रोने-सिसकने की आर्द्रता तो बहती दिखाई देती है लेकिन स्वतंत्र पात्रों के रूप में भीड़ से ऊपर उठने वाले पात्रों की संख्या स्वल्प ही है ।' [121] यहां कहना होगा कि आंचलिक वर्णनों में पात्रों की ऐसी भीड़ का होना स्वाभाविक हो जाता है । फिर, उपन्यासों में कुछ पात्रों का तृण-पत्रवत् अस्तित्व भी रहा करता है, जो उपन्यास में कथा का मात्र उपकरण बने होते हैं । मोहर्रम वर्णन की अतिशयता के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि राही को धार्मिकता के बाह्याडंबरों और ढकोसलों को दिखाना था जिससे उन्हें शिया मुसलमानों के इस सर्वोच्च पर्व को माध्यम बनाया । इससे उनका विद्रोही और बेबाक तेवर मुखरित हुआ कि उन्होंने अपने ही समाज और धर्म और उसके लोगों के अतिचारों का बड़ी निर्ममता से पोस्टमार्टम किया ।

राही की धार्मिक सजगता एवं तेवर मे ढली सर्वधर्म ग्राह्यता उनके घनिष्ठ मित्र डॉ धर्मवीर भारती द्वारा दिए गए इस प्रसंग में देखी जा सकती है । जब राही से 'दुनिया का सबसे ज्यादा आदरणीय महाकाव्य' महाभारत के बारे में यह पूछा गया कि

---

[120] संचेतना (बसंतांक 1968) , पृ0 55 । सुरेन्द्र नाथ तिवारी का लेख 'समीक्षात्मक कोण पर आधा गॉव

[121] डॉ इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, पृ0 247

उन्हें मुसलमान होने के बावजूद महाभारत लिखना कैसा लग रहा है । उनका उत्तर था कि जैसे मुसलमान होने की वजह से हिन्दुस्तानी विरासत पर मेरा कोई हक़ ही न रह गया हो । जैसे कि मैं भी कोई मंदिर गिराकर उसकी जगह पर बनाई हुई कोई मस्जिद हूं । इन बातों से मुझे दुख पहुंचा है । [122]

राही जी की सजग एवं प्रगतिशील धार्मिक चेतना के फलस्वरूप 'आधा गॉव' में पाकिस्तान निर्माण के प्रस्ताव को गंगौली के कुछ शिया मुसलमान पात्रों द्वारा विरोध किया जाता है । राही के अनुसार शियाओं के पूर्वज इमाम हुसैन ने स्वयं हिन्दुस्तान जाने की इच्छा प्रकट की थी । हुसैन के सच्चे अनुयायी होने के नाते धार्मिक दृष्टि से भी शिया मुसलमान पात्र हिन्दुस्तान विरोधी कोई प्रस्ताव स्वीकृत नहीं कर सकते । हिन्दुस्तान का पक्ष लेती हुई सितारा शियाओं की ओर से कहती है ''और यह मुआ जिन्ना कैसा शिया है कि हिन्दुस्तान के खिलाफ है ।'' [123] 'आधा गॉव' के ऐसे कथ्य को दृष्टिगत रखते हुए डॉ जगदीश नारायण श्रीवास्तव ने राही जी की इस बहुचर्चित कृति को यशपाल के 'झूठा सच' के बाद हिन्दुस्तान के सांप्रदायिक विभाजन की कांटेदार खेती को बेबाक ढंग से रखता हुआ माना है । [124]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राही जी धर्म के बाह्य आडंबरों तथा उनसे उत्पन्न सामाजिक कुरीतियों तथा ऊॅच-नीच के प्रबल विरोधी थे । राही ने विभिन्न सामाजिक वर्गों की सांस्कृतिक रुचि तथा धार्मिक चेतनागत दृष्टिकोण के अंतर को पहचान कर साहित्य में अपने पात्रों का परिकल्पन किया है ।

2. कला-साहित्य विषयक चेतना

कला या साहित्य तत्वतः परिवेश के प्रति अंतस्संज्ञा की प्रतिक्रिया होती है । बाह्य आधुनिकता के प्रति विचारशील व्यक्ति जैसा आचरण करता है, वही उस तात्विक आधुनिकता को जन्म देता है; जो विभिन्न कलाओं तथा साहित्य के माध्यम से प्रतिफलित होती है । विचारशील मनुष्य जो कुछ विचार करता है, उसी की अभिव्यक्ति कहने अथवा लिखने के माध्यम से होती है । यह अभिव्यक्ति मात्र उसके अपने लिए नहीं होती । यह वैयक्तिकता सामाजिकता में परिणत हो जाती है । गोस्वामी तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियां कलाकार की इसी स्थिति को स्पष्ट करती हैं

[122] डॉ धर्मवीर भारती, कुछ चेहरे : कुछ चिंतन, पृ0 185
[123] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 53
[124] डॉ जगदीश नारायण श्रीवास्तव, उपन्यास की शर्त, पृ0 252

मनि मानिक मुकुता छबि देखी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकाई ।।
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ।।

किसी मनुष्य पर उसके आस-पास का वातावरण, परिस्थितियों, रहन-सहन, शिक्षा तथा सामाजिक आचार-व्यवहार का प्रभाव अवश्यमेव पड़ता हैं । अतः उसके द्वारा व्यक्त कला या साहित्य में भी सामाजिक समस्याओं, भावनाओं और विचारों का अंकन होता है । डॉ राही मासूम रज़ा साहित्य क्षेत्र के साथ-साथ फिल्म कला से भी जुड़े थे । फिल्म कला को वे समाज का माध्यम मानते थे । फिल्म एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जो अपने देश की हर पीढ़ी को प्रभावित करता है । इसी कारण वे फिल्मों को साहित्यिक पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में थे । इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । उनका मानना था 'नाक-मुंह सिकोड़ने से या सिनेमा को अछूत मानने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता । आज सिनेमा छपी हुई पुस्तकों और पत्रिकाओं से कई गुना शक्तिशाली है । इसलिए विश्वविद्यालयों को गंभीर रूप से इस ओर सोचना चाहिए ि कवे अब सिनेमा को अपने पाठ्यक्रम में शामिल करें । पत्रकारिता और स्पोर्ट्स भी तो कभी पाठ्यक्रम के हिस्से नहीं थे, लेकिन वे भी आज पाठ्यक्रम के हिस्से हैं ।' [125] राही के इस सुझाव की गंभीरता को देखते हुए हमें विश्वास है कि देर-सबेर यह अमल में आ जाएगा ।

राही जी कला और साहित्य को जीवन की उपयोगिता से जोड़कर देखते थे । कला और साहित्य व्यक्ति में परिस्थितियों से जूझने की दिशा और शक्ति प्रदान करते हैं । इनसे व्यक्ति में अंतर्निहित क्षमताओं का विकास होता है, जिनसे वह अपनी सभी समस्याओं को सुलझाने में सहायता पा सकता है ।

किन्तु राही साहित्य के वर्तमान स्वरूप से विक्षुब्ध थे । उनके अनुसार साहित्य अब सच नहीं बोलता । साहित्य के व्यक्तिवादी स्वर से वे चिन्तित दिखाई पड़ते हैं । वे अपने 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में इस प्रवृत्ति की पड़ताल व्यंग्यात्मक शैली में करते हुए लिखते हैं ''मास्टर बद्रुल हसन नायाब मछलीशहरी लहक-लहक कर अपनी नज़्म सुनाने लगे -

[125] परिवेश, अंक 12, पृ0 7-8 । डॉ कुँवरपाल सिंह का संस्मरण 'कितनी यादों का ठहरा हुआ कारवां

सारी रौनक ताज़गी, बस इन्दिरा गांधी की है
देश में तो रोशनी बस इन्दिरा गांधी की है ।
लैलिए-मुसतक़बिले-हिन्दोस्तां उसकी कनीज़,
गेसुओं की बरहमी बस इन्दिरा गांधी की है...''

यह कविता सुनकर वहां किसी पात्र के मुंह से राही ने कहलवाया है ''ऐ मास्टर, ई नजम है कि आकाशवाणी का समाचार ।'' [126] यहां मास्टर का यह गीत; गीत न होकर इन्दिरा गांधी की चारण प्रशंसा है । यह प्रवृत्ति साहित्य के प्रतिकूल है । इसी प्रकार 'दिल एक सादा काग़ज़' में कालीचरण नामक कवि पात्र नेता मक्खनलाल का चाटुकार रहता है । यह कवि अपने को आधुनिक चेतना का कवि मानता था किन्तु आधुनिक चेतना का वह तात्पर्य भी नहीं जानता था । इस प्रकार साहित्यकार और साहित्य के अधोपतन की ओर राही अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र संकेत करते दिखाई पड़ते हैं ।

साहित्य को आकर्षक एवं बिकाऊ बनाने के लिए आज के तथाकथित रचनाकार किस हद तक चले जाते हैं । इसका निदर्शन 'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यास में ही हुआ है, जिसमें माला नाम की एक साहित्यकार पात्र अपनी रचना का शीर्षक ही 'सेक्स' रख देती है । माला के बारे में राही लिखते हैं ''यह माला लेनिन और माओत्से-तुंग की बातें यूं किया करती थी कि सुनने वाले को लगता कि शायद मार्क्स ने भी इसी माला से मार्क्सिज्म सीखी होगी ।'' [127] यहां यह ध्यातव्य है कि साहित्यकार के इन पतित स्तरों को चित्रित करने के लिए राही ने मिसालें भी उसी विचारधारा से दी हैं, जिसके वे अनुयायी थे ।

साहित्यकार विनिमय की वस्तु नहीं होता, वह तो समाज की अमूल्य धरोहर होता है । किन्तु जब वह स्वयं को बेचने पर उतारू हो जाए तो समस्या आत्मघाती हो जाती है । राही अपने 'सीनः '75' उपन्यास में लिखते हैं ''कृष्णचन्द्र, बेदी, इसमत आपा ने तो लेखकों की नाक कटवा दी । लानत है शैलेन्द्र, मजरूह और साहिर परें 'लाल लाल गाल'...वाह ! क्या शायरी है? यह लोग बिक गए हैं काले रुपये के हाथ । अपना व्यक्तित्व और आदर्श खो दिया है इन लोगों ने ।'' [128]

---

[126] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 107-108
[127] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 143
[128] डॉ राही मासूम रज़ा, सीनः '75, पृ0 16-17

साहित्य में कथ्य के साथ-साथ उसके शिल्प और व्याकरण की भी समझ नहीं रह गई है । विद्वान प्रोफेसर राष्ट्रीय एकता का भी सही अर्थ नहीं ग्रहण कर पाते । राही 'असन्तोष के दिन' में इस प्रवृत्ति की छानबीन करते हैं । वे डॉ इशरत फारुकी नामक पात्र के माध्यम से लिखते हैं ''अब कहने को तो यह डॉ इशरत फारुकी साहित्य के आचार्य हैं, पर नेशनल इण्टिग्रेशन का अर्थ हिन्दू-मुस्लिम एकता समझते हैं राष्ट्रीय समाकलन को धर्म से क्या लेना देना?'' [129] यहां पर प्रोफेसर द्वारा सांप्रदायिक चश्मे से ही किसी रचना को देखे जाने की ओर संकेत किया गया है । राही के साहित्य में उनके पात्र हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द को जीते हुए दिखते हैं । उनके 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास में हिम्मत के परदादा श्री दिलगीर जौनपुरी मसनवियां लिखते थे । मसनवी फारसी साहित्य की शैली का एक भेद होता है । दिलगीर की मसनवी का नाम था 'मसनवी दरबयाने इश्के रामो-सीता ।' इस प्रकार से एक मुस्लिम द्वारा हिन्दू देवी-देवताओं का गुणगान संस्कृति के अभिन्नत्व का परिचायक है और राही की दृष्टि में सच्ची भारतीयता का तक़ाजा भी यही है ।

राही लिखते हैं ''इसी हिन्दुस्तान में यह भी होता था कि एक ही आदमी मस्जिद भी बनवाता था और 'मसनवी दरबयाने इश्के रामो-सीता' भी लिखता था । राम और मस्जिद का वैर बहुत पुराना नहीं है, यदि इनमें झगड़ा होता तो रसखान ने मक्के के गड़रिये की जगह ब्रज के गड़रिये को अपने काव्य की आत्मा क्यों बनाया होता और सूफियों ने कृष्ण की काली कमली अपने मुहम्मद को उढ़ाकर उन्हें काली कमली वाला क्यों कहा होता? मोहम्मद की कमली तो स्याह और सफेद धारियों वाली थी - जमइयतुल ओलमाए-हिन्द की तरह ।'' [130] इस प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट है कि राही की भारतीय संस्कृति में गहरी पैठ है और वे मानवीय रिश्तों की प्रगाढ़ता, जटिलता और तनाव को इतने सूक्ष्म तथा व्यापक रूप में समझते हैं ।

राही जी ने अपने औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से संकेत किया है कि साहित्यकारों की आर्थिक दशा कितनी दयनीय है । 'सीनः '75' उपन्यास का अली अमजद फिल्मी कहानी लिखने के उद्देश्य से मुंबई जाता है । किन्तु मुंबई की भौतिक परिस्थितियां; राही के अनुसार जहां किराए मात्र पर मकान मिलना स्वर्ग मिलने के बराबर है; उसे भिखमंगों के लिए संवाद लिखने को बाध्य कर देती हैं । अली अमजद

[129] डॉ राही मासूम रज़ा, असन्तोष के दिन, पृ0 75
[130] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 10

का एक अन्य मित्र वी.डी(वीरेन्द्र कुमार) भिक्षावृत्ति को एक व्यापारिक कला बनाना चाहता है, जिससे वह अपनी अच्छी आय अर्जित कर सके । इस काम के लिए वह कुछ संवाद लेखक, कुछ मेक-अप करने वाले और एकाध निर्देशक रखना चाहता है, जो फकीरों को ठीक तरह से भीख मांगना सिखा सके । [131] इन प्रसंगों से स्पष्ट है कि कला और साहित्य का कितना घृणित दुरुपयोग किया जा सकता है तथा ऐसा करने के लिए आज के कलासाधक किस तरह विवश हैं ।

अंत में कहा जा सकता है कि कला और साहित्य की महत्ता समाज और संस्कृति के क्षेत्र में निर्विवाद और सर्वमान्य है । राही जी ने समाज और संस्कृति के इन प्रमुख तत्वों द्वारा समाजवादी प्रगतिशील विचारधारा का यथार्थ प्रस्तुतीकरण किया है उनके कला और साहित्य विषयक पात्रों के नियोजन से स्पष्ट है कि कला और साहित्य ही आधुनिक गतिविधियों की केन्द्र हैं ।

3. पौराणिक एवं ऐतिहासिक चेतना

राही काल और इतिहास संबंधी लौकिक धारणा के अनुसार ही ऐतिहासिक समय की महत्ता को शाश्वत काल की सत्ता के समक्ष खड़ा कर देते हैं । 'आधा गॉव' के प्रथम अध्याय में ही राही ग़ाज़ीपुर शहर के परिचय में एक रूपक देते हुए कहते हैं ''गंगा इस नगर के सिर पर और गालों पर हाथ फेरती रहती है, जैसे कोई मां अपने बीमार बच्चे को प्यार कर रही हो, परंतु जब इस प्यार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो गंगा बिलख-बिलखकर रोने लगती है और यह नगर उसके आंसुओं में डूब जाता है । लोग कहते हैं कि बाढ़ आ गई । मुसलमान अज़ान देने लगते हैं । हिन्दू गंगा पर चढ़ावे चढ़ाने लगते हैं कि रूठी हुई गंगा मैया मान जाय । अपने प्यार की इस हतक पर गंगा झल्ला जाती है और क़िले की दीवार से अपना सिर टकराने लगती है और उसके उजले-सफ़ेद बाल उलझकर दूर-दूर तक फैल जाते हैं । हम उन्हें झाग कहते हैं । गंगा जब यह देखती है कि उसके दुख को कोई नही समझता, तो वह अपने आंसू पोंछ डालती है; तब हम यह कहते हैं कि पानी उतर गया । मुसलमान कहते हैं कि अज़ान का वार कभी ख़ाली नहीं जाता, हिंदू कहते हैं कि गंगा ने उनकी भेंट स्वीकार कर ली । और कोई यह नहीं कहता कि मां के आंसुओं ने ज़मीन को और भी उपजाऊ बना दिया है..... यह शहर इतिहास से बेखबर है । इसे इतनी फ़ुरसत नहीं मिलती कि कभी बरगद की ठंडी छांव में बैठकर

[131] डॉ राही मासूम रज़ा, सीनः '75, पृ0 107

अपने इतिहास के विषय में सोचे।'' [132] इसमें लेखक काल के शाश्वत पक्ष को रामायण से आगे तक फैलाकर दिखाता है, जिसकी पृष्ठभूमि में इतिहास केवल कुछ संदर्भ बदल देता है । इतिहास की शाश्वत प्रतीक गंगा से राही अपने लगाव को अपनी लगभग प्रत्येक कृति में उद्घोषित करते हैं । वे कहते हैं

''मेरा फ़न तो नीला पड़ गया यारो
मैं नीला पड़ गया यारो
मुझे ले जाके गंगा की गोदी में सुला देना ।'' [133]

''लेकिन मेरी नस-नस में गंगा का पानी दौड़ रहा है ।'' [134]

राही इतिहास पर दृष्टि डालते हुए अपने गॉव गंगौली के नाम-विश्लेषण को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं ''मसऊद ग़ाज़ी के एक लड़के, नूरुद्दीन शहीद ने (यह शहीद कैसे और क्यों हुए, यह मुझे नहीं मालूम और शायद किसी को नहीं मालूम) दो नदियॉ पार करके, ग़ाज़ीपुर से कोई बारह-चौदह मील दूर , गंगौली को फ़तह किया । कहते हैं कि इस गॉव के राजा का नाम गंग था और उसी के नाम पर इस गॉव का नाम गंगौली पड़ा । लेकिन इस सैयद-ख़ानदान के पॉव जमने के बाद भी इस गॉव का नाम नूरपुर या नूरुद्दीन नगर नहीं हुआ'' [135]

इससे स्पष्ट है कि राही उन ऐतिहासिक घटनाओं को महत्व नहीं देना चाहते, जिन्होंने बाह्य स्थितियों में कुछ परिवर्तन किए हैं, परंतु वे उस जीवन को उभारना चाहते हैं, जो इन ऊपरी परिस्थितियों के बदल जाने पर भी परंपरा, सभ्यता, गीता और कुरान की तरह निस्सीम और अनंत हो और जो गंगा और मोहर्रम की तरह निरंतर प्रवहमान हो । राही जी बड़े परिश्रम से समय के इस प्राकृतिक प्रवाह को प्रस्तुत करना चाहते हैं, जिसे इतिहास की कोई भी घटना अपने सॉचे में नहीं बांध सकती । जीवन मोहर्रम के आंसुओं की तरह अबाध गति से बहता चला जाता है ''रोना त हम शीअन की तक़दीर है ।'' [136] समय के प्रति यह धारणा मात्र शियाओं

[132] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 3
[133] डॉ राही मासूम रज़ा, सीनः '75, वसीयत से
[134] डॉ राही मासूम रज़ा, मैं एक फेरी वाला, पृ0 35
[135] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 4
[136] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 45

की ही विशेषता नहीं है, बल्कि यह भारत की लोकमान्य विशेषता है, जो क्रूरतम ऐतिहासिक स्थिति को भाग्य का खेल मानकर संतोष कर लेती है ।

राही ने अपने उपन्यासों में दिखाया है कि शिया मुसलमान तो प्रारंभ से ही (13 शतियों से) अपने भाग्य की विडंबना पर रोते चले आ रहे हैं । निस्सहाय एवं निरीह और भाग्य पर समर्पित शिया आज भी कर्बला के हत्याकाण्ड और इमाम हुसैन और हसन के निधन पर साल में ढाई माह तक शोक मनाते हैं, रोते हैं और निराशा में छाती कूटते-कूटते बेहोश होने में जीवन की सार्थकता खोजते हैं । यह मोहर्रम; जो इनके जीवन का शाश्वत काल हो गया है; किसी भी अन्य घटना के द्वारा मिटाया नहीं जा सकता और न शिया मुसलमानों में वह इच्छाशिक्ति रह गई है, जिससे वे इसे बदल सकें । वे अपरिवर्तनशील प्रारब्ध के शाश्वत प्रवाह में बह रहे हैं, जिसकी दिशा का उन्हें ज्ञान नहीं । यह प्रारब्ध उनकी संपूर्ण व्यवस्था है, जिसके वे एक अनिवार्य अवयव हैं । इस प्रकार राही जी ने बड़ी कुशलता से शिया पात्रों की परिकल्पना से उनकी ऐतिहासिक चेतना के माध्यम से उनके दृष्टिकोण और जीवन-दर्शन को रूपायित किया है ।

राही अपने उपन्यासों में इतिहास से संदर्भ लेकर अपने पात्रों द्वारा यत्र-तत्र टिप्पणियां करते हैं । किन्तु किसी ऐतिहासिक सूचना को प्रत्यक्ष एवं आरोपित करते हुए राही अपने उपन्यासों में नही दिखाई देते । उनके उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाएं उसमें छोटी-मोटी उठने-बैठने वाली लहरों के समान हैं, जो मात्र जीवन के स्पंदन को प्रकट करती हैं । 'टोपी शुक्ला' का एक पात्र कहता है ''पता है, अकबर के खिलाफ महाराणा प्रताप के साथ कितने मुसलमान थे?'' [137] इसी उपन्यास में टोपी कहता है ''मैं हिंदू हूं....क्या यह शेरवानी मुसलमान है? यह तो कनिष्क के साथ आई थी । यह पाज़ामा भी कनिष्क ही का है ।'' [138] टोपी जायसी को भी हिन्दू मानता है क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं की ही कहानियां लिखीं । ग़ालिब और मीर को भी वह हिन्दू मानता है, क्योंकि ग़ालिब बुतों की पूजा करते थे और मीर तिलक लगाते थे ।

ऐतिहासिकता से संदर्भ लेते हुए भयावह सच्चाई को सम्मुख रखने के लिए राही वर्तमान से उसको संबद्ध कर देते हैं ''यह टोपी गाथाकाल ही है । यह टुच्चा युग है । छोटे लोग जन्म ले रहे हैं, सौंदर्य पर रंग-रंग की कीचड़ है । न तो वीरों की

[137] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 106
[138] वही, पृ0 101

गाथा का समय है और न श्रृंगार रस बांटने का । कोई युग कलयुग नहीं होता । परंतु टोपी युग अवश्य प्रारंभ हो गया है ।'' [139] छुआ-छूत जैसी सामाजिक समस्या पर राही पौराणिक संदर्भ ग्रहण करते हुए टोपी से कहलवाते हैं ''श्री राम तो भीलनी के जूठे बेर खा लें और आप मुझे अपने पास बैठने भी न दें कि मुसलमान हूं ।'' [140]

स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा पौराणिक संदर्भों की की जाने वाली अनुचित और छद्म व्याख्या की समस्या राही 'आधा गॉव' में उठाते हैं । उपन्यास में कोई स्वामी जी इसी प्रकार के पौराणिक संदर्भों को देकर हिन्दुओं की भावनाएं भड़काने के काम में संलग्न हैं । स्वामी जी उपन्यास में कहते है। ''तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, हे अर्जुन ! हूं तो मैं हूं और मेरे सिवाय कोई और नहीं है । आज वह मुरली मनोहर भारत के हर हिन्दू को ललकार रहा है कि उसे तथा गंगा और यमुना के पवित्र तट से इन म्लेच्छ मुसलमानों को हटा दो ।'' [141] इसी प्रकार के अनुचित एवं मिथ्या ऐतिहासिक-पौराणिक संदर्भों को देकर 'ओस की बूँद' में एक मौलवी लगे हैं । वह 'बिरदाराने-इस्लाम' की दुहाई देकर मुसलमानों की भावनाएं भुनाना चाहते हैं । कुछ कट्टरवादी मुसलमान पात्रों द्वारा अपने अवैध और घृणित कृत्यों को वैध ठहराने के लिए बिना समझे पौराणिक संदर्भों का आलंबन लिया जाता है । 'आधा गॉव' का कट्टर प्रवृत्ति का मुसलमान पात्र समीउद्दीन खां पाण्डवों की ओर संकेत करता हुआ कहता है ''लेकिन पांच भाइयों में एक बीवी से हमारा काम अब भी नहीं चल सकता, यह भी कोई कमर हुई? उनसे अच्छे तो हमीं हैं । चार भाइयों में कुल मिलाकर सात बीवियां हैं ।'' [142]

राही ने अपने उपन्यासों के कुछ सद् पात्रों द्वारा पौराणिक आदर्शों को ग्राह्य भी बनाया है । वे 'आधा गॉव' में अपने सच्चे भारतीय मुसलमानों को 'राम की खड़ाउँओं को क़दमे रसूल बनाकर चूमने वाले' कहते हैं ।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्रों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राही जी ने भारतीय संस्कृति के धवल स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए इतिहास और पुराणों का आश्रय अपने पात्रों की परिकल्पना में लिया । उन्होंने प्रागैतिहासिक काल से लेकर अंग्रेज युग तक के इतिहास और पुराणों के सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक

---

[139] वही, पृ0 31
[140] वही, पृ0 102
[141] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 280
[142] वही, पृ0 75

घटनाक्रमों को अपने उपन्यासों की वर्ण्य-वस्तु में स्थान दिया और प्राचीन भारत की स्वर्णिम झांकी प्रस्तुत करके भारतीय संस्कृति के निखरे हुए रूप को उभारा ।

4. वर्ण और आश्रम विषयक चेतना

भारतीय ऋषियों ने मानव जीवन को आश्रम व्यवस्था द्वारा व्यवस्थित रूप प्रदान किया । यह व्यवस्था जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई । इस व्यवस्था द्वारा जीवन जीने का ढंग इस प्रकार निर्धारित किया गया कि व्यक्ति को अधिक से अधिक संयमी बनने तथा आध्यात्मिक उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो और वह सांसारिक भोगों का मर्यादित रूप से उपभोग कर सके । आश्रम चार हैं; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । भारतीय संस्कृति में कार्य-विभाजन को विशेष महत्व दिया गया । इस दृष्टि से समाज को चार भागों में विभाजित किया गया; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । जातियों का यह विभाजन हिन्दुओं में कर्म के आधार पर हुआ था । जन्म से तो सभी शूद्र ही होते हैं; 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात्द्विज उच्यते ।' इन चार वर्णों में कई जातियां एवं उपजातियां हैं । मुस्लिम संप्रदाय में भी इसी प्रकार का वर्ण विभेद पाया जाता है; सैयद, शेख, मुग़ल और पठान । फिर इनमें भी कई उपजातियां हुईं; सुन्नी, राकी, जुलाहे, अंसारी इत्यादि मुस्लिमों में एक अन्य प्रकार से भी जाति विभेद है; शिया और सुन्नी दो प्रमुख वर्गों में यह समाज विभाजित है । शिया अपने को इमाम हुसैन का वंशज मानते हैं । वे अपने रक्त को शुद्ध मानते हैं और इसीलिए अपने को सर्वश्रेष्ठ समझकर सुन्नियों को हेय दृष्टि से देखते हैं । शिया अपनी पुरानी शत्रुता के अनुसार मोहर्रम के समय तीन खलीफाओं पर अपमानजनक कविताएं गाते हैं, जिन्हें 'तबर्रा' कहा जाता है । यही शिया और सुन्नी संप्रदाय के झगड़े का कारण बनता है । सुन्नियों की अधिकांश जातियां आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से निम्न वर्ग में परिगणित की जाती हैं । शिया अपने को सैयद और सर्वश्रेष्ठ सरदार समझते हैं । कुछ भी हो; वर्ण विभाजन के इस पारंपरिक स्वरूप से भारतीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रवृत्ति और शक्ति के अनुसार व्यवसाय चुनने का अवसर प्राप्त हुआ ।

अपने उपन्यासों में राही ने अनेक पात्रों द्वारा हिन्दुओं तथा मुसलमानों के भीतरी एवं हिन्दू-मुस्लिम जातियों के भेद-भाव को प्रस्तुत किया है । 'आधा गॉव' के एक प्रमुख पात्र फुन्नन मियां के कथनों में कहा जाता है कि ब्राह्मण और शिया दोनों ही अपने-अपने संप्रदायों की सर्वोच्च जातियां हैं । फुन्नन मियां स्वयं एक शिया जमींदार पात्र है । वह पंडित मातादीन को मंदिर बनाने के लिए तथा उसकी आजीविकोपार्जन हेतु जमीन देते हैं । मातादीन गांव में सांप्रदायिक वैमनस्य फैलाना

चाहता है । तब भी फुन्नन मियां मातादीन के ब्राह्मण होने की ईश्वर प्रदत्त श्रेष्ठता का हवाला देते हुए कहते हैं ''बाकी बीच में मंदिर का नाम आ जावे से हमरा हाथ कट गया है । केह मारे की आखिर त ऊ हो ख़नाए-खुदा है ।'' [143]

वर्ण-व्यवस्था से उद्‌भूत जाति व्यवस्था भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार है । भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित जाति व्यवस्था के अंतर्गत अनेक प्रकार के प्रतिबंध पाए जाते हैं, जिनमें प्रमुखतः भोजन संबंधी, यौन संबंधों की स्थापना संबंधी एवं अस्पृश्यता संबंधी प्रतिबंध आते रहे हैं । 'रहे हैं' से आशय है, अब इतना अधिक भेदभाव समाज में यदि है भी तो लोग कहते नहीं, यद्यपि इन प्रतिबंधों का अनुपालन अधिकांशतः अभी भी होता है । भोजन संबंधी प्रतिबंध से तात्पर्य है कि उच्च जाति के व्यक्ति निम्न जाति के व्यक्तियों के साथ बैठकर भोजन नहीं करते तथा उनका जूठा नहीं खाते हैं । यदि किसी को ऐसा करते हुए पाया जाता है तो जाति-परिवार वाले उसे दण्डित करते हैं । मुसलमान हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते तो हिन्दू मुसलमानों को अहिन्दू समझकर उनके साथ खाना पसंद नहीं करते । 'टोपी शुक्ला' में टोपी जब अपने मित्र इफ्फन के यहां खाकर अपने घर आता है तो उसकी मां रामदुलारी सीधे गंगा नहाने के लिए भेज देती है । [144]

भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था के सिद्धांतानुसार भोजन संबंधी प्रतिबंधों की भाँति यौन-संबंधों की स्थापना संबंधी प्रतिबंध का प्रचलन भी पाया जाता है । इसका अभिप्राय है कि कोई भी पुरुष या महिला अपनी ही जाति और कुल में यौन-संबंधों की स्थापना करेगा । जो पुरुष या महिला अपनी जाति में यौन-संबंधों की स्थापना विधिवत् विवाह संस्कार द्वारा आबद्ध होकर न करके किसी विजातीय में करता है, तो समाज उसे दण्डित करता है । ऐसे व्यक्तियों की समाज द्वारा निंदा एवं उपेक्षा की जाती है । राही के अनेक औपन्यासिक पात्र जाति-व्यवस्था के इन प्रतिबंधों का खण्डन-विडंबन करते दिखाई देते हैं । 'आधा गाँव' के अनेक सैयद पात्र अछूतों को पशुवत् मानते हैं, किन्तु उनकी बहू-बेटियों से बलात्कार और व्यभिचार करते समय अपने सैयदपने को भुला देते हैं । वे अपने धर्मशास्त्रों और उनके द्वारा तय की गई आचार संहिता को ताक पर रख देते हैं । मुसलमानों में ब्राह्मण मानी जाने वाली शिया जाति के लोग एक ओर निम्न कही जाने वाली जातियों का चतुर्मुखी शोषण करते हैं, तो दूसरी ओर जाति दंभ के चलते बहुत से अनर्गल कृत्यों को करने के लिए तत्पर

[143] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृ0 278
[144] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 108

रहते हैं । 'आधा गॉव' में समृद्ध और कुलीन परिवारों के पुरुष पात्र छोटी जाति की युवतियों को अपनी हवस का शिकार बनाने के दर्जनों प्रसंग देखे जा सकते हैं । उपन्यास में कुछ यौन-संबंधों की स्थापना के प्रसंग ऐसे भी हैं, जो आजीवन इन विजातीय संबंधों का निर्वाह करते हैं । मिगदाद-सैफुनिया का संबंध इसी प्रसंग की अभिव्यक्ति है । गंगौली के शिया मुसलमान मौलवी बेदार अपनी अधेड़ावस्था में हरामी बछनिया की जवानी पर ऐसे न्यौछावर हो गए कि अपनी कुलीनता को एक ओर रख दिया । राही के अनुसार समाज की परंपरागत व्यवस्था के अंतर्गत मौलवी साहब बछनिया को रखैल बनाकर अपने घर में बिठा सकते थे या मुता (निश्चित समय के लिए विवाह जिसके अनुसार संतान वारिस नहीं होती) कर सकते थे, परंतु उन पर ऐसा खब्त सवार हुआ कि वे उससे निकाह करना चाहते थे; वह भी मेहर के साथ । गंगौली के अन्य शियाओं ने इसका विरोध किया जिससे यह विवाह परिणत नहीं हो सका ।

शिया पुरुषों की भॉति उनकी स्त्रियों की यौन-विडंबनाएं तथा वर्जनाएं राही के इस उपन्यास में आई हैं । राही जी कहते हैं ''लेकिन ऐसा नहीं था कि सैयदानियों के हिस्से में कहानियां ही न आई हों । फलां मियां की बीवी अपने भतीजे से फंसी है । फलां को उनके देवर ने रख छोड़ा है....लेकिन इसमें शक नहीं कि इन कहानियों में भी हड्डी का ख्याल रखा जाता था । यानी यह कभी नहीं हो सकता कि फलां की बीवी फलां राकी या जुलाहे से फंसी हुई है ।'' [145] स्त्रियां सामाजिक मर्यादा का विशेष ध्यान रखतीं, परंतु शिया पुरुष अनुसूचित जाति की स्त्रियों से भी इश्क-मुश्क करने से परहेज नहीं करते । वह बड़ी शान से एकाधिक बीवियां रखते हैं । 'आधा गॉव' का समीउद्दीन बड़े गर्व के साथ कहता है 'चार भाइयों में सात बीवियां हैं । इसके अनेक मर्दों ने जुलाहिनें बैठा रखी हैं । तक्कन मियां को लौंडेबाजी का शौक है और अशरफुल्ला खां ने लौंडा पाल रखा है ।' 'ओस की बूँद' में अशरफुल्ला की मामी और गुल्लू के बीच अनैतिक यौन संबंध वर्णित हुए हैं । यौन-संबंधों की इस सामाजिक स्थिति को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है ।

जाति-व्यवस्था का तृतीय प्रतिबंध है - अस्पृश्यता संबंधी प्रतिबंध । इस प्रतिबंध के अनुसार भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में उच्च जाति या वर्ण के व्यक्ति निम्न जाति, जिसे शूद्र कहा गया, के व्यक्ति का स्पर्श नहीं करते; उसे अपने शरीर से नहीं छूते और उसे भी स्वयं को छूने नहीं देते हैं । इस धारणा के पीछे उच्च

[145] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 103

जाति वालों की स्वयं को शुद्ध बनाए रखने की परिपाटी है । उच्च जाति का जो व्यक्ति शूद्र या अस्पृश्य के साथ उठेगा-बैठेगा या उसे छू जाएगा । उच्च जाति के लोग ऐसे व्यक्ति का बहिष्कार कर देते हैं । उसे कथित रूप से अशुद्ध माना जाता है । राही के उपन्यासों में ऐसे ढेरों प्रसंग मिलते हैं । 'आधा गॉव' में आया है कि जिस प्रकार हिन्दू मुसलमानों के हाथ की मिठाई इत्यादि नहीं खाते, उसी प्रकार गंगौली के शिया भी हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते । इसीलिए एक हिन्दू पात्र छिकुरिया मौलवी बेदार को सबसे शुद्ध मुसलमान मानता है, क्योंकि वे हिन्दुओं की बनाई कोई चीज नहीं खाते । हकीम अली कबीर हिन्दू मरीजों की नाड़ी छूने के बाद स्नान करते हैं । गंगौली के शियाओं के दरवाजों पर राकियों को बैठने के लिए ऐसी कुर्सियां दी जाती हैं, जिनमें कपड़ा नहीं लगा होता; जो मात्र टीन या लकड़ी की बनी होती हैं । प्रदेश के प्रथम आम चुनाव तथा जमींदारी उन्मूलन के बाद अपनी गिरी हुई हालत में हकीम साहब लकड़ी की कुर्सियों को रसोई में जला देने का आदेश देते हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि परसराम जैसे अछूत कांग्रेसी नेता उनके सामने कुर्सियों पर बैठने का दुस्साहस करेंगे, जिसे वे अपनी कुलीनता के विरुद्ध समझते हैं । इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि राही के पात्र न केवल धार्मिक अंधविश्वासों में जकड़े हुए हैं वरन् वे सामाजिक भेदभाव और खोखली जमींदारी की शान में भी घुट रहे हैं ।

इस प्रकार राही अपनी साहित्यिक पात्र-परिकल्पना द्वारा एक ओर जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था के परंपरागत स्वरूप को चित्रित करते हैं, वहीं दूसरी ओर इस पतनोन्मुख व्यवस्था के विरुद्ध नई चेतना की सुगबुगाहट की उपस्थिति भी दर्शाते हैं ।

5. अन्य चेतनाएं

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समाज एवं संस्कृति के संवाहक पात्र उपरिवर्णित चेतनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक संदर्भों को ग्रहण करते हुए भी चलते हैं । इनमें संबंध निरपेक्षता, संयुक्त परिवारों का विघटन, आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व, नारी की परिवर्तित मानसिकता, वैवाहिक समस्याएं, दहेज समस्या एवं सेक्स समस्याएं प्रमुख हैं ।

क. संबंध निरपेक्षता

संबंध निरपेक्षता का प्रकटीकरण राही के उपन्यास 'आधा गॉव' में देखा जा सकता है । जिसमें नवयुवक अपने बुजुर्गों का आदर नहीं करते हैं । कम्मो अपने

पिता वाजिद मियां के प्रति उस समय विद्रोह कर उठता है; जब उसके पिता अपनी रखैल को पीटते हैं । इसी बात पर पिता-पुत्र में हाथापाई हो जाती है । कम्मो अपने पिता को पकड़कर मानो अतीत में किए गए सारे अत्याचारों का बदला लेने पर उतारू हो जाता है । वह अपने पिता से कह उठता है ''बाकी अब जो तूं अम्मा को कुछ कहियो तो खन के गाड़ देवें ।'' [146] इस स्थिति से प्रतीत होता है कि पिता आज उसी तरह सत्ता का प्रतीक है, जिस तरह नारी पराधीनता की । मिगदाद तथा सैफुनिया के अनैतिक व वर्जित वार्तालाप को सुनकर हम्माद मियां क्रोध में अपनी मां का हाथ झटक देते हैं । सैफुनिया से विवाह कर लेने के बाद मिगदाद और उसके पिता हम्माद मियां में कदापि नहीं बनती ।

ख. संयुक्त परिवार का विघटन

संयुक्त परिवार; जो वृद्धों तथा संबंधियों का आश्रय-स्थल माना जाता है; में बेटे युवा होने पर अपनी पत्नी तथा बच्चों का बोझ अपने बूढ़े माता-पिता के कंधों पर डालकर स्वयं अपना कैरियर बनाने तथा अधिक कमायी करने के लिए दूसरे देशों में चले जाते हैं । 'ओस की बूँद' उपन्यास में उपन्यास में वजीर हसन का बेटा अली बाकर पाकिस्तान चला जाता है और अपनी पत्नी और बेटी को अपने पिता के सहारे छोड़ जाता है । इसी तरह 'आधा गॉव' में हकीम अली कबीर के बूढ़े कंधों पर नौ प्राणियों का भार छोड़कर उनका बेटा सद्दन पाकिस्तान चला जाता है । स्वार्थपरता और पारस्परिक राग-द्वेष ने इन नाते-रिश्तों में फीकापन ला दिया है, जिससे कथित निज श्रेष्ठता का बोध जगा है । साथ ही बदली हुई मानसिकता पितृ ऋण के उन मूल्यों को नकार रही है, जो संयुक्त परिवार की संरचना में आधार-स्तंभ थे । यहां पर कमलेश्वर का यह कथन उल्लेखनीय है 'पुत्र अब परलोक के लिए नहीं, इहलोक के लिए जरूरी हो गया है किन्तु दूसरी तरफ वृद्धावस्था की कोई सुरक्षा आज के वृद्ध के पास नहीं है । वह अपमानजनक स्थितियों में भी किसी पर निर्भर रहने के लिए विवश है । पुत्र के लिए पुरानी आचार संहिता बेमानी हो चुकी है ।' [147]

ग. आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व

[146] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 166
[147] कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ0 158

अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण होकर व्यक्ति समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है । इस उपक्रम में आज के बनते-बिगड़ते राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व शैक्षणिक ढांचे के प्रति उसके मन में आक्रोश पनपने लगता है, क्योकि इस विश्रृंखलित परिवेश में व्यक्तित्व निखरने के स्थान पर कुण्ठित और दिग्भ्रमित होने लगता है । इस प्रकार व्यक्ति आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व में उलझा रहता है और वह त्रस्त होकर लाचार हो जाता है । ऐसे व्यक्ति की तुलना सिसिफस के रूप में की जा सकती है । अत्यंत बलशाली और महत्वाकांक्षी होते हुए भी सिसिफस अकारण ही देवताओं का कोप-भाजन बनता है । देवताओं ने उसे शाप दिया ि कवह एक चट्टान को निरंतर शिखर पर चढ़ाता रहे । किन्तु दिन में ऊपर ढकेलने में जितनी दूरी तय करेगा, रात को उस चट्टान की उतनी ही अधोगति हो जाएगी । इस प्रकार सिसिफस कभी भ शाप-मुक्ति के लिए निर्धारित रेखा पर चट्टान को पहुंचाने में असमर्थ ही रहा इस विदेशी लोक-कथा के अनुसार अब तक सिसिफस दिन-रात उसी सीमित दिशा-गति में निरंतर चट्टान ढोने को गतिमान है ।[148]

यह कथा अस्तित्ववादी विचारधारा की मूल प्रेरक है । अस्तित्ववादी दृष्टि से प्रभावित आज का प्रत्येक व्यक्ति अकारण ही सिसिफस की भाँति अभिशप्त है । अपने जीवन में कर्तव्य के नाम पर सिसिफस जैसी एकरसता भोगने के लिए विवश है । 'हिम्मत जौनपुरी' की परिस्थितियां हिम्मत को अनचाहा करने के लिए विवश कर देती हैं । 'सीन : '75' में एक लेखक बनने की आकांक्षा से मुंबई गया अली अमजद भिखमंगों के एक संघ में काम करने को विवश होता है, जहां उसे अंत में प्रचुर मात्रा में नींद की गोलियां खाकर सर्वदा के लिए सो जाना पड़ता है । इसी प्रकार सामाजिक कलंक के भय से 'आधा गॉव' की झंगटिया बो नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेती है। 'टोपी शुक्ला' में टोपी को आत्महत्या करके अपने जीवन का अंत करना पड़ा, क्योंकि वह परिस्थितियों के साथ सामंजस्य नहीं कर सका । टोपी शुक्ला का जीवन आदि से अंत तक मानसिक संघर्ष की ही कथा है । जीवन के हर मोड़ पर उसे असफलता का सामना करना पड़ता है । कभी उसे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के कारण नौकरी नहीं मिलती, तो मुस्लिम संस्थाओं में उसके हिन्दू होने के कारण रोजगार नहीं मिलता । राही ने सकीना से टोपी के लिए कहलवाया है - ''अरे ! नौकरी न मिले तो क्या करे? घर पड़े रहने से तो अच्छा है कि आदमी पी-एच.डी ही

[148] डॉ शुकदेव सिंह, प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद, पृ0 132

कर ले ।'' [149] उसकी निराशा और मानसिक संघर्ष के अतिरेक का अंत आत्महत्या में होता है यद्यपि उसकी मृत्यु के दूसरे दिन उसे एक महाविद्यालय से लेक्चरर की नियुक्ति का पत्र सकीना द्वारा भेजी गई राखी और पत्र सहित मिलता है, परंतु इन पत्रों, जिन्हें पाने के लिए वह आजीवन भटकता रहा, को खोलने के पूर्व ही उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके होते हैं । इन स्थितियों में आत्महत्या दिखाकर उपन्यासकार यह भी सिद्ध करता है कि किसी भी समस्या का समाधान आत्महत्या नहीं है, क्योंकि समस्याएं देर में भी सुलझ सकती हैं; फिर उनके समाधान पर हमारा नियंत्रण भी नहीं है ।

घ. नारी की परिवर्तित मानसिकता

बदलते सामाजिक परिवेश में नारी ने स्वयं को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में घोषित करने की दृढ़ता अपनाई है । अपने स्वतंत्र अस्तित्व तथा अस्मिता के प्रति सचेत होकर नारी सर्वत्र पुरुष की समकक्षता में खड़ी दिखाई देने लगी है । अब 'सैयदा' (आधा गॉव) अलीगढ़ में पढ़ने लगी हैं । वह अध्यापन और अन्यान्य सेवाओं से आय अर्जित करके अपने स्वाभिमान और स्वावलंबन की रक्षा करने लगी हैं । 'ओस की बूँद' की शहरनाज ग़ाज़ीपुर के गर्ल्स स्कूल में पढ़ा रही है । 'कटरा बी आर्जू' की शहनाज नसबंदी प्रचार करती है ।

च. वैवाहिक समस्याएं

राही के उपन्यास विवाह से संबद्ध अनेक समस्याओं को अपने उपन्यासों में उठाते हैं । उनके 'ओस की बूँद' उपन्यास में अंतर्सांप्रदायिक विवाह की समस्या के विविध पक्षों को सुस्पष्ट किया गया है । ऐसे विवाह में दोनों पक्षों को अपना धर्म परिवर्तन करना पड़ता है । परंतु लोगों के धार्मिक संस्कार इतने गहरे हैं ि कवे किसी भी अवस्था में उनकी अवहेलना या उल्लंघन नहीं कर सकते । उपन्यास में शिवनारायण और शहला प्रसंग इसी की एक कड़ी है । 'टोपी शुक्ला' में टोपी और सलीमा का विवाह भी परिणत नहीं हो पाता है ।

छ. दहेज समस्या

[149] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 95

राही ने अपने उपन्यासों में बताना चाहा है कि दहेज-प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति भारतीय समाज के लिए घातक है । यह समस्या अनमेल विवा को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप किशोरावस्था की लड़कियों का विवाह वृद्ध पुरुषों से कर दिया जाता है । 'कटरा बी आर्जू' में शहनाज का विवाह दरिद्रता के कारण दहेज दे सकने में अक्षम शम्सू मियां जोखन रिक्शे वाले से करने को विवश होते हैं, जा उम्र में शहनाज के पिता के समान है । इसी प्रकार 'आधा गॉव' में मौलवी बेदार और बछनिया का प्रसंग है, यद्यपि इस की परिणति उपन्यासकार ने नहीं दिखाई है ।

ज. काम के विभिन्न रूप

राही के कुछ औपन्यासिक नारी और पुरुष पात्र वर्जित, अनैतिक और अप्राकृतिक यौन-संबंध स्थापित करते हैं । वह सिगमण्ड फ्रायड का जीवन-दर्शन रूपायित अपने इन पात्रों द्वारा करते हैं । यद्यपि कुछ विद्वान राही के स्त्री-पुरुष एवं अप्राकृतिक यौन-संबंधों के वर्णनों को रोचकता के नुसखे बताकर आलोचना करते हैं । ऐसे आलोचकों का यह कहना आरोप है कि 'अरोचकता व नीरसता से बचाने तथा उपन्यास को आकर्षक बनाए रखने के लिए ही राही ने ऐसे संबंधों का प्रचुर प्रयोग किया है ।' [150] राही के उपन्यासों पर इस तरह के आरोप लगाकर उनकी रचनाओं और उसके साहित्यिक सौंदर्य को कम करके नहीं आंका जा सकता । राही के उपन्यासों में ये यौन-संबंध कहीं फ्रायड की काम-कुण्ठा का निदर्शन करते हैं, तो कहीं वह अपने (शिया) समाज की खोखली रक्त-शुद्धता को उघाड़ कर रख देते हैं । ये समाज में व्याप्त घोर वैयक्तिक समस्याएं हैं । इनसे दूर भागकर ये समस्याएं बनी ही रहेंगी । हां, इनके कारणों पर विचार करके कदाचित हम किसी निष्कर्ष की ओर बढ़ सकेंगे ।

'दिल एक सादा काग़ज़' में अप्राकृतिक यौन-संबंधों का अनेक पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा विश्लेषण किया है । चंचल का वर्णन करते हुए राही लिखते हैं ''चंचल बेचारे की ट्रेजडी यह थी कि वह केवल ज़बानी इश्क कर सकता था । उसका बचपन बाथरूमों में गुजरा था ।'' [151] इसी प्रकार के एक और पात्र का वर्णन करते हुए राही लिखते हैं ''तिरछे खां तो बाथरूम लवर हैं । कहते हैं कि आदमी को अपना

[150] डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, उपन्यास : स्थिति और गति, पृ0 169
[151] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 86

काम अपने हाथों से करना चाहिए, नही ंतो अल्लाह मियां ने हाथ दिए क्यों हैं?'' [152] समलैंगिक यौनाचार के उदाहरण भी इसी उपन्यास में हैं, यथा रफ्फन एवं मौलवी तकी हैदर तथा जैदी विला के बावर्ची अब्दुस्समद एवं एक नौकर शर्फुआ के बीच का अश्लील व्यवहार वर्णन । [153]

समलैंगिकता की यह प्रवृत्ति राही के उपन्यासों के स्त्री पात्रों में भी दिखाई देती है । 'सीन : '75' उपन्यास में राही लिखते हैं ''सरला बेचारी की अपनी समस्याएं थीं मिढ़ा साहब का दूसरों की बीवियां खूबसूरत दिखाई दिया करती थीं और इसीलिए सरला के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता था । एक तरह से सरला को यह बात बुरी भी नहीं लगती थी और उसे यह बात बुरी इसलिए नहीं लगती थी कि उसे मर्दों का शौक नहीं था । उसे खुद दूसरों की बीवियां अच्छी लगा करती थीं ।'' [154] 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में जेल में एक कैदी भाग्यमती का वर्णन करते हुए लेखक कहता है ''वह पढ़ी लिखी थी । दिल्ली यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया करती थी । जब कोई नई कैदी आती तो वह दीवानी हो जाती और इसमें बला की ताक़त आ जाती और यह उस नई कैदी को दूसरी तमाम कैदी औरतों के सामने रेप करती और फिर बिल्कुल सीधी हो जाती ।'' [155] पुरुषों और स्त्रियों की वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक समस्या को राही के उपन्यासों में बिना लाग लपेट के स्पष्ट किया गया है ।

i. मनोविश्लेषणवादी चेतना : यहां यह ध्यातव्य है कि अधिकांश प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार फ्रायड, एडलर और युंग के मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत से प्रभावित हुए हैं । इस सिद्धांत के अनुसार मानव-मन चेतन (Councious), पूर्वचेतन (Precouncious) और अवचेतन (Uncouncious) तीन भागों में विभाजित है । फ्रायड के अनुसार में विस्तार और महत्व की दृष्टि से अवचेतन कहीं अधिक श्रेष्ठ है । [156] अवचेतन ही चेतन की जनक है । इसी में मनुष्य की आदिम इच्छाएं निहित रहती हैं । फ्रायड इन्हें यौनेच्छाएं, एडलर हीनता की भावना युंग जीवनेच्छाओं के नाम से पुकारता है ।

---

[152] वही, पृ0 90

[153] वही, पृ0 12-13

[154] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 28

[155] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 212

[156] क. अहमद, मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पृ0 ड (पुरोवाक)

फ्रायड के मतानुसार यौन भावना बालक के जन्म के तुरंत बाद उत्पन्न हो जाती है, जो अत्यंत सहज और स्वाभाविक होती है । उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया है कि दूध पीने के लिए जब बच्चा मां का स्तन चूसता है, तब उसमें यौन-संतुष्टि का-सा आनंद आता है । नैतिकता का आग्रही चेतन मन इन इच्छाओं का बार-बार ध्यान करता रहता है; जिससे वे कुछ समय के लिए तो शान्त हो जाती हैं; किन्तु कालांतर में बांध दी गई नदी की भाँति अवचेतन मन में दलदल की सृष्टि करती है, जिसे ग्रन्थि या मनोविकार कहते हैं । फ्रायड के विचारानुसार सभ्यता का आडंबर कामेच्छा का नैसर्गिक संतुष्टि में बाधक बनकर उसके दमन के लिए प्रेरित किया करता है । यौन-ऊर्जा का यह सतत दमन मनुष्य की अनेक मनोग्रन्थियों और मानसिक रोगों का कारण बनता है ।[157]

डॉ राही मासूम रज़ा ने भी फ्रायड एवं अन्य मनोविश्लेषकों की धारणाओं के आलोक में अपने पात्रों के अंतर्मन की परीक्षा की है । 'आधा गाँव' के कम्मों की मनोदशा इसी धारणा की परिणाम है । आरंभ में कम्मो नियमों को मानने वाला, संयमी और अतिशय लज्जाशील युवक है, परंतु सईदा के क्षणिक दर्शन मात्र से उसके हृदय की दशा बदल जाती है और अतीत काल से रुद्ध उसकी व्याकुल वासना का बांध टूट जाता है । कम्मो के समस्त विचार तथा आचरण उसकी विकृत मनोवृत्ति के परिचायक हैं । हमें कम्मो के व्यक्तित्व में एडलर की हीन भावना या अहं का प्रभाव दिखाई देता है, जिससे उसमें दूसरों पर विजय प्राप्ति और अस्तित्व को बनाए रखने की उत्कट लालसा विद्यमान है ।

ii. अस्तित्वादी चेतना : राही की औपन्यासिक पात्र-परिकल्पना अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभावानुरूप भी हुई है । अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य संसार में आने के पश्चात स्वयं ही अपने कार्यों तथा स्वतंत्र चयन द्वारा अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करता है, अस्तित्व की यह शर्त है । अस्तित्व के बिना कोई तत्व नहीं इसलिए पहले से निश्चित कोइ आदर्श या मूल्य अथवा कोई बाह्य शक्ति (ईश्वर और इसके जैसी मानी जाने वाली पारलौकिक शक्तियां) मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण नहीं करती ।[158] यह दर्शन मानव की स्वतंत्रता पर विशेष बल देता है । इसमे मनुष्य को सोचने, समझने, जानने, निर्णय लेने और कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है । इसके प्रवर्तक दार्शनिक सार्त्र के अनुसार मनुष्य इस संसार में अकेला फेंक दिया गया

[157] क. अहमद, मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पृ0 छ (पुरोवाक)
[158] डॉ देवेन्द्र इस्सर, साहित्य और आधुनिक युगबोध, पृ0 49

है । यहां अपने अतिरिक्त उसका कोई सहायक नहीं । इसलिए अपना मार्ग उसे स्वयं चुनना है, किन्तु यदि वह सोचे कि वह अकेला है तो कुछ नहीं कर सकता है और इसी कारण उसका जीवन पीड़ा, अकेलेपन, निराशा और अंधकार से भर जाएगा और यदि वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कर्म करने में व्यस्त रहता है, दूसरों की तुलना में अपने प्रति अधिक सजग और सचेष्ट रहता है, तो वह कभी निराश नहीं होगा । इस अर्थ में यह दर्शन आशावादी, मानवतावादी तथा कर्मवादी है; निराशावादी नहीं ।

एक अन्य अस्तित्ववादी विचारक कामू ने सार्त्र से आगे जाकर विचार दिया कि हम समस्याओं का वरण नहीं करते अपितु समस्यायें ही हमारा वरण करती हैं । उसके मत के अनुसार जीवन निरर्थक है, एक अर्थहीन बोझ है । इस अर्थहीन बोझ को उठाए मानव अकेला है, निराश है । वह निरर्थकता और आत्महत्या को एक समान मानते हैं । इन विसंगतियों से बचने का एक मात्र मार्ग है विद्रोह (Revolt) ।

इन विचारकों ने अपने चिंतन में मृत्यु और उसके संत्रास को बहुत महत्व दिया है । मृत्यु मनुष्य को प्रामाणिक रूप में रहने के लिए संकेत-सूत्र है । इसीलिए ये विचारक मानते हैं कि मनुष्य मृत्यु के भय से अपने जीवन को कम समय में ही अर्थवत्ता प्रदान करना चाहता है ।

राही जी के पात्र मिगदाद (आधा गॉव) और टोपी (टोपी शुक्ला) इन्हीं विचारधाराओं के अलग-अलग प्रतिनिधि हैं । मिगदाद का समस्त विद्रोह अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए होता है, जिसमें वह जीत भी जाता है । किन्तु टोपी अपनी अस्मिता की खोज में घर से भागता है । वह जीवन का अर्थहीन बोझ उठाए अकेला भटकता रहता है और अंत में आत्महत्या कर डालता है । 'आधा गॉव' की झंगटिया बो, 'सीन : '75' का अली अमजद भी इसी तरह के पात्र हैं । स्पष्टतः मिगदाद सार्त्र की विचारधारा का तो टोपी, झंगटिया बो तथा अली अमजद कामू की विचारधारा का दिग्दर्शन कराते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राही जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न वर्गों का रहन-सहन एवं समस्याओं का परिस्थिति तथा समय सापेक्ष चित्रण किया है । राही जी के अधिकांश पात्र न देश और न समाज के किसी रचनात्मक कार्य में संलग्न नहीं दिखाई पड़ते । समाज तथा देश से विमुख ये पात्र स्वस्थ पारिवारिक एवं दांपत्य जीवन भी व्यतीत नहीं करते । इन पात्रों की इस विमुखता का कारण इनमें अहं का

बढ़ना है । इस अहं ने दांपत्य जीवन की सम-गति को भंग किया है । दूसरी तरफ अह ंके कारण कुछ युवको ने रचनात्मक कार्य भी किए हैं, पर 'आधा गॉव' के मिगदाद जैसे पात्र संख्या में स्वल्प ही हैं ।

पंचम् अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की आर्थिक चेतना के संवाहक पात्र

आर्थिक चेतना

मानव की भोजन तथा संपत्ति से संबंधित क्रियाओं ने आर्थिक संस्थाओं का निर्माण किया है । ये क्रियायें हमारी संस्कृति के विशाल क्षेत्र को प्रभावित किए हुए हैं कृषि संबंधी अनेक संसाधन, विभिन्न प्रकार के कल कारखाने, हस्तकलाओं द्वारा उत्पादित सामग्री-पुंज, परिवहन, टेलीफोन, बैंक तथा आर्थिक विनियोग के नाना रूप आर्थिक संस्थाओं से संबंधित हैं । आधुनिक समय में आर्थिक संकट के गंभीर प्रश्न उठ सकते हैं; क्योंकि अर्थ ने वर्तमान समाज की मान्यताओं एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों को भी झकझोर दिया है । मूल्यवृद्धि एवं मुद्रा अवमूल्यन ने व्यापार को प्रभावित कर बेरोजगारी को जन्म दिया है । आर्थिक संगठनों की प्रमुख समस्याएं आर्थिक समस्याओं के पारस्परिक संबंधों तथा सामाजिक संस्थाओं के सहयोग के बिना नहीं सुलझ सकती हैं ।

प्राचीन मानव ने अपनी भूख मिटाने के लिए शिकार खेलना आरंभ किया । तत्पश्चात वह वृक्षारोपण के माध्यम से एवं आज के कृषि साधनों के माध्यम के प्रारंभिक स्वरूप से अपनी क्षुधा शान्त करता रहा । इस कार्य में स्त्री एवं पुरुष दोनों का सहयोग चलता रहा, जिसके कारण उसने अपनी आर्थिक स्थिति में शनैः-शनैः सुधार किया । प्रारंभिक अवस्था में वस्तु विनिमय द्वारा समाज की विभिन्न इकाइयों में सहयोग स्थापित कर मनुष्य सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करता था । कालांतर में ये संबंध व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में विकसित हो गए । पुरातन कालीन 'शक्ति और सम्मान' , जिसके पशुधन एवं कृषि मूलाधार थे, का रूप अब धन-संपदा ने ले लिया । आधुनिक युग में सामाजिक स्थिति का मापदण्ड धन संपदा ही रह गया है । व्यक्तिगत धन-संपदा के परिणामस्वरूप कल-कारखानों तथा उद्योग धंधों का प्रसार हुआ । परिवहन की सुविधा के परिणामस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए आवश्यकता और खपत के आधीन आर्थिक संपन्नता बढ़ती गई । संपन्न व्यक्ति समाज के दुर्बल वर्ग को आर्थिक मूल्य पर वस्तु विक्रय करने लगे । इस प्रकार समाज में धन के आधार पर धनवान एवं निर्धन दो वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ । विगत वर्षों की अभूतपूर्व आर्थिक उन्नति के कारण व्यक्तिगत पूंजीवादी प्रतियोगिता की भावना को बढ़ावा मिला

है । मुनाफाखोरी ने जन्म लेकर श्रमिक का शोषण करना आरंभ कर दिया । उद्योगों में तकनीकी विकास के कारण मानवीय श्रम का महत्व घटता गया और उसका कार्य मशीनों ने करना आरंभ कर दिया । परिणास्वरूप उत्पादन की क्षमता बढ़ती गई और मानवीय श्रम का मूल्य कम होता चला गया । मानवीय श्रम की उत्तरोत्तर घटती हुई स्थिति ने बेरोजगारी को जन्म दिया । अतः समाज के संपन्न वर्ग के हाथों में आर्थिक सत्ता हस्तान्तरित होती चली गई । फलतः आर्थिक वैषम्यता के आधार पर समाज का विभाजन शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग में हो गया है ।

आज के आधुनिक जीवन में परिव्याप्त जटिलताएं अर्थमूला हैं । व्यक्ति चारों ओर के आर्थिक दबावों, अनुभवों एवं विविध संगति-विसंगतियों के बीच यातनापूर्ण यात्रा तय कर रहा है । देश की अर्थ-व्यवस्था संक्रमण काल के विविध संदर्भों से गुजर राष्ट्रीय विकास की ओर गतिशील है । संतुलित अर्थ-व्यवस्था विकसित राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार होती है । जीवन के बहुमुखी क्रिया-व्यापारों का स्वरूप इसके समुचित क्रियान्वयन से होता है । किसी भी अर्थ-व्यवस्था की विकसनशील स्थितियां ही वहां की जनजीवन में चेतना उजागर करते का प्रबल माध्यम हुआ करती हैं । आज देश पुनः अपने निर्माण में व्यस्त है । जब तक देश की ग़रीब जनता को पेट-भर भोजन, तन ढंकने को वस्त्र और रहने को छत नहीं मिलती; तब तक उनके जीवन में आशा और उल्लास का प्रश्न ही नहीं उठता । व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास हेतु समुचित शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वस्थ मनोरंजन के साधनों की उपलब्धियां भी जीवन के आवश्यक उपादान हैं । जनतंत्र की वास्तविक भावना का संचार हमारे सामाजिक जीवन के अंग-प्रत्यंग में कार्यशील होना चाहिए ।

अर्थ-व्यवस्था संबंधी विभिन्न स्थितियों, संगति-विसंगतियों, समस्याओं एवं समाधानों के बीच गतिशील चेतना आर्थिक चेतना है । आर्थिक चेतना के दो स्तर हैं; एक का संबंध है - स्वाधीनता परवर्ती नई मानसिकता से दूर तथा दूसरी का संबंध है -आज की वास्तविक परिसिीतियों से । कुल मिलाकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि स्वाधीनता परवर्ती भारतीय गॉव पहले की अपेक्षा समृद्ध हुआ है, किन्तु उस समृद्धि के प्रति संतोष के स्थान पर असंतोष बढ़ा है । लोगों को पराधीनता की अवस्था में पराए शासक के प्रति उतनी शिकायत नहीं होती, जितनी स्वाधीनता की अवस्था में अपने देश के शासकों के प्रति हो रही है । अंग्रेजों ने देश को आर्थिक दृष्टिकोण से खोखला कर दिया था । लोग इस खोखलेपन के सारे दुष्परिणामों को झेलते हुए भी यह समझते थे कि पराधीनता की दशा में यह सब तो होना ही है, किन्तु स्वाधीन भारत में जब अपेक्षाकृत अधिक समृद्धि के बावजूद समाज में आर्थिक समानता के स्थान पर आर्थिक विषमता बढ़ती गई और शासकों की स्वार्थवृत्ति 'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई' की

तर्ज पर अधिकाधिक विकसित होती गई, तब लोगों असंतोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक था । राही के उपन्यास इसी प्रकार के आर्थिक परिदृश्य में लिखे गये हैं । जिससे अपेक्षाकृत अधिक समृद्धि के बावजूद राही के उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से जो आर्थिक चेतना प्रकट हुई है - उसमें असंतोष, विद्रोह और अमर्ष का बोध अधिक है ।

डॉ राही मासूम रज़ा देश के किसान मजदूरों के साथ प्रशासन व जमींदारों के अत्याचार पूर्ण दुर्व्यवहार एवं उनकी विपन्न स्थिति से भली-भाँति परिचित थे । साथ ही जमींदारी उन्मूलन के बाद जो जमींदार छोटे कृषक बन गए थे, राही समसामयिक साहित्यकारों के विपरीत, उनकी परेशानियों से भी सहानुभूति रखते थे । शोषण के जघन्य दानवीय कृत्यों को देखकर राही जी की आत्मा अकुला उठी थी । उन्होंने पीड़ित वर्ग की ब्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से मुखरित किया है । जैसा पुस्तक में यत्र-तत्र स्पष्ट किया जा चुका है, राही मार्क्सवाद के सिद्धांत के प्रति अपनी आस्था रखते थे । अतः स्वाभाविक तौर पर उनके औपन्याासिक पात्र उनकी इसी आर्थिक चेतना के संवाहक बने हैं । उनकी आर्थिक चेतना के संवाहक पात्रों का निम्नलिखित वर्गों में रखकर अध्ययन किया जा सकता है ।

1. शोषक वर्ग

आधुनिक वर्ग-चेतना ने पूरे विश्व में शोषित अथवा सर्वहारा वर्ग को संगठित कर लिया है । वह शोषक वर्ग से संघर्ष करने को कटिबद्ध है । पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं कि उन्हें बिना क्रान्ति के उखाड़ा नहीं जा सकता । अतः शोषित वर्ग मार्क्स के दर्शन में विश्वास रख, क्रान्ति के माध्यम से शोषण का अंत कर, वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है । इस प्रकार संपूर्ण विश्व में शोषक वर्ग में संघर्ष चल रहा है, वह चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष

हमारी अर्थव्यवस्था में स्थूल रूप में तीन वर्ग बन गए हैं - उच्च, मध्य तथा निम्न । इनमें से मध्य वर्ग की स्थिति सबसे विचित्र है । यह वर्ग निम्न-वर्ग के ऊपर रहकर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर उससे कटना चाहता है और उच्च वर्ग से स्पर्धा कर उससे जुड़ना चाहता है । इसे सफलीभूत बनाने के लिए वह प्रातः 9 बजे से सायं 6 बजे के बीच वही काम करता है, जिसको लेकर मार्क्स ने शोषितों की ओर से क्रान्ति का आह्वान किया था और इस शेष समय (सायं 6 बजे से प्रातः 9 बजे तक) में वह शोषितों की ओर से सम्मिलित रहने को भी तत्पर रहता है । तात्पर्यतः वह शोषक वर्ग और शोषित वर्ग दोनों में विद्यमान रहता है । परिणामतः वह न तो उच्च वर्ग से जुड़

पाता है और न ही निम्न वर्ग से वह अलग हो पाता है । वह दोनों के बीच पिसकर रह जाता है और उसका आर्थिक संतुलन विगड़ जाता है । यह आर्थिक असंतुलन उसमें विद्रोह और क्रान्ति की भावना को भर देता है ।

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मार्क्सवाद के अर्थ में आर्थिक चेतना प्रत्यक्ष रूप में न सही; परोक्ष रूप में तो उभरी ही है । मध्यम-वर्गीय व्यक्ति की आर्थिक समस्याएं, आर्थिक असंतुलन से उपजा उसका अकेलापन, संत्रास, अनिश्चितता, शोषक वर्ग के प्रति उसका आक्रोश, मुक्त प्रतिस्पर्धा, अर्थ-नीति के फलस्वरूप उत्पन्न दुष्परिणाम तथा विघटित सामाजिक संबंध उनके उपन्यासों में उभरे हुए हैं । राही के उपन्यासों में समाज के जिन-जिन व्यक्तियों द्वारा शोषण किया जाता है, वे अधोलिखित प्रकार से दिए जाते हैं -

क. जमींदार

स्वतंत्रता पूर्व जब जमींदारी उन्मूलन नहीं हुआ था, तब भारत में कृषकों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । जमींदार ही गॉव के आर्थिक जीवन के नियंता होते थे । जमींदार मालिक होता था और कृषक उसके नौकर । जमींदार कृषकों तथा निम्न जाति के लोगों को काश्त के लिए जमीन देकर अपने लिए मनमाने ढंग से लगान तथा बेगार प्राप्त करता था ।

'आधा गॉव' उपन्यास के गंगौली गॉव के अनेक पात्र स्वतंत्रता से पूर्व तथा पश्चात् अनेक सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों के शिकार होते हैं । इस उपन्यास का घटना-काल 1937 से 1952 के बीच का है । जब जमींदारी अपने चरमोत्कर्ष पर थी और उसके खात्मे का समय (1952) आ रहा था । ऐसे समय में आर्थिक-वैषम्य और रूढ़ियों से पिसते व्यक्ति को दर्शाकर राही ऐसे समाज की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं, जो मात्र जमींदारी पर ही आश्रित था । काश्तकार लगान देने वाला मात्र एक दास बनकर रह गया था । जमींदारों के नृशंस अत्याचारों का वर्णन करते हुए राही लिखते हैं ''सामने ही एक तंदुरुस्त दमकता हुआ नौजवान मुर्गा बना हुआ था । उसकी पीठ पर ईटों का एक मीनार-सा बना हुआ था । जब वह मीनार हटाया गया, तो कई मिनट तक वह खड़ा न हो सका । वह खड़ा होने के बाद भी अपनी पीठ सहलाता रहा । '' [159] इस उद्धरण में किसी किसी आसामी के बेटे को जमींदार के प्रति उच्च

[159] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 146-147

सम्मान प्रदर्शित न करने के लिए कठोर यातना दी जा रही है । अशरफुल्ला खां नामक यह जमींदार किसी अन्य किसान को लगान समय पर न देने के कारण घर द्वार नीलाम करने की धमकी देते हैं ''साले, अगर परसों तक लगान और कर्ज़ मय सूद के न आ गया तो ढोर-डंगर सब नीलाम करवा दूँगा और अपने इन लाट साहब को भी ले जा और इन्हें बतला कि जमींदारों से कैसे बात की जाती है ।'' [160]

राही के 'आधा गॉव' उपन्यास में कहीं भी कृषक पात्र जमींदार पात्रों का विरोध करते हुए नहीं दिखाए गए हैं । समालोचकों की दृष्टि में जब सभी मार्क्सवादी लेखक किसानों के विद्रोह और उनकी क्रान्ति का प्रतिपादन कर रहे थे तथा जमींदारों के विरुद्ध सर्वहारा किसान (शोषित वर्ग) को पीठ ठोंककर खड़ा कर रहे थे; उस समय राही जैसा मार्क्सवादी अपने कथावाचक (Narrator) को जमींदारी की ओर से खड़ा बड़ी सहानुभूति के साथ उनकी जड़ता और विवशता को चित्रित कराता है । वह यह प्रयत्न करता है कि पाठक यह समझें कि एक विशिष्ट पद्धति में फंसे हुए समाज के व्यक्ति अपनी हठ बन जाते हैं, वह व्यक्ति नहीं रह जाते । दोष व्यक्ति का नहीं, उस पद्धति का है, जिसे बदलने का प्रत्येक प्रयत्न आदत में पड़े हुए मनुष्य को दुख देगा । अपनों को यदि दुख होता है, भले ही वह उनकी अपनी ग़लती के कारण हो, तो भी सनेहियों को उनसे सहानुभूति आवश्यक है । किन्तु हमारी नजर में एक सबसे बड़ा कारण राही का जमींदारों के पक्ष में खड़े होने का यह है, जिसे स्वयं राही ने कहा है 'चिन्तन में मैं मार्क्सवादी हूं । कम्युनिस्ट; कम्युनिस्ट ही होता है । लेफ्ट या राइट नहीं होता । मेरी व्यक्तिगत ट्रेजडी यह है कि जब जमींदारी थी तो मैं उसके जुल्म के खिलाफ लड़ता था । जमींदारी खत्म हो गई तो मेरी आत्मा खुश है, लेकिन भावनात्मक स्तर पर मैं परेशान हूं, क्योंकि यह भी देखता हूं कि छोटा जमींदार सामान्य किसान से भी ज़्यादा ग़रीब हो गया है । इसी ने मुझसे 'आधा गॉव' लिखवाया ।' [161] कदाचित इसी कारण राही परसराम चमार एम.एल.ए. के व्यवहार को सह नहीं पाते तथा उसे भ्रष्टाचार के आरोप में जेल भिजवाते हैं ।

जमींदारी उन्मूलन ने किसान को मालिक के पद पर अवश्य बिठा दिया, परंतु जमीन का पुनर्वितरण बहुत कम हुआ । बाद में बने भूमि सुधार कानून से भी भूमिहीन किसान का हित अत्यंत स्वल्प ही हुआ, परंतु शिया जमींदारों के संबंध में यह अवश्य हुआ कि जमींदारों के विशेषाधिकार, सामाजिक मर्यादा, आर्थिक सुविधा एवं

---

[160] वही, पृ0 146

[161] सारिका, अगस्त 1970, पृ0 87 । डॉ राही मासूम रज़ा से सुदीप की एक अंतरंग बातचीत ।

साधन छिन गए । उनके हाथ से वह सब निकल गया, जिसके चलते वह सामाजिक एवं आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त किए हुए थे । अब उनके पास जीविकार्थ कुछ नहीं रह गया था । जबकि इसका लाभ छोट और सीमांत किसानों को भी नहीं मिल पाया । इसी कारण राही पुराने किसान-जमींदार संघर्ष के कथा-अभिप्राय को यहां प्रस्तुत करना निरर्थक समझते हैं, जो प्रेमचन्द के उपन्यासों से लेकर नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त तक के उपन्यासों में प्रमुख स्थान पाता रहा । वस्तुतः देश और काल के परिपार्श्व में राही के 'आधा गॉव' की गंगौली के लोगों की जड़ता, कूपमंडूकता और खोखली शान उद्‌घाटित हुई है । इस उपन्यास का कथावाचक आलोचनात्मक यथार्थवादी नहीं है और न सुधार के लिए उतावला है । उसने परिस्थितियों का अध्ययन एवं अवलोकन करके पात्र-संगुम्फन द्वारा परिस्थितियों में बनते-बिगड़ते तथा टूटते-छटपटाते व्यक्ति की चित्र प्रस्तुत किया है, जो मानवीय सहानुभूति की अपेक्षा रखती है; नैतिकतावादी सुधारकों की कठोरता एवं नीरसता के उपदेश नहीं ।

जमींदार वर्ग की रंगीन तस्वीर प्रस्तुत करने के लिए राही ने अपने उपन्यासों में अनेक आमोद-प्रमोद चित्रित किए हैं । ''तमाम छोटे जमींदार गिरोहबंद थे । रात को डाके डलवाते थे और दिन को मुक़दमे लड़वाते थे । कभी इसे बेदखल किया और कभी उसे दखल दिलवा दिया । इसी हेर-फेर में सौ-पचास खरे हो जाते थे ।.... क़ानून अपनी जगह, लेकिन अगर कोई बात शान के खिलाफ हो गई तो थाना फुंक गया ।'' [162] 'आधा गॉव' उपन्यास में ही इस प्रकार के रंगीन मिजाज व्यक्तित्वों में से एक हैं फुन्नन मियां । जिनमें जमींदारी और शक्ति का विलक्षण सम्मिश्रण है । फुन्नन मियां की बहादुरी और हिम्मत की प्रस्तावना इन शब्दों में की गई है । 'फुन्नन मियां कसरती आदमी थे । उनके बदन में ताक़त थी और वे लाठी चलाने के हुनर में माहिर थे । जमींदारी तो नाम की थी, लेकिन शान सबसे बढ़कर । आजीवन कासिमाबाद के थानेदारों, दरोगाओं से लड़ते रहे और कोई भी पुलिस अधिकारी उनका बाल बांका न कर सका । मुक़दमे लड़वाने के दॉवपेचों में भी वे कुशल थे और इसी तरह की कार्यवाहियों में उन्हें आनंद मिलता था । उनके माथे किसी डाके का अपराध तो नहीं लगा लेकिन फौजदारियों में हमेशा शामिल रहते और अपने शागिर्दों के साथ अपनी जवांर में प्रख्यात हो गए थे ।'

जमींदारों के आमोद-प्रमोद के कई साधन थे । उनमें एक था तवायफ़ों के नाच और गाने । 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास में हिम्मत के पिता शेख सलामत अली 'नादिर'

[162] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 75

एक कोठे पर जाते और इमाम बॉदी नामक तवायफ़ के साथ इश्किया शायरी करते, जो बाद में उनकी पत्नी भी हुईं । [163] 'आधा गॉव' में फुन्नन मियां अपने जमींदार मित्रों के साथ रात-भर तवायफ़ों से ग़ज़लें सुनते और उनके नाच देखते । किस रंडी की नथ कौन उतारेगा, इसमें प्रतिस्पर्धा होती थी । अपनी शान के लिए मनचले जमींदार सैकड़ों रुपए खर्च कर देते और बीघों जमीन बांट देते । लौंडे रखने का भी शौक़ था, जिसका विस्तृत वर्णन 'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यास में किया गया है । 'आधा गॉव' के एक दृश्य में फुन्नन मियां एक लौंडे की शोखी सहन नहीं कर पाते और उसके मालिक के सामने उसे तमाचा मार देते हैं । इसी प्रकार की एक महफिल से रात को लौटते हुए वे मार डाले जाते हैं । इस प्रकार कथावाचक ने वर्णनों और घटनाओं के चित्रण से शोषक वर्ग की शान-शौकत और आमोद-प्रमोद के साधनों को प्रस्तुत किया है, जिनसे इस वर्ग की जीवन-शैली पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है ।

जमींदारी उन्मूलन के बाद और पाकिस्तान के निर्माण के उपरांत भी जमींदारों की खोखली शान खीझ और ग़ुस्से में परिणत हो जाती है । ये व्यक्ति बीते दिनों की याद में 'मर्सिये' गा-गाकर वर्तमान की दुर्गति को सहने के लिए कभी कांग्रेस को तो कभी अपने भाग्य को कोसते हैं । 'आधा गॉव' में ग़ाज़ीपुर क्षेत्र का कांग्रेसी नेता उन्हें बताता है ''और आप लोग तो जानते हैं कि पाकिस्तान बन जाने से मुसलमानों की पोजीशन हिन्दुस्तान में कितनी नाजुक हो गई है ।'' [164] गंगौली का बिगड़ा हुआ जमींदार वर्ग इस यथार्थ को सहन नहीं कर पाता, पर विवश है ।

उपर्युक्त विवरण से जमींदार वर्ग का जो चरित्र-स्थापन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि ग़रीब लोगों के जीवन-स्तर और जमींदार-वर्ग के जीवन-स्तर में आकाश-पाताल का अंतर है । एक शोषित था तो दूसरा शोषक ।

ख. महाजन

भारतीय समाज में संपन्न तथा विपन्न वर्ग की खाई बढ़ती गई । ग़रीब और ग़रीब होता चला गया और महाजन उनका शोषण करते रहे । राही के उपन्यास-साहित्य में महाजनों द्वारा वंचितों एवं असहायों के किए गए शोषण की अनेक झांकियां देखने को मिलती हैं । महाजनों के पास ग़रीब-मजदूरों के शोषण की

[163] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 41
[164] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 349

अपरिमित योजनायें थीं । महाजन इस बात की फिराक में रहते थे कि अमुक समय में अमुक व्यक्ति की लाचारी का लाभ कैसे उठाया जाय? इन लोगों का मनुष्यता से कोई संबंध नहीं होता । 'सीन : '75' उपन्यास का लाला अशरफीलाल ऐसा ही महाजन है, वे ''हरिजन हो या शर्मा ब्राह्मण सबसे बराबर सूद लेते थे, सब पर बराबर नालिश करते थे और सबके यहां बराबर कुर्की लाते थे ।'' [165] महाजन अपने कारखानों में तैयार उत्पादों को अपने अर्थ, अर्थ और अर्थ की ही पूर्ति के लिए तैयार करवाते थे । वे मानवता का गला घोंटने में भी कोई संकोच नहीं करते । मुंह में राम बगल में छुरी के यह जीवन्त प्रतिमूर्ति होते हैं । 'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यास में सेठ मनोहरलाल ऐसा ही पात्र है । वह अपने भाषणों में मनुष्यता की हजार बार दुहाइयां देते हैं, परंतु अपने कारखाने में जहरीली दवाइयों का निर्माण कराते हैं । राही अपने इस उपन्यास में इस विडंबनापूर्ण स्थिति का विरोधाभास शैली में चित्रण कर एक भयावह दृश्य उपस्थित करते हैं ''हम-आप जैसे साधारण लोग उनके कारखाने में दवाइयां खाकर मरना पसंद करते हैं । सेठ साहब को ग़रीबों का इतना ख़्याल था कि उनकी मिल ग़रीबों के लिए एक ख़ास कफ़न तैयार किया करती थी, जो टिकाऊ भी होता था और सस्ता भी । उस कपड़े का नाम ही कफन था....परंतु जब महंगाई हद से ज़्यादा बढ़ गई तो लोग उसी कपड़े को पहनने लगे ।'' [166]

राही के उपन्यासों के महाजनों को देखते हुए प्रतीत होता है कि इनका जीवन ही मानो वास्तविक जीवन है । ये लोग ही समाज में जीते हैं, सांस रुकने से पहले भी और सांस रुकने के बाद भी । मरने के बाद इनके नाम से सड़क बनवाई जाती है, मिलें बनती हैं, स्टेडियम बनते हैं, नगर बसते हैं; जिससे इनका नाम समय की धारा में प्रवाहित न हो जाय । 'सीन : '75' में एक ऐसे लाला जी का वर्णन उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में किया गया है ''यदि लाला अशरफी लाल बड़े आदमी न रहे होते और यदि दोनों बेटों का इकलौता साला उत्तर प्रदेश में उपमंत्री न लगा होता और उस साले का साला बंबई में बड़े पैमाने पर सोशल वर्कर न रहा होता तो उस सड़क का नाम 'अशरफी लाल मार्ग' न पड़ा होता ।'' [167] 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में भी 'पं0 शिवशंकर पाण्डेय मार्ग' की कहानी के पीछे यही इतिहास है ।

'सीन : '75' उपन्यास में एक पात्र छत्ताराम मनचंदानी अपने किराएदारों का आर्थिक शोषण करता है । जब उसकी कालोनी का एक किराएदार अली अमजद

[165] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 11
[166] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 48-49
[167] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 13

आत्महत्या कर लेता है । छत्ताराम उसके फ्लैट की खरीद-फरोख्त में संलग्न हो जाता है । वह अपनी पत्नी से बातचीत में कहता है ''कैसे भी मरा हो । मुझे वह फ्लैट चाहिए ।'' [168]

अतः स्पष्ट है कि महाजनों की सोच समाज के असहाय एवं निम्न वर्गों के प्रति असहिष्णुतावादी एवं शोषणपरक थी । उनके न कोई जीवन मूल्य थे और न ही नैतिक मूल्य ।

ग. पूंजीपति/संपन्न वर्ग द्वारा चारित्रिक शोषण

सामंतशाही व्यवस्था का संवाही वर्ग राही के उपन्यासों में चित्रित हुआ है । यह वर्ग भोग विलासी एवं अवसरवादी प्रवृति का होता है । यह वर्ग अपने से निम्न हैसियत वाले लोगों से मिलना-जुलना पसंद नहीं करते । राही के उपन्यासों का रचना-समय ही कुछ ऐसा था, जिसमें मध्य वर्ग कठिन परिश्रम करने के पश्चात भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता था । उसे विभिन्न अवसरों पर अपने से ऊँची हैसियत रखने वाले लोगों के साथ मैत्री रखनी पड़ती है । राही के 'सीन : '75' उपन्यास में इस स्थिति का दिग्दर्शन हुआ है । इस उपन्यास में रमा और सरला के समलैंगिक संबंधों के पीछे रमा की आर्थिक मजबूरी ही छिपी हुई है । सरला संपन्न थी, किन्तु शौक नहीं रखती थी, जबकि ''रमा की ट्रेजडी यह थी कि वह शौकीन मिजाज थी और उसके पति भोलानाथ की आमदनी रमा के शौक से बहुत छोटी पड़ जाया करती थी । इसलिए रमा भी सरला को हाथ से निकलने नहीं देती थी । रमा के सेनिमा के शौक का खर्च भी सरला ही उठाती थी और सालगिरह के दिन वह रमा को एक नई और क़ीमती साड़ी पहनाकर सबके सामने लिपटाकर उसका मुंह चूमा करती थी ।'' [169] 'आधा गॉव' उपन्यास की गुलाबी जान भी कुछ पैसों के लिए कासिमाबाद के थानेदार ठाकुर हरनारायण प्रसाद सिंह के साथ सहवास करने को विवश है ।

इससे स्पष्ट है कि प्रभुत्व संपन्न वर्ग द्वारा निम्न-मध्य वर्ग का चारित्रिक दोहन भी किया जाता था ।

---

[168] वही, पृ0 128

[169] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 87

घ. पुलिस द्वारा शोषण

वर्ग-वैषम्यता से परिपूर्ण समाज में पूंजीपतियों, जमींदारों, महाजनों आदि के अतिरिक्त समाज के प्रहरी माने जाने वाले पुलिस विभाग द्वारा भी दीन-हीनों और वंचितों का आर्थिक शोषण किया जाता है । राही के उपन्यासों में कई जगह पुलिस शोषण के चित्र देखे जा सकते हैं । 'कटरा बी आर्ज़ू' उपन्यास का पुलिस इंस्पेक्टर अशरफुल्ला खां बिना शिकायत के ही अपनी मोटरगाड़ी वर्कशाप में भेज देता है । वर्कशाप का मिस्त्री कहता है ''बाप का गैरिज है, भेज दिया सफाई के वास्ते । ''[170] इसी उपन्यास में हवलदार जगदंबा प्रसाद बिल्लो की लाउण्ड्री के बकाया 5 रुपये 40 पैसे अदा नहीं करता है । बिल्लो के उधारी मांगने पर उल्टे उसका बदला आपातकाल के दिनों में बिल्लो के पति देशराज को बुरी तरह यातनाएं देकर लेता है । बकाया पैसा मांगने के प्रश्न पर एक मुंहबोला भिखारी इतवारी बाबा बिल्लो से एक उलटबांसी पूर्ण कथन कहता है ''मांगने से फायदा का? भीख मांगने में सबसे बड़ा फायदा यही है कि कोई न दे तो बुरा नहीं लगता । अपना पैयसा मांगने में ई खराबी है कि कोई न दे तो खून खौलने लगता है ।'' [171]

पुलिस द्वारा आर्थिक शोषण व्यक्तियों के आपस के मनमुटाव एवं वैमनस्य के कारण परस्पर अहित एवं नुकसान पहुंचाने की भावना के कारण भी किया जाता है । समाज में एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति पाई जाती है । मनुष्य की यह प्रवृत्ति उसकी अहं भावना की संतुष्टि के लिए नाना प्रकार के प्रपंच रचने के रूप में सामने आती है। 'आधा गॉव' उपन्यास का एक बहावी पात्र अनवारुल हसन राकी मौलवी बेदार पर फौजदारी का मुक़दमा चलाने के लिए थानेदार तथा दीवान समीउद्दीन खां को नाश्ता कराने के साथ-साथ पांच सौ रुपये भी देता है ।'' [172] मौलवी बेदार की पट्टी भी थानेदार को खुश रखने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ता । मौलवी के पक्ष का एक व्यक्ति हकीम अली कबीर अपने नौकर से एक हिन्दू हलवाई के यहां से थानेदार को मिठाई भिजवाता है ।

च. धर्म गुरुओं द्वारा शोषण

---

[170] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्ज़ू, पृ0

[171] वही, पृ0 48

[172] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 73

राही के कुछ औपन्यासिक पात्र धर्म गुरुओं से पीड़ित थे । 'आधा गॉव' उपन्यास में मासूम को बचपन में पढ़ाने वाले मौलवी मासूम को दैनिक खर्च के लिए मिलने वाली इकन्नी भी ले लिया करते थे ।[173] राही ने अन्यत्र भी किसी साक्षात्कार में इस तथ्य का खुलासा किया है । वह कहते हैं कि मेरे पास पैसा खूब कमाने के बाद भी रहता नहीं है । वह उसे आने के बाद तत्काल खर्च कर देते हैं । जिसका कारण राही का उपर्युक्त ढंग से बीता उनका बचपन है ।

तथापि राही के उपन्यासों में मौलवी-पंडितों, पंडों, ज्योतिषियों इत्यादि द्वारा किया जाने वाला शोषण बहुत कम मात्रा में उद्‌घाटित हुआ है ।

2. शोषित वर्ग

सामंतशाही तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप भारतीय समाज तीन वर्गों (निम्न, मध्य एवं उच्च)में विभक्त हो गया था । मध्यवर्गीय परिवारों की विशालता एवं व्यापकता को देखते हुए अर्थशास्त्रियों ने इनमें भी निम्न-मध्य वर्ग, मध्य-मध्य वर्ग एवं उच्च-मध्य वर्ग नाम से तीन वर्ग निर्धारित किए हैं किन्तु कुल मिलाकर आज औद्योगीकरण तथा वैश्वीकरण (Globalization) के कारण यही; निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग; तीन वर्ग विद्यमान हैं । डॉ मंजुलता सिंह के अनुसार 'वर्ग या श्रेणी किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है, जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण क साधनों द्वारा होता है । इसके साथ ही वंश-परंपरा, शिक्षा, आय, रहन-सहन का स्तर तथा व्यक्ति की प्रतिभा भी उसे विशिष्ट वर्ग का व्यक्ति प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है ।'' [174] उच्च वर्ग निरंतर आर्थिक संपन्नता प्राप्त करता हुआ अपनी स्थिति उत्तरोत्तर सुदढ़ कर रहा है । इस अर्थव्यवस्था में निम्न वर्ग अपनी दशा सुधारने के लिए जूझ रहा है, परंतु विडंबना यह है कि वह व्यवस्थागत खामियों के चलते और ग़रीब होता जा रहा है । मध्य वर्ग कुछ सुख की सांस ले रहा है, तो कुछ गलघोंटू सांस से जीवित है । राही के उपन्यासों में इन सभी वर्गों का रूप देखने को मिलता है ।

उच्च वर्ग के अंतर्गत जमींदार, पूंजीपति, बड़े व्यापारी, उच्चाधिकारी तथा मिल मालिक आते हैं । इस वर्ग के लोग अवसरवादी, भोग विलासी तथा शोषक मनोवृत्ति के

---

[173] वही, पृ0 17

[174] डॉ मंजुलता सिंह, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, पृ0 2

होते हैं । इनमें सामंतशाही प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । जिससे ये शेष समाज में घुले-मिले नहीं होते हैं । इस वर्ग के पात्रों का राही के उपन्यासों के शोषक वर्ग के पात्रों के संदर्भ में अध्ययन किया जा चुका है ।

मध्य वर्ग के लोग समाज में कड़ी का काम करते हैं । इस वर्ग को समाज का मेरुदण्ड कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । आज के अर्थशास्त्रियों की दृष्टियों में मध्य वर्ग के तीन रूप देखने को मिलते हैं; उच्च-मध्य वर्ग, मध्य-मध्य वर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग । उच्च-मध्य वर्ग के माध्यम से सामंतशाही अथवा पूंजीवादी लोग समाज के अन्य वर्गों का शोषण करते हैं । यह वर्ग पूंजीपति तथा जमींदार वर्ग की हां में हां मिलाकर ही अपनी सुख-संपन्नता को बनाए रखता है ।

मध्य-मध्य वर्ग में अधिकांशतः समाज सुधारक, देशभक्त तथा सक्रिय राजनीति में भाग लेने वाले लोग आते हैं । यह चिंतनशील, बुद्धिजीवी विचारकों का वह वर्ग है, जो समाज सेवा का संकल्प लिए होता है । इस वर्ग के विषय में डॉ चण्डी प्रसाद जोशी का विचार है 'राष्ट्रीयता ही उसका धर्म रहा है तथा सामाजिक सुधार आंदोलन ही उसका मंत्र ।' [175] किन्तु कुछ विचारकों की मान्यता है कि यह वर्ग निम्न-वर्ग के ऊपर रहकर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर उससे कटना चाहता है और उच्च वर्ग से स्पर्धा कर उससे जुड़ना चाहता है । इसे सफलीभूत बनाने के लिए वह प्रातः 9 बजे से सायं 6 बजे के बीच वही काम करता है, जिसको लेकर मार्क्स ने शोषितों की ओर से क्रान्ति का आह्वान किया था और इस शेष समय (सायं 6 बजे से प्रातः 9 बजे तक) में वह शोषितों की ओर से सम्मिलित रहने को भी तत्पर रहता है । तात्पर्यतः वह शोषक वर्ग और शोषित वर्ग दोनों में विद्यमान रहता है । परिणामतः वह न तो उच्च वर्ग से जुड़ पाता है और न ही निम्न वर्ग से वह अलग हो पाता है । वह दोनों के बीच पिसकर रह जाता है और उसका आर्थिक संतुलन विगड़ जाता है । यह आर्थिक असंतुलन उसमें विद्रोह और क्रान्ति की भावना को भर देता है ।

निम्न-मध्य वर्ग अपने जीवन की सदा तिकड़म भिड़ाता रहता है और समाज में सम्मान पाने के लिए जूझता रहता है । यह वर्ग झूठा सम्मान प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति से अधिक व्यय कर देता है । जिसके कारण वह आर्थिक संकट में आ जाता है । फलस्वरूप उसे पछताना पड़ता है ।

---

[175] डॉ चण्डी प्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ0 328

मध्य-वर्ग के वर्गीकरण के संबंध में डॉ शशिभूषण सिंहल का विचार है 'गॉव में मुख्यतः दो वर्ग ही होते हैं । एक वर्ग साधारण श्रमिक जन का, दूसरा वर्ग पैसे वाले समर्थ और सम्मान पाने वालों का । इन्हें क्रमशः निम्न और उच्च वर्ग कह सकते हैं । मध्य वर्ग का यहां अभाव-सा रहता है । किन्तु डॉ सिंहल क॓मत से यहां सहमत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि राही के उपन्यासों में हमें मध्य वर्ग के उक्त तीनों रूप देखने को मिलते हैं । राही जी ने ग्रामीण तथा शहरी परिवेशों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं जीवनानुभव प्राप्त किया था । इस असहमति की पुष्टि में राही का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है '(आदमी) एक वह होता है, जो ख्वाब देखने का हौसला करता है और अपने ख्वाब के लिए जान पर खेल जाता है । एक वह होता है, जो आज की दुकान में अपने भविष्य को गिरवी रखकर दाल रोटी चला लेता है । और एक वह होता है, जिसे अपने भविष्य की खबर ही नहीं होती ।' [176] ये तीन रूप मध्य वर्ग के उक्त तीनों प्रकारों का ही प्रकारांतर कथन है ।

निम्न-वर्ग में श्रमजीवी किसान तथा मजदूर होते हैं, जो जीवन-यापन के संघर्ष में सदा जूझते रहते हैं । हरिवंशराय बच्चन की ये पंक्तियां ऐसे लोगों पर सटीक बैठती हैं 'जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला कुछ देर, कहीं पर बैठ, कभी यह सोच सकूं ? जीवन में जो कुछ किया, कहा, माना; उसमें क्या बुरा भला ?' उनके श्रम का प्रतिदान उन्हें भरपेट रोटी जुटाने के रूप में भी नहीं मिल पाता । इस वर्ग के अधिकांश लोग अशिक्षित, परंपरागत धार्मिक रूढ़ियों एवं व्यवस्थाओं में विश्वास करने वाले होते हैं ।

सामंतशाही के पतन के कारण अंग्रेजी शासन काल में उसके दो परिवर्तित स्वरूप प्रकट हुए - जमींदार वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग । इन दोनों वर्गों ने किसान-मजदूरों का शोषण करना आरंभ कर दिया । परिणामस्वरूप वर्ग-संघर्ष का सूत्रपात हुआ । इस वर्ग संघर्ष में जहां किसानो तथा मजदूरों में आर्थिक शोषण तथा सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की चेतना जाग्रत हुई, वहां अपने अहं तुष्टि हेतु उन वर्गों के भीतर स्वयं भी एक छटपटाहट थी । प्रेमचन्द कालीन एवं उनके परवर्ती उपन्यासकारों की रचनाओं में यह संघर्ष दो रूपों में उभरकर आया है - प्रथम जमींदार और किसान के बीच चलने वाला अर्थ-संघर्ष तथा दूसरा उद्योगपति और श्रमिक के बीच चलने वाला वर्ग-संघर्ष । जनवादी उपन्यासकार तथा स्वयं जमींदार परिवार से आने से उत्पन्न अनुभूति चलते अपने समकालीन रचनाकारों की भॉति राही

[176] धर्मयुग, 9 फरवरी 1973, पृ0 25 । डॉ राही मासूम रज़ा - हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया

ने जमींदारों के अत्याचारों तथा यातनाओं का वर्णन तो अपने उपन्यासों में किया है किन्तु जमींदारों की परेशानियों तथा जमींदारी उन्मूलन के उपरांत उनकी दीन-हीन स्थिति के चलते जमींदारों से सहानुभूति भी उन्होंने अपने समकालीन तथा अपने समान विचारधारा वाले रचनाकारों के विपरीत दिखाई है । यह स्थिति उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग खड़ा करती है । इसी कारण उनके उपन्यासों में किसान-मजदूर तथा मजदूर-पूंजीपति संघर्ष उतने मुखर रूप में हमारे सामने नहीं आया है जितना समकालीन रचनाकारों में उपलब्ध है । फिर भी राही के उपन्यासों में सांकेतिक रूप में आए जमींदार-किसान तथा मजदूर-पूंजीपति संघर्ष का चित्रण अधोलिखित रूपेण है

क. जमींदार-किसान संघर्ष

जन्मजात संस्कार और प्राकृतिक परिवेश के कारण राही को शहर की अपेक्षा गॉवों से अधिक और गॉवों से भी अधिक अपनी मातृभूमि गंगौली से आत्मिक लगाव रहा है । अपने घर के प्रति होने वाले इस अनुराग को बहुत से समीक्षक विद्वानों ने 'नास्ताल्जिया' नाम दिया है । इसके अंतर्गत घर के प्रति लगाव एक रोग की सीमा तक पहुंच जाता है । इसी से उनके प्रमुख उपन्यास 'आधा गॉव' सहित अधिकांश उपन्यासों में मजदूरों की अपेक्षा किसानों, जो छोटे-छोटे जमींदार भी हैं, के जीवन के विविध सुख-दुख वर्णित हुए हैं । राही के समय जमींदार अधिक सुख-सुविधाओं का उपभोक्ता होने के कारण कृषक को अपना दास समझता था तथा उसकी मूलभूत आवश्यकताओं को भी नकारता था । इस प्रकार जब जमींदारों के प्रभाव और आतंक का सूरज तप रहा था, तब शोषित वर्ग में से कुछ युवक यह अनुभव कर रहे थे कि जमींदारों का सारा वैभव उनके श्रम की नींव पर खड़ा है । बाहर से भले ही कुछ दिखाई न दे, किन्तु शोषित वर्ग के भीतर ही भीतर जमींदारों के व्यवहार से संत्रस्त एवं कुण्ठित था । जमींदारों की पीड़ा से ब्यथित सफिरवा एक छोटे किसान मिगदाद को अपने मन का भय बताता हुआ कहता है ''अरे जमींदारी खतम हो जयहे, त ई किसान लोग जमींदारन को हिआं रहे दीहें भला ?'' [177]

राही के समय किसान-मजदूर वर्गों में संघर्ष के लिए एक नवीन चेतना का उदय हुआ । अर्थ-वैषम्य से उत्पन्न हुए दयनीय जीवन को तो उन्होंने भोगा ही, शोषण का कुठाराघात भी सहन किया । किन्तु शोषण के अतिक्रमण से ऊबकर वह संघर्ष के जुझारू कार्यक्रमों के लिए एक दृढ़ संगठन बनाने लगा ''बाक़ी हमारे लोगन की

[177] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 289

यूनियनो सालन की चीरे रह थी एक मरतबा त....।'' [178] जमींदारों के प्रति किसान वर्ग में अधिकार भावना का उदय हुआ । 'आधा गॉव' में मिगदाद अपने पिता से अपने हिस्से की जमीन की मांग करता है और इसमें वह सफल भी हो जाता है । मिगदाद इस उपन्यास का सर्वाधिक सफल पात्र है, जो जमींदारी उन्मूलन के बाद भी अपने हल-बैलों के सहारे आनंदमय जीवन व्यतीत करता है ।

इस प्रकार जमींदारों तथा किसानों के मध्य संघर्ष मुख्य रूप से स्वत्वों का संघर्ष था । किसानों में संघर्ष की चेतना निश्चित ही जमींदारों के शोषण की प्रतिक्रिया थी ।

ख. मजदूर-पूंजीपति संघर्ष

श्रम का उचित प्रतिदान न देना ही मजदूर-पूंजीपति संघर्ष का कारण है । उद्योगपति सरकार और पुलिस का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहारा लेकर मजदूरों की मांग को नकारता रहा है अथवा बहाने बनाकर टालता रहा है । श्रमिक वर्ग विवश होकर हड़ताल का मार्ग अपना लेता है । उसमें कई बार श्रमिक वर्ग को जोखिम भी उठाना पड़ता है । हमारे देश के उद्योगपति धूर्त और चालाक हैं । वे पुलिस और सरकार पर तो खर्च कर देते हैं । तालाबंदी तथा हड़तालों के परिणामस्वरूप घाटा सहन करने को भी तैयार रहते हैं, किन्तु श्रमिक की मजदूरी बढ़ाना स्वीकार नहीं करते । उद्योगपति कूटनीति का सहारा भी लेते हैं । यदि मजदूर यूनियन में कोई प्रभावशाली तथा मुखर व्यक्ति है, तो वे उसको नाना प्रकार से बहलाते-फुसलाते हैं । वर्कशाप में काम करने वाले मात्र दो मजदूरों के वेतन बढ़ोत्तरी, किन्तु शेष को उनकी मांग से वंचित रखने के प्रश्न पर आशाराम मोटर गैराज के मालिक के विरुद्ध हड़ताल कराता है । 'इंकिलाब जिंदाबाद' के नारे लगाता है । इस हड़ताल का समर्थन करता हुआ देशराज कहता है ''ग़रीब तो हमस ब हैं । फिर दू आदमी की तनख्वाह क्यों बढ़े ? आसाराम ने जिन्दगी में एक ही बात तो पते की कही कि पूंजीपति जहर दे तो समझो कि परेसानी की कोई बात नहीं, मुदा उ माल पुवा खिलाए लगे तो समझ लो कि कोई खतरे की बात जरूर है ।'' [179]

---

[178] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 289

[179] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 74

अतः स्पष्ट है कि श्रमिक-वर्ग जीवन की मुख्य आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु दिन-रात जी-जान से काम करने के फलस्वरूप वेतन-वृद्धि तथा अन्य भत्तों की मांग करने हेतु विवश है । उसके सामने, भूखा मरना और संघर्ष करना, दो ही मार्ग रह जाते हैं; जिसमें उसने संघर्ष को ही श्रेयस्कर समझा । राही ने जनवादी लेखक होने के नाते पीड़ित-जन को जीवित रखने के लिए मजदूर-पूंजीपति संघर्ष के माध्यम से शोषकों पर अनेकविध प्रहार किए हैं ।

कुछ समीक्षक विद्वानों के मत से राही के उपन्यासों में परंपरावादी रूढ़ समाज का चित्रण किया गया है । ऐसे जड़ और रूढ़िवादी समाज से वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति की अपेक्षा नहीं की जा सकती । उनकी मान्यतानुसार राही यह मानते ही नहीं कि भारतीय ग्रामीण समाज में वर्ग-भेद के प्रति जागरूकता है । यह ऐसे लोगों का समाज है, जो मुश्किलों को मौला मुश्किलकुशा को सुपुर्द करके मोहर्रम में रोते हैं और शोक मनाते हुए बेहोश होकर गिर पड़ने की होड़ लगाते हैं ।

इस समस्या के मूल में हमें स्वातंत्र्योत्तर काल की ओर देखना होगा । जिसका सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा परिवर्तन ग्रामीण जीवन तथा कृषि अर्थ-व्यवस्था में देखा गया था । जमींदारी उन्मूलन, कृषि का आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, सहकारी खेती, चकबंदी, भूमि-सुधार आदि नए क़ानूनों से भारतीय ग्राम्य-जीवन में उथल-पुथल हुई । औद्योगिक उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों का आधिपत्य हुआ । वहीं ग्रामीण स्तर पर एक ऐसे नए वर्ग का उदय हुआ, जिसमें भू-स्वामी और पूंजीपति दोनों के गुण विद्यमान थे । पूंजीपति और राष्ट्रीय बुर्जुआ ने अपने हितों की रक्षा के लिए जमींदारी उन्मूलन क़ानून पास किया, जिससे इन पूंजीपतियों को लाभ हुआ, किन्तु जमींदारी उन्मूलन के बाद के किसानों को कोई विशेष लाभ नहीं मिला । राही के औपन्यासिक पात्र इसी चेतना का द्योतन करते हैं । जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदार किसानों के घर खाली होते जा रहे थे । यहां तक कि खाने तथा पहनने के लिए भी कुछ उपलब्ध न था । इस संदर्भ में उपन्यासकार विरोधाभासी शैली में मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है ''हर घर में अंबारों बक्स थे । हर जनाने कमरबंद में कुंजियों का भारी गुच्छा था, पर बक्स खाली थे । तालों की कोई जरूरत न थी, पर औरतें कुंजियों के गुच्छों से चिमटी हुई थी; क्योंकि वही उनकी खुशहाली के जमाने की यादगार रह गए थे ।'' [180]

[180] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 340

इन्हीं परिस्थितियों में 'आधा गॉव' के जमींदार फुस्सू मियां को अपनी जातीयता का गर्व भुलाकर इमामबाड़े में जूतों की दुकान खोलनी पड़ती है । जमींदारों ही के पुत्रगण उस डॉक्टर कमालुद्दीन के यहां नौकर के रूप में काम करने को विवश हो जाते हैं, जो इन्हीं जमींदारों की क़लमी संतान है । सईदा को अपने परिवार के प्रबल विरोध के बावजूद अध्यापक की नौकरी करनी पड़ती है ।

इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राही के औपन्यासिक पात्र, विवश होकर ही सही, अपनी मानसिकता परिवर्तित करने में लगे हैं और इसी कारण कुछ समीक्षकों को राही के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की भावना नजर नहीं आती, क्योंकि उनके पात्र वस्तुतः परिस्थितियों से समझौता करने में लगे हुए हैं । यह परिस्थिति सामंजस्य उनके उपन्यास 'आधा गॉव' में वर्णित मुख्य त्योहार मोहर्रम की केन्द्रीयता में देखा जा सकता है ।

ग. शोषितों के विभिन्न रूप

i. संप्रदायगत शोषण : देश विभाजन के बाद पाकिस्तान से हिन्दू एवं भारत से मुसलमान भगाए जाने लगे थे । इन परिस्थितियों से उद्भूत कुछ प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने अल्पसंख्यक मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं में घृणा की भावना जाग्रत की । कुछ हिन्दुओं को यह विश्वास हो गया कि ''अगर ये सारे मुसलमान पाकिस्तान भेज दिए जाएं तो जो नौकरियां इन्हें मिलती हैं, वह भी हिन्दुओं ही को मिल जाएंगी ।'' [181] इसकी प्रतिक्रिया मुस्लिम संप्रदाय में भी हुई । एक मुस्लिम पात्र अनवर कहता है ''सारे हिन्दुस्तान की नौकरियां हिन्दुओं के लिए हैं, तो क्या एक मुस्लिम यूनिवर्सिटी भी मुसलमानों की नहीं हो सकती ।'' [182] इस तनाव के परिणामस्वरूप मुसलमानों की संस्थाओं में हिन्दुओं को नौकरी मिलना बंद हो गया, तो हिन्दुओं की संस्थाओं में मुसलमानों के लिए दरवाजे बंद हो गए । इस भावना ने मुसलमान युवकों में भारत के प्रति अनास्था पैदा की । वे सोचने लगे कि भारत में अपनी उन्नति असंभव है । इसीलिए कुछ युवक रोजगार की तलाश में कराची और लाहौर जाने का प्रयत्न करने लगे । इस स्थिति का निरूपण 'आधा गॉव' उपन्यास के हकीम साहब तथा उसके बेटे की बातचीत में देखा जा सकता है । हकीम साहब अपने बेटे कुद्दन से कहते हैं ''ऐ

[181] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 96
[182] वही, पृ0 87

बेटा तूहे पाकिस्तान जाए की कउन जरूरत है । त बोले की हियां मुसलमानन की तरक़्क़ी का रास्ता बंद हो गया है ।'' [183]

ii. बेरोजगारीगत शोषण : राही के पात्र बेरोजगार होने के कारण भी शोषित होने के लिए अभिशप्त हैं । 'टोपी शुक्ला' का टोपी हिन्दी से एम.ए, पी-एच.डी. होने के बावजूद दर-दर की ठोकरें खाने को विवश है । क्योंकि वह हिन्दू है, इसलिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय सहित किसी मुस्लिम संस्था में नौकरी नहीं मिलती और क्योंकि वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में पढ़ा है, इसलिए हिन्दू उसे मुसलमान समझकर नौकरी से वंचित रखते । इस स्थिति को राही खतरनाक बताते हुए कहते हैं ''यह नौकरी दोधारी तलवार है । एक तरफ हिन्दुओं को मुसलमानों से काटती है और दूसरी तरफ मुसलमानों को हिन्दुओं से ।'' [184] टोपी की बेरोजगारी से आई आर्थिक तंगी उसे अपने मित्र इफ्फन और सकीना के आश्रित रहने को विवश कर देती है ।

बेरोजगारी के कारण राही के अधिकांश पात्र योग्यतम होते हुए भी वह करने को अभिशप्त हैं, जिसको सुनकर दिल पसीज उठता है । 'सीन : '75' का अली अमजद एक लेखक होते हुए भिखमंगे संगठन के लिए नारे लिखता है । 'हिम्मत जौनपुरी' के शेख सुजाअत अली दिलगीर जौनपुरी, जो एक मसनवी लेखक थे, के पड़पोते हिम्मत जौनपुरी को दांतों का मंजन बेचना पड़ता है । गफ्फार चाचा चाय बेचता है, तो जमुना को अपना शरीर ही बेचना पड़ता है । 'दिल एक सादा काग़ज़' के रफ्फन का साहित्य भी अर्थशास्त्र के बोझ तले दब जाता है ।

यही नहीं, आर्थिक अभाव की विवशता राही के पात्रों को धर्मांतरण जैसे क़दम उठाने को मजबूर कर देती है ं 'सीन : '75' का रामनाथ कभी पीटर बनता है, तो कभी अब्दुल गफ्फार । इसी प्रकार 'हिम्मत जौनपुरी' की जमुना जुबैदा बन जाती है ।

3. अन्य आर्थिक चेतनाएं

डॉ राही मासूम रज़ा अपने जीवन काल में भारतीय तात्कालिक परिवेश से अछूते नहीं रहे ं उन्होंने वर्तमान से मुंह मोड़कर अतीत की ओर भागना कभी उचित नहीं समझा । वह जीवन के प्रत्येक पक्ष से सरोकार रखते थे । इसीलिए उनके द्वारा

[183] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 292
[184] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 97

व्यक्त की गई हर पहलू पर टिप्पणियां उनकी गहन तथा सूक्ष्म दृष्टि की परिचायक हैं उन्होंने जन-जन को जाग्रत करने के लिए सर्वहारा वर्ग का समर्थन किया था । इसकी झलक उनके उपन्यास साहित्य में मिलती है । सर्वहारा वर्ग से उनकी सहानुभूति इस बात से भी स्पष्ट है कि वे अपने प्रत्येक उपन्यास में स्वयं की प्रतिकृति का कोई न कोई पात्र अवश्य रखते थे और उस पात्र में अपना प्रतिबिंब निहारते थे । वह 'हिम्मत जौनपुरी' का हिम्मत हो या 'टोपी शुक्ला' का टोपी या फिर 'दिल एक सादा काग़ज़' का रफ्फन । वह 'असन्तोष के दिन' का अब्बास हो या 'ओस की बूँद' का वजीर हसन अथवा फिर 'सीन : '75' का अली अमजद । राही के व्यक्तित्व को इन पात्रों के समग्र एवं संकलित व्यक्तित्वों द्वारा समझा जा सकता है । इन पात्रों को एक कर दिया जाए तो जो व्यक्तित्व तैयार होगा वह डॉ राही मासूम रज़ा की आत्मा होगी। राही सर्वहारा वर्ग की विपन्न दशा को उभारने, उसकी इस दशा के पीछे के कारणों की तलाश करने का कार्य अपने उपन्यासों के माध्यम से करते हैं ।

वर्ग-वैषम्य एवं ऊँच-नीच के व्यवहार भेद के कारण राही के मन में विक्षोभ है वह मध्य वर्ग की आर्थिक विपन्नता को ही उनके जीवन का अभिशाप मानते हैं । उसकी इस दशा के लिए अन्य कारणों के अतिरिक्त वह स्वयं भी उत्तरदायी है, क्योंकि वह अपनी खोखली शान दिखाने के लिए अपनी आय से अधिक खर्च कर देता है । यह वर्ग शोषक और शोषित दोनों है, क्योंकि हर कीमत पर वह अपनी आय बढ़ाने के लिए निम्न वर्ग का शोषण करता है और स्वयं अपनी खोखली शान दिखाने के फेर में शोषित होता है । 'सीन : '75' उपन्यास के मध्यवर्गीय पात्र भोलानाथ खटक एक लिपिक बाबूलाल श्रीवास्तव को एक अच्छे रेस्तरां में भोजन कराने के बाद आत्मसंतुष्टि का भाव लाते हुए कहता है ''तिरानवे रुपये खर्च तो हो गए, पर कालोनी पर धौंस भी जम गई ।'' [185] 'आधा गाँव' उपन्यास इस प्रकार की स्थितियों से भरा पड़ा है । इनके माध्यम से राही इस वर्ग की दयनीय एवं विडंबनापूर्ण दशा का चित्रण करते हैं । इस वर्ग की इन्हीं विसंगतियों के चलते इस अध्याय के शोषक और शोषित दोनों प्रकार के पात्रों के चित्रण में इनका विवेचन आया है ।

राही सर्वहारा वर्ग की गतिशीलता तथा उसकी संघर्षमय प्रकृति के कारण ही उसका समर्थन करते हैं । 'कटरा बी आर्जू' में उपन्यास का एक पात्र इतवारी बाबा अपने भीख मांगने के कार्य-व्यापार को बिना अंतराल के पूर्ण निष्ठा से संपन्न करता है । वह 30-40 रु0 प्रतिदिन अर्थात् 8000 रु0 प्रतिवर्ष की आय इस कार्य से अर्जित

[185] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 27

कर लेता है । वह इस आय पर ईमानदारी से आयकर भी दे रहा होता है । इस प्रकार राही का यह पात्र शोषक है या शोषित अथवा शोषक भी नहीं है और शोषित भी नहीं । तथापि, वह सर्वहारा वर्ग का पात्र ही है, क्योंकि उसका वास्तविक शत्रु अन्यायी और पूंजीपति वर्ग ही है । उसका अधिकार पूंजीपतियों ने, कोठेवालों ने, जमींदारों ने, महाजनों ने तथा मिल मालिकों ने हड़प रखा है ।

अध्याय के समग्र पर्यालोचनोपरांत निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ राही मासूम रज़ा की संवेदना का केन्द्र एक दुखी मानव समाज है । उनके उपन्यासों के पात्र अभावग्रस्त मानव समाज की भयावह सच्चाई को सामने लाते हैं । राही के पात्र आर्थिक अभाव से निरंतर दो-चार होते हैं । राही की सहानुभूति उस समाज के साथ है, जो आर्थिक परावलंबन पर रहने को अभिशप्त है । वह चाहे फुन्नन मियां, वजीर हसन व हिम्मत जैसे जमींदार हों; मिगदाद जैसे किसान हों; टोपी शुक्ला, रफ्फन व अली अमजद जैसे साहित्यप्रेमी बेरोजगार युवा हों अथवा फिर देश और बिल्लो जैसे मजदूर ।

षष्ठ अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की राजनैतिक चेतना के संवाहक पात्र

राजनैतिक चेतना

स्वतंत्रता एक ऐसी प्राकृतिक भावना है, जो सबको प्रिय होती है । मनुष्य आदिकाल से ही स्वतंत्र रहने को अपना अधिकार समझता आया है । किन्तु दूसरी ओर अस्तित्व के संघर्ष ने काफी कुछ उलटफेर कर रख दिया है । सत्ता की महत्वाकांक्षा भी इस उलटफेर में कम भागीदार नहीं है ।

समयानुसार समाज की मान्यताएं परिवर्तित होती गई हैं । प्राचीन काल में भारतीया समाज धर्म से प्रेरित, परिचालित एवं निर्देशित था । उसके कुछ समय बाद अर्थ का बोलबाला हुआ । आर्थिक दृष्टिकोण से ही सामाजिक जीवन के सभी मूल्य मापे जाने लगे । वर्तमान समय में भी अर्थ ने राजनीति से मानो सांठगांठ कर ली है

आजकल सत्ता की महत्वाकांक्षा राजनीति का प्रवेश द्वार बन चुकी है । महत्वाकांक्षा के कारण धरती देशों, द्वीपों एवं महाद्वीपों में नामांकित हो गई । विडंबना यह रही कि ज्ञान व शिक्षा के प्रसार के साथ ही इस वर्गीकरण को और बल मिला । परिणामस्वरूप पत्थर की तलवारों, बंदूकों, तोपों और राकेटों तक पहुंच गई । यह सिलसिला यहीं नहीं थमा । एक दूसरे को परतंत्र बनाने की लालसा ने नवीनतम हथियार बनाने की प्रक्रिया ने बल ही प्रदान नहीं किया, अपितु शस्त्र-जगत में एक नई बहस को ही जन्म दे दिया । अणुबम, परमाणु बम और अन्य आधुनिक मारक क्षमता वाले परमाणु शस्त्र दूसरे को परावलंबी बनाने की भावना का ही प्रतिफल हैं । संप्रभु संपन्नता के प्रसार एवं विनाशकारी अह ंके तुष्टिकरण हेतु मानव ने जीव को मारने के लिए कितने ही उपाय आविष्कृत कर लिए हैं । एक परमाणु बम का विस्फोट संपूर्ण मानव-जगत के विनाश को काफी है । स्टार वार (Star War) की व्युत्पत्ति संपूर्ण जगत पर शासन करने की भावना के फलस्वरूप हुई है । यहां यह कहना पुनरावृत्ति ही होगा कि बड़ी मछली छोटी मछली का शिकार करती आई है । सशक्त राष्ट्र छोटे व कमजोर राष्ट्रों की प्रभुसंपन्नता को छिन्न-भिन्न करते आए हैं । उन्हें मानसिक रूप से परतंत्रता का जामा ही नहीं पहनाया, बल्कि आर्थिक रूप से भी उनकी कमर तोड़ते रहे हैं ।

परतंत्रता की भयावहता को भारत ने भी भोगा है । वर्ष-दो-वर्ष नहीं, अपितु सदियों तक इस बेड़ी को भारत ने पहना है । गुलामी काल ने लोगों के अंदर छिपी हुई राष्ट्र प्रेम की शक्ति को जगाया, परंतु इस उपक्रम में यहां भी दो वर्ग बन गए । एक तरफ साधारण जनता अर्थात् शासित वर्ग था, तो दूसरी तरफ शासकों का पिट्ठू सुविधा भोगी वर्ग था; जिसमें जमींदार, उद्योगपति व सामंतवादी लोग थे ।

राजनीति के समय चक्र का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा । कोई भी साहित्यकार राजनीति के सर्वव्यापी रूप से अछूता नहीं रहा है । इस संबंध में सुप्रसिद्ध साहित्यकार अज्ञेय के विचार दृष्टव्य हैं 'साहित्य और राजनीति को दो पृथक और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न था । आज के संघर्षशील युग में तो वह मूर्खतापूर्ण-सा ही है । साहित्य और राजनीति का प्रभाव एक दूसरे पर होने से रोका नहीं जा सकता; चाहे राजनीति का युग हो, चाहे साहित्य का ।' [186]

डॉ राही मासूम रज़ा का सन् 1947 से ही देश की राजनीति से निकट का संबंध रहा है । पूंजीवाद की निरंतर वृद्धि, राजनीति का धर्म और वैभवशाली शक्तियों के साथ गठजोड़ तथा निरक्षर जनता से इनकी दूरी, गहरे बिलगाव और शोषण के नए-नए ढंग; इन सबने राही को वामपंथी विचारधारा की ओर आकृष्ट किया । राही जानते थे कि वास्तव में इस दुनिया में दो दुनिया है - एक शासकों की और एक शासितों की; एक ग़रीबों की और एक अमीरों की; एक शोषकों की और एक शोषितों की ।

राही का उद्देश्य सर्वहारा वर्ग की रक्षा करना है । इसलिए वह किसान, ग़रीब-मजदूर के साथ हैं, हरिजन के साथ हैं । इन सबके अतिरिक्त वह उनके साथ भी है, जिनकी दुर्गति के लिए शासक वर्ग जिम्मेदार है । वह जमींदार वर्ग के आर्थिक हितों की रक्षा भी चाहते हैं, क्योंकि जमींदारों को जमींदारी उन्मूलन के बाद अपनी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी करना दुष्कर हो गया था । अतः इनका उद्धार भी हो, ऐसा वह चाहते हैं । उत्पीड़ित जन के कल्याण के लिए राही प्रत्येक व्यक्ति तथा संगठन के साथ हैं ।

---

[186] अज्ञेय, त्रिशंकु, पृ0 74

डॉ राही मासूम रज़ा ने पश्चिमी उत्तर-प्रदेश का जिला अलीगढ़, मुम्बई महानगर तथा पूर्वी उत्तर-प्रदेश के ग़ाज़ीपुर, वाराणसी, आज़मगढ़ तथा इलाहाबाद जनपदों के जन-जीवन के माध्यम से विभिन्न राजनैतिक दलों, विचारधाराओं तथा विश्वासों का वर्णन करते हुए समाजवादी चेतना को मुखरित किया है ।

20वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध विभिन्न राजनैतिक गतिविधियों एवं आंदोलनों का काल था । राही का हिन्दी साहित्य जगत में पदार्पण 1965 के आसपास हुआ था । किन्तु उनके जीवनानुभव वृहत्तर काल की प्रमुख घटनाओं से जुड़े थे । उन्होंने भारत का विभाजन होते देखा । इसकी पीड़ा उनके साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है । राही के उपन्यास-साहित्य में 1937 से लेकर 1985 तक की भारतवर्ष की विविध राजनैतिक भाव-भंगिमाओं एवं गतिविधियों का चित्र देखने को मिलता है । इस कालखण्ड में विभिन्न राजनैतिक आंदोलन, शासक-वर्ग की स्वार्थपूर्ण नीति, जमींदार वर्ग की मनमानी, कांग्रेसी शासन की स्थिति, जमींदारी उन्मूलन एवं राष्ट्रीय चेतना की स्थितियों का विडंबनापूर्ण चित्रण राही के उपन्यासों में हुआ है । लेखक जमींदारी उन्मूलन सहित सभी उपरिवर्णित परिस्थितियों तथा परिणामों के प्रत्यक्ष दृष्टा हैं । स्वाभाविक तौर पर राही की इस राजनैतिक चेतना के संवाहक उनके औपन्यासिक पात्र बने हैं । ऐसे पात्रों की राजनैतिक चेतना को हम अधोलिखित बिंदुओं के अंतर्गत रखकर अध्ययन कर सकते हैं

1. शासक वर्ग

राही के उपन्यासों का कथा-काल 1937 से प्रारंभ होता है । यह काल वर्तमान भारत के इतिहास को सबसे महत्वपूर्ण बनाने वाला आरंभिक समय है । 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के लिए पहली बार चुनाव हुए और भारतीय सरकारों का गठन हुआ । 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हो गया, जो 1945 तक चला । इस युद्ध में भारत ने जर्मनी के विरुद्ध इंगलैण्ड का सहयोग किया । 1940 में मुस्लिम लीग ने धर्म के आधार पर पृथक देश पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित किया । यह घटना बाद में चलकर विशेष ऐतिहासिक महत्व की सिद्ध हुई क्योंकि इसी की परिणतिस्वरूप 1947 में देश विभाजन के रूप में हुई थी । 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव पारित हुआ, जिसके फलस्वरूप एक देशव्यापी क्रान्ति हुई । 1946 में मुस्लिम लीग के 'डायरेक्ट एक्शन' की घोषणा हुई । परिणामतः देश भर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए, भयंकर मारकाट हुई । 1947 में देश स्वतंत्र हुआ किन्तु इसका विभाजन भी हो गया और पाकिस्तान नामक एक अलग राष्ट्र दुनिया के मानचित्र पर आ गया । 1950 में भारत में नए संविधान की स्थापना हुई । प्रांतीय सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन के

क़ानून बनाए । संविधान के अनुसार 1952 के प्रारंभ में देश मे आम चुनाव हुए, जिससे सारे देश में जनतंत्र की एक नई लहर दौड़ गई और एक युग का परिवर्तन हुआ । 1971 में पाकिस्तान का भी विभाजन हुआ और बांगलादेश नामक नया देश अस्तित्व में आ गया । 1975 में देश में आपातकाल की घोषणा की गई । आपातकाल 1977 तक चला । 1977 के आम चुनाव में कांग्रेस की पहली बार हार हुई । 1980 में पुनः कांग्रेस सत्ता में आई । 1984 में इन्दिरा गॉधी की हत्या हो गई । फलस्वरूप देश भर में सांप्रदायिक दंगे हुए ।

इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात अनेक नई राजनैतिक स्थितियां उत्पन्न हुई, जिनसे राजनैतिक चेतना का उदय हुआ । इन नई स्थितियों और चेतना के अच्छे-बुरे स्वरूप जन-जीवन में व्याप्त हुए । इस चेतना ने अपने प्रभाव की निर्मिति की । राही के औपन्यासिक पात्र इन्हीं स्थितियों में अपने प्रभावों की निर्मिति करते हैं । राही के जीवन काल के संपूर्ण राजनैतिक घटनाक्रमों का संगुम्फन राही के उपन्यासों के कथानकों में मिलता है ।

अंग्रेजी शासन के पदार्पण से पूर्व भारत आर्थिक, सामाजिक रूप के साथ-साथ प्रशासनिक रूप से भी आत्मनिर्भर था । भारत का प्रत्येक गॉव आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ था । घरेलू उद्योग-धंधों एवं शिल्प कुटीर ने गॉवों को आर्थिक दृष्टि से सशक्त बना रखा था । पारस्परिक प्रेम एवं सहृदयता के संबंधों के कारण सामाजिक सुरक्षा तथा न्याय का कार्य गॉव की पंचायत ही करती थी । पंचायत की आय का साधन निश्चित मालगुजारी था । पंचों में ही परमात्मा का वास था । इस प्रकार तत्कालीन भारत में शासक वर्ग के नाम पर कोई लूटपाट एवं अत्याचार विद्यमान नहीं थे । किन्तु अंग्रेजी शासन ने कचहरी, पुलिस तथा जमींदारी शासन व्यवस्था का सूत्रपात करके देश के प्राचीन ग्रामीण संगठनों को सत्ताशून्य कर दिया । देश के कर्ताधर्ता नेताओं ने अंग्रेजों के इन्हीं प्रदेयों को देश में लागू कर दिया और इसका नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया इस प्रकार नेता, विधायक, मंत्री, प्रशासन और ग्राम-प्रमुख सभी घटक मिलकर समवेत रूप से मिलकर देश पर शासन चलाने लगे । शासक-वर्ग के इन तत्वों को राही के औपन्यासिक पात्रों के संदर्भ में इन बिंदुओं के अंतर्गत रखकर समझा जा सकता है

क. मंत्री, सांसद, विधायक एवं कार्यकर्ताओं का नेता-वर्ग

स्वतंत्र भारत में जनता द्वारा चुने गए जन-प्रतिनिधि ही शासक-वर्ग में प्रतिष्ठित हुए । जिससे इनका स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में भी विशिष्ट महत्व रहा । स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करने वाले तथा स्वतंत्रता की अग्नि में आत्महितों को

स्वाहा कर निकलने वाले अनेक कर्मठ तथा त्यागी नेताओं के हाथों में स्वतत्र भारत के शासन की बागडोर आई, किन्तु स्वतंत्रता मिलते ही अवसर का लाभ उठाकर विशुद्ध लय और त्याग की भावना से किए गए बलिदानों का मूल्य वसूलने के लिए बहुत से अवसरवादी नेता, विभिन्न झण्डों तले इकट्ठे होकर जनसेवी से राजपदसेवी बन गए । समकालीन राजनीति का प्रतिबिंब प्रस्तुत करने वाले राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में तपोनिष्ठ जीवन पद्धति वाले स्वतंत्रता संग्राम के निस्पृह सेनानियों के विपरीत राजनैतिक रंगमंच पर छा जाने वाले अवसरवादी नेताओं, सांसदों, विधायकों और मंत्रियों तथा उनके विघटित होते आदर्शों और पतनोन्मुख व्यक्तित्वों के विविध पक्षों का विशदता से चित्रण हुआ है । नेता वर्ग की चारित्रिक विशेषताओं, अंतरंग एवं बहिरंग जीवन पद्धति की विसंगतियों तथा विचार और व्यवहार विरोधी स्थितियों के अंकन में राही के औपन्यासिक पात्रों ने महती भूमिका निभाई है । राही के उपन्यासों में यह चित्रण बहुत ही रोचक, रोमांचक तथा कटु सत्य का दिग्दर्शन कराने वाला है ।

राही के औपन्यासिक मुसलमान पात्र उन मुस्लिमों में से हैं, जो मानते हैं कि जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने ग़लत और भ्रामक राजनीति का प्रचार किया । इस राजनीति के सहारे पदों व अधिकार के भूखे मुसलमानों ने अपने स्वार्थ सिद्ध किए फुन्नन मियां (आधा गॉव) निर्णायक रूप से घोषित करता है ''आकिस्तान-पाकिस्तान पेट भरन के खेल हैं ।'' [187] 'कटरा बी आर्जू' का शम्सू मियां भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त करता है ''सियासत पेट भरों का काम है ।'' [188] जिन्ना की लानत-मलामत करता हुआ 'आधा गॉव' का एक पात्र अब्बू मियां कहता है ''इनके जिन्ना साहब त हाथ झाड़ के चले गए की हिआं के मुसलमान जाएं, खुदा न करे जहन्नुम में । ई अच्छी रही । पाकिस्तान बने के वास्ते वोट दें हिआं के मुसलमान और जब पाकिस्तान बने त जिनवा कहे की हिआं के मुसलमान जाएं, चूल्हे भाड़ में । '' [189] इस प्रकार के अनेक तर्क 'आधा गॉव' में गंगौली तथा अन्य उपन्यासों के शिया मुसलमान पात्रों ने पाकिस्तान के मुस्लिम लीगी नेताओं के विरुद्ध प्रस्तुत किए; जिससे प्रतीत होता है पाकिस्तान एक ऐतिहासिक घटना है, जिसके दुखपूर्ण परिणामों का भोग राही के औपन्यासिक पात्रों का प्रारब्ध है, जिसे उन्हें भोगना पड़ता है । वह कहते भी हैं ''रोना त हम शीअन की तकदीर है ।'' [190]

---

[187] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 263
[188] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 22
[189] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 292
[190] वही, पृ0 45

'असन्तोष के दिन' उपन्यास में सरकार के गठन की प्रक्रिया एवं राजनैतिक क्षेत्र में आई गिरावट की ओर संकेत करते हुए राही लिखते हैं ''हमारे लोकतंत्र में आज तक ऐसी सरकार नहीं बनी है, जिसे मतदाताओं के बहुमत का सहयोग प्राप्त हो और जो धर्म, जातिवाद और क्षेत्रवाद के नाम पर न बनी हो । चुनाव के पोस्टर तो झूठे हैं, जो एकता की बात करते हैं । वोट तो रात के अंधेरे में मांगे जाते हैं - बस्तियां जलाने की धमकी देकर । गुंडों की छत्र-छाया में, जाति और धर्म के नाम पर इन्हीं आधारों पर कण्डिडेट चुने जाते हैं और इन्हीं आधारों पर जीतते या हारते हैं।''[191] इसीलिए 'ओस की बूँद' का पात्र वहशत अंसारी तथाकथित धर्मनिरपेक्ष दलों से घृणा करने लग गया है "I am absolutely disgusted with our socalled secular political parties." [192]

नेताओं की अवसरवादिता और दलबदलू प्रवृत्ति समसामयिक राजनीति का एक चिन्ताजनक पहलू है । नेतागण अपने स्वार्थों के लिए सिद्धांतों को ताक पर रख देते हैं 'ओस की बूँद' उपन्यास में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है ''उन्हीं दिनों म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव आ गए । दीनदयाल चेयरमैन बनना चाहते थे । उन्हें पक्का यकीन भी था कि कांग्रेस टिकट उन्हीं को मिलेगा । परंतु जब कांग्रेस का टिकट श्री हयातुल्ला अंसारी को मिल गया, तो दीनदयाल का खून खौलने लगा । और यों ग़ाज़ीपुर नगर के इतिहास में पहली बार जनसंघ चुनाव के मैदान में आई । अब आप जानिए चुनाव में क्या-क्या नहीं करना पड़ता ।'' [193] यह हयातुल्ला अंसारी पहले मुस्लिम लीग में थे । इस प्रकार के बहुत से पात्र राही के उपन्यासों में चित्रित किए गए हैं, जो टिकट न मिलने अथवा जात-पांत के कारण दल-परिवर्तन करते हैं ।

दल-परिवर्तन का कारण है - दलगत राजनीति । जिसका सबसे बड़ा अस्त्र है चुनाव । यह सच है कि आज विश्व में राजनीति सबसे प्रबल नीति बन गई है, क्योंकि उसके माध्यम से जीवन का हर भौतिक पहलू जुड़ गया है । सारी नीतियों तथा सोच-विचारों को वह देश और समाज के जीवन में क्रियान्वित करती है, इसीलिए उसकी शक्ति अद्‌भुद है । आज राजनीति जैसे हमारी सांस-सांस में समा गई है । वह घर-घर में पैठ गई है । यह बहुत अच्छी बात है कि पहले राजनीति का संबंध

[191] डॉ राही मासूम रज़ा, असन्तोष के दिन, पृ0 76
[192] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 100
[193] वही, पृ0 50

केवल राजाओं और उनसे जुड़े चंद शासक वर्ग से था, अब हर आदमी से इसका संबंध जुड़ गया है । अब 18 वर्ष या उससे ऊपर के हर व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त है, जिसके तहत वह अपनी इच्छा से अपने नेता का चुनाव कर सकता है । किसी भी प्रकार के भय या प्रलोभन दिखाकर उसके मत को बदलने की कोशिश करना अपराध है । इस तरह देश का अनंत जनसमूह देश और देश के माध्यम से अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बन गया है । यह स्वाधीन भारत की राजनीति का एक अहम पहलू है । किन्तु क़ानून और नीतियां एक ओर हैं और विभिन्न दलों द्वारा किया जा रहा व्यवहार दूसरी ओर है । हर दल जीतकर सत्ता में आने के लिए संविधान के विपरीत इतना कुरूप व्यवहार करता है कि संविधान की अर्थवत्ता ही समाप्त होती दिखाई देती है । अब लगता है कि शहर, क़स्बा, गॉव का हर घर और हर व्यक्ति किसी-न-किसी दल से जुड़ा हुआ है और दल के समर्थन के लिए, फिर उस दल से कुछ पाने के लिए चालें चलता रहता है । चुनाव आजकल जातियों और क्षेत्रों के समीकरण पर ठहरा हुआ है । इसलिए संविधान के आशय के ठीक विपरीत चुनावों के कारण जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद आदि की दीवारें बढ़ती जा रही हैं । जिससे समाज में सामंजस्य स्थापित होने के स्थान पर अजीब मारकाट मची हुई है । राही के उपन्यासों के पात्र इस परिवेश को हमारे सम्मुख रखते हैं । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास के भृगुनारायण नीले तेल वाले नामक पात्र को चुनाव लड़ने का अत्यधिक शौक था । वे हर चुनाव में और हर प्रमुख दल के टिकट पर लड़े और सदा ही हारे । मौलवी अहमदुल्ला (टोपी शुक्ला) जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, किन्तु वे पहले मुस्लिम लीग के भी अध्यक्ष रह चुके थे । आशाराम (कटरा बी आर्जू) कम्यूनिस्ट पार्टी का नेता होता है, किन्तु आपातकाल की आशंकित यातनाओं के कारण वह कांग्रेस में सम्मिलित हो जाता है । 'कटरा बी आर्जू' के ही पं0 ''बाबू गौरीशंकर लाल पाण्डेय पहला और दूसरा चुनाव कांग्रेस के टिकट पर जीते । फिर जब चरण सिंह कांग्रेस से अलग हुए तो वह भी अलग हो गए । और जब चरण सिंह की सरकार टूटी तो वह फिर कांग्रेस में लौट आए ।'' [194] किन्तु आपातकाल के बाद हुए चुनावों में वह जनसंघ मे टिकट पर चुनाव जीतते हैं । 'ओस की बूँद' के बुखारी साहब प्रजातंत्र सोशलिस्ट पार्टी के नेता होते हैं, पर वह पी.एस.पी के टिकट पर चुनाव जीतने के बाद कांग्रेस में सत्ता सुख प्राप्त करना चाहते हैं । 'दिल एक सादा काग़ज़' का रामअवतार पहले मार्क्सवादी होता है, किन्तु बाद में वह ''नारायणगंज में कांग्रेस कमेटी का सेक्रेटरी हो गया....।'' [195]

[194] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 16

[195] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 160

उपर्युक्त विवरण से अभिज्ञात हुआ जा सकता है कि राही के समय से ही वर्तमान राजनीति का अधोपतन प्रारंभ हो चुका था । किन्तु इससे यह मत नहीं बन जाना चाहिए कि राही के औपन्यासिक राजनेता पात्र अवसरवादी, दलबदलू या जात-पांत को भड़काने वाले ही हैं । यह सत्य है कि स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय जीवन में पहले की अपेक्षा मान्यताओं और परिस्थितियों के बदलने तथा अन्य कई कारणों से ह्रास दृष्टिगोचर होता है । फिर भी समाज नैतिक आदर्श एवं प्रशासन की दृष्टि से कुशल एवं निष्पक्ष चरित्रों से शून्य नहीं रहा है । राष्ट्र की प्रगति और लोकतंत्र की सुरक्षा ऐसे ही चरित्रों से संभव हो सकी है ।

राही के उपन्यासों में निराशा के अंधकार में एक आशा की ज्योति भी जगाई है, जो उनके प्रगतिवादी दृष्टिकोण की परिचायक है । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास के ''सय्यद आबिद रज़ा एक ख़ानदानी कांग्रेसी थे । कांग्रेस में यह उनकी तीसरी पुश्त थी उनके पिता प्रांत कमेटी के सदर रह चुके थे । कई बार जेल भी जा चुके थे । वह खुद भी जिन्ना कमेटी के सेक्रेटरी थे और कुल मिलाकर नौ साल आठ महीने बारह दिन जेल में रह चुके थे । उन्होंने कभी खादी के सिवा कुछ और पहना ही नहीं । खादी भी वह निहायत खुरदरी वाली पहनते थे । अब यह बताने की कोई जरूरत रह नहीं जाती कि वे मुस्लिम लीग की राजनीति के घोर विरोधी थे ।'' [196] बाबूराम (कटरा बी आर्जू) नामक कांग्रेसी नेता पात्र भी गौरीशंकर जैसे दलबदलू और अवसरवादी नेताओं के इस चरित्र से अंतर्मन से व्यथित हैं । ऐसे पेशेवर नेताओं के सामने ये अपना कोई दल न बना सके । बाबूराम के पिता हरिमोहन श्रीवास्तव मानते हैं ''देश का रिश्ता बाप के रिश्ते से ज़्यादा बड़ा होता है ।'' [197] वह कई बार जेल जा चुके थे 'आधा गॉव' का परसराम एम.एल.ए अपनी कई बुराइयों के बीच कुछ अच्छाइयां भी अपनाता है । जब हिन्दुओं के कथित आतंक से गंगौली के कुछ मुस्लिम भयग्रस्त थे, तो यह उनको संरक्षण प्रदान करता है, जिससे यह फुन्नन मियां की प्रशंसा भी पाता है ''हां हां त हुए बा । तू त ऐसा हिन्दू कहि रहियो जैसे हिन्दुआ सब भुकाउ हैं कि काट लिहिन । अरे ठाकुर कुंवर पाल सिंह त हिंदुए रहे । झिंगुरियो हिन्दू है । ए भाई, ओ परसुरमवा हिन्दुए ना है कि जब शहर में सुन्नी लोग हरमजदगी कीहन कि हम हजरत अल्ली का ताबूत न उठे देंगे, काहे को कि उ में

[196] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 71
[197] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 135

शीऊ लोग तबर्रा पढ़त हएं, त परसुरमवा ऊधम मचा दीहन कि ई ताबूत उट्ठी और उ ताबूत उठा । तोरे जिन्ना साहब हमरा ताबूत उठवाए न आए ।'' [198]

नेता बनने के पीछे कई कारण होते है; यथा बेरोजगारी, अहं, निहित स्वार्थ तथा व्यक्तिगत परिस्थितियां । राही के उपन्यासों में कुछ नेता पात्रों के परिपार्श्व में यही दिखाया गया है । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में वर्णित है कि बेरोजगारी के कारण टोपी के भाई मुन्नी और भैरव नेता बन चुके थे और वे एक दूसरे के विरुद्ध ही अलग-अलग दलों से चुनाव लड़ते हैं । इसके मूल में जाते हुए राही लिखते हैं ''असल में बेरोजगारी की समस्या इतनी गंभीर हो गई है कि हर नवयुवक केवल नेता बनने के ख़्वाब देख सकता है ।'' [199] नेता बनने के बाद व्यक्ति अपना कैरियर बनाना प्रारंभ कर देता है । गोपीनाथ (टोपी शुक्ला) एक बस कण्डक्टर थे । पढ़े-लिखे बिल्कुल नहीं थे । किन्तु जादू का डण्डा ऐसा घूमा कि वह एम.पी हो गए । पूंजीपति व्यक्ति भी अपनी पूंजी के बल पर नेता बन जाते हैं । सन् बावन के चुनाव में लाला जी (सीन : '75) का बड़ा बेटा एम.पी. और छोटा बेटा एम.एल.ए हो जाता है । कुछ लोग अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण भी नेता बन जाते हैं । हाजी फकीरा (सीन : '75); जो शिवमंगल प्रसाद था, पीलीभीत में एक कत्ल करके मुंबई भाग जाता है और वहां वह महम्मद अली रोड जे.जे. अस्पताल क्षेत्र में मुस्लिम लीग के टिकट पर कारपोरेशन का चुनाव जीत जाता है ।

इन नेता और मंत्रियों के आमोद-प्रमोद, चारित्रिक अधःपतन तथा अत्याचारों का वर्णन भी राही के उपन्यासों में मिलता है । 'आधा गॉव' का परसराम एम.एल.ए नेता बनने के बाद कार से घूमता है । सदैव चारमीनार की सिगरेट उसके मुंह में रहती है और इससे बढ़कर वह जमींदारों के सामने कुर्सी पर बैठकर समस्याएं सुलझाने लग गया है, जिनसे बचपन में वह बोल भी नहीं सकता था । 'दिल एक सादा काग़ज़' के केन्द्रीय सूचना मंत्री शंकरदयाल भोग-विलास में संलग्न दीख पड़ते हैं 'कटरा बी आर्जू' की महनाज, जो राजनीति में आने के पहले सीधी-सादी घरेलू महिला थी, बालों में तेल डालना छोड़ देती है, उसकी नेलपालिश हर समय चमकती रहती है । बाल शैंपू से धोकर ड्रायर से सुखाती है । आदि-आदि प्रकार से वह उच्च वर्गीय सभ्यता को अंगीकार करती जाती है । वहीं सांसद गौरीशंकर जैसे नेता अपने जुलूस में एक निर्दोष अपाहिज को कुचलकर मार देते हैं । इसी प्रकार 'आधा गॉव' उपन्यास

[198] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 155
[199] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 96

में द्वितीय विश्व युद्ध में शहीद हुए फुन्नन मियां के बेटे को एक स्थानीय नेता बालमुकुंद वर्मा शहीदों की सूची में सम्मिलित नहीं करता है ।

इस प्रकार राही ने अपने उपन्यासों में नेता पात्रों की परिकल्पना करके राजनेताओं के चारित्रिक दूषण एवं उनके आमोद-प्रमोद तथा अत्याचारों का विशद, यथार्थ एवं कटु चित्रण किया है । उनके उपन्यास वर्तमान भारत की राजनीति का मानो कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करते हैं ।

ख. प्रशासनिक वर्ग

मानव जीवन को सुख-सुविधामय एवं सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए वर्तमान युग में प्रशासनिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है । दैनिक जीवन की उपभोग्य वस्तुओं एवं आवश्यकता पूर्ति के साधनों को राज्य की नीतियां प्रभावित करती हैं । राज्य प्रशासन की एक संस्था है, जो हमें शत्रु के आक्रमणों से एवं आंतरिक व्यवस्था का शिकार होने से बचाती है । हम अपने बच्चों को विद्यालय भेजें तथा उन्हें एक निश्चित आयु तक जीविकोपार्जन में न लगाएं, इस हेतु प्रशासन हमें विवश करता है । हम जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत राज्य से संबंधित हैं, क्योंकि सरकार हमारे राष्ट्रीय एवं स्थानीय निकायों पर भी नियंत्रण रखती है ।

प्राचीन काल में धर्म ही आदिम वर्गों के सामाजिक व्यवहार-नियंत्रण का साधन था, किन्तु वर्तमान युग में प्रशासन स्थापित करना राज्य का बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है; जिसे वह पुलिस और न्यायालय के सहयोग से पूरा करता है । प्राचीन काल में सामाजिक व्यवहारों को नियंत्रित रखने के लिए स्कूल, चर्च, धर्मगुरु एवं परिवार आदि संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी । किसी व्यक्ति के सामाजिक प्रतिमानों के विरुद्ध कार्य करने पर हुक्का पानी बंद करके सामाजिक बहिष्कार एवं तिरस्कार किया जाता था, जिसके भय से कोई व्यक्ति सामाजिक परंपराओं के उल्लंघन करने का दुस्साहस नहीं करता था । आदिम जातियों में तो सामाजिक मान्यतायें तोड़ने वाले को अमानुषिक दण्ड तक दिए जाते थे । इस प्रकार परिवार एवं अन्य संस्थायें समाज में अनुशासन का पालन कराती थी । धीरे-धीरे प्रशासनिक व्यवस्था का यह कार्य राज्य ने संभाल लिया ।

राज्य वह संस्था है; जो नीति निर्धारण, प्रबंध एवं न्याय तीनों का संचालन करती है । विभिन्न संस्कृतियों में इस प्रकार के विभिन्न कार्य हैं, किन्तु व्यवस्था को बनाए रखना इसका प्रमुख कार्य है । परिवार एवं कबीले अन्य नियंत्रणकारी संस्थाओं

की अपेक्षा राज्य का सीमा-क्षेत्र विस्तृत एवं प्रभुसत्ता संपन्न है । प्रशासन-कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए प्रजातंत्र, एकतंत्र, तानाजैसी जैसी भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनैतिक प्रणालियां प्रचलित हुईं । अपना देश प्रजातांत्रिक पद्धति को अपना कर अपनी शासन-प्रशासन चला रहा है ।

वर्तमान में सरकार के कार्य बहुत बढ़ गए हैं । राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक संतुलन, न्याय एवं व्यवस्था का पूर्ण दायित्व सरकार पर ही है । सरकार विभिन्न नियंत्रणकारी शक्तियों के ध्रुवीकरण का प्रयास करती है ।

शासक वर्ग का संचालक प्रशासन होता है । प्रशासन राज्य संचालन में अनेक कोताहियां एवं अनीतियां बरतता है । इसके विविध अंगों द्वारा किए गए अनाचारों का वर्णन राही मासम रज़ा के उपन्यासों में मिलता है । प्रशासनिक वर्ग की एक महत्वपूर्ण इकाई पुलिस विभाग है । पराधीन भारत में पुलिस सहित अन्य सरकारी कर्मचारियों का आतंक रहा था, किन्तु स्वाधीन भारत में यह आशा की गई कि निर्दोषों का उत्पीड़न न किया जाय और दोषियों को उनके अपराध का निषेधात्मक पुरस्कार (दण्ड) दिया जाय, किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा हो न सका । राही के उपन्यास 'आधा गॉव' के एक देशभक्त पात्र फुन्नन मियां, जिन्होंने अपना बड़ा बेटा देश की ओर से द्वितीय विश्व युद्ध में भेजा था, का दूसरा बेटा 1942 के आंदोलन में कासिमाबाद थाने के अग्निकाण्ड में पुलिस की गोली का शिकार हो जाता है । इसी प्रकार 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में डी.आइ.जी खुर्शीद आलम खां तथा हैड कांस्टेबिल जगदंबा प्रसाद द्वारा आपातकाल में निर्दोषों को दी गई यातनाएं चित्रित करने के लिए राही को विदेशी उपन्यासों में इस प्रकार की वर्णित शैली का आश्रय लेना पड़ा । भारतीय परंपरा एवं राही जैसे सुकुमार साहित्यकार के यहां इस प्रकार की यातनाएं, जिनको टॉर्चर कहा गया , कहां ? उपन्यास के देशराज को टार्चर किए जाने की प्रारंभिक संक्रिया खां साहब के शब्दों में है ''बता दोगे तो और तकलीफ नहीं होगी ? नहीं बताओगे, तो बदन की एक-एक हड्डी का सुर्मा बना दूंगा ।'' [200] आपातकाल में पुलिस कहर ढा रही थी । इसका एक और स्वरूप है, जिसमें एक जगह दिखाया गया है कि हरियाणा पुलिस ने जबरन भेड़ बकरियों की तरह एक बारात तथा दूल्हे को को उतारकर सबकी नसबंदी कर दी ।

[200] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 181

'ओस की बूँद' का मानवता का पुजारी निर्दोष वजीर हसन पी.ए.सी द्वारा एक सांप्रदायिक दंगे में मार दिया जाता है । क्या यह उसका अपराध था कि उसने रामअवतार द्वारा कुएं में फेंक दिए गए मंदिर के शंख को निकालकर पूजा-अर्चना कर शंख को यथा-पूर्व रखा था ? प्रजातंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया की तथाकथित निष्पक्षता इन शब्दों में देखी जा सकती है ''दूसरे दिन के समाचार पत्रों में यह समाचार निकला कि मन्दिर की मूर्ति को तोड़ने की कोशिश करता हुआ एक मुसलमान पी.ए.सी की गोली से मारा गया ।'' [201] पुलिस इस सांप्रदायिक दंगे के हो चुकने के बाद तब पहुंचती है, जब वहां कोई नहीं होता है । इस प्रकार पुलिस के पाखण्ड का वर्णन राही बड़ी सूक्ष्मता से करते हैं ।

राही ने प्रशासनिक ढांचे के अंतर्गत आने वाले प्रमुख विभागों के कुत्सित कार्यों का चित्रण किया है । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में जिलाधीश के आवास पर टोपी को एक अलसेशियन कुत्ते द्वारा कटवा लिया जाता है । ''उसके पेट मे सात सुइयां भुकी तो टोपी के होश ठिकाने आ गए और फिर उसने कलेक्टर साहब के बंगले का रुख नही किया ।'' [202] टोपी का दोष मात्र इतना था कि वह वहां पर अपने मित्रों से मिलने गया था ।

इस प्रकार डॉ राही मासूम रज़ा ने विभिन्न प्रशासनिक विभागों के अनेकविध अत्याचारों का चित्रण कर समाज की वस्तुस्थिति से अवगत कराया है और राज्य के इन अंगों की सूक्ष्म एवं गहन पड़ताल उनके अनाचारों के संदर्भ में की है ।

ग. भ्रष्टाचार

स्वातंत्र्योत्तर काल में विधायकों, सांसदों तथा सत्तागत घटको ंके माध्यम से जनता द्वारा सत्ता की शक्ति के दुरुपयोग के कारण प्रशासन तंत्र में फैलते व्यापक स्तर के भ्रष्टाचार का चित्रण राही के अधिकांश उपन्यासों में किया गया है । स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में यह आशा की जाती थी कि जनप्रतिनिधियों के स्वच्छ प्रशासन में लोक जीवन भ्रष्टाचार से सर्वथा मुक्त रहेगा । प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही कहा गया था ''हमारी लोकप्रिय सरकार ने भ्रष्टाचार को राष्ट्र की प्रगति में बाधक सबसे बड़े शत्रु के फैलने न देने की जो प्रबल संस्तुति की थी, उसके अनुसार भ्रष्टाचार को बंद करने के

[201] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 60
[202] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 43

लिए शासन के प्रबंध में उच्च स्तर की योग्यता पर....(और) ईमानदार कर्मचारियों को उत्साहित करने के मार्ग खोजे जाने पर विशेष बल दिया गया ।'' [203] किन्तु कई कारणों से यह आशा दुराशा ही सिद्ध हुई । प्रजातंत्रात्मक रूप से चुने गए प्रतिनिधि लाभकारी पदों पर पहुंचकर सत्ता को प्राप्त करते ही शासकीय शक्ति का दुरुपयोग करने लगे । राजनैतिक हस्तक्षेप एवं दबाव के कारण इनके द्वारा लोक प्रशासन में व्यापक रूप से भ्रष्टाचार फैला ।

भ्रष्टाचार एक प्रकार से हिंसा जैसा ही जघन्य राष्ट्रघाती सामाजिक अपराध है । भ्रष्टाचारी और हिंसक एक ही स्तर के अपराधी हैं । एक अगर बुद्धि के विशेष प्रयोग से शनैः-शनैः हिंसा करता है, तो दूसरा क्रोधोन्मत्त एवं विवेक शून्य होकर भय पैदा करता है । भ्रष्टाचार समाज के लिए जितना घातक है, उतना ही वह बहुमुखी भी । राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी ने कहा था, इस दुनिया में सभी प्राणियों के लिए उनकी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु सब कुछ है, किन्तु एक व्यक्ति के लालच के लिए वह सब कुछ कम पड़ जाएगा । एक तमिल कहावत है, व्यक्ति के पास घी है, मक्खन चाहिए । कहने की आवश्यकता नहीं कि भ्रष्टाचार के मूल में व्यक्ति का लालच मुख्य होता है । लोगों के घरवाले कर्मचारी से अनेकानेक सुख-साधनों को एकत्र करने पर जोर देते हैं, इस कारण भी व्यक्ति भ्रष्टाचार करने को उन्मुख होता है । अपराधी को अनैतिक कार्यों के लिए छूट देना, स्वार्थ सिद्धि के लिए अनुचित उपायों का प्रयोग, शासक वर्ग द्वारा पद के प्रभाव का दुरुपयोग, सिफारिश और भाई-भतीजावाद, पूंजीपति वर्ग और शासक-वर्ग की सांठ-गांठ से चलने वाली काला-बाजारी, लालफीताशाही इत्यादि भ्रष्टाचार रूपी महादानव के विविध रूप हैं, जिनका चित्रण राही के उपन्यासों में यत्किंचित व्यंग्यात्मक शैली में हुआ है ।

'दिल एक सादा काग़ज़' में एक स्वतंत्र एम.एल.ए मक्खन लाल के माध्यम से राही ने भ्रष्टाचार की समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया है ''पांच हजार तो मक्खनलाल ही ने लिए थे, भूख हड़ताल करने के लिए । मक्खन लाल ने उसे यह भी समझा दिया था कि पैसे का मुंह न देखो ।''[204] यहां मक्खन लाल कैला तमोली से पांच हजार रुपए भूख हड़ताल पर बैठने के लिए रिश्वत के तौर पर लेता है । रिश्वतखोरी की बढ़ती हुई इस समस्या पर व्यंग्य करते हुए राही लिखते हैं ''एम.पी. की तनख्वाह तो ज्यादा नहीं होती, पर ऊपर की आमदनी बहुत होती है और जो कहीं

[203] प्रथम पंचवर्षीय योजना (जनता संस्करण), पृ0 67
[204] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 138

मिनिस्ट्री की 'चानस' मिल जाये, तो छः महीनों में सात पुश्तों का बंदोबस्त हो जाये ।''[205]

घ. ग्राम-जीवन की राजनीति

स्वातंत्र्योत्तर राजनीति के शासक वर्ग के संदर्भ में बदलते भारतीय ग्राम-जीवन की समग्रता का अध्ययन एवं उसकी विशद अभिव्यक्ति राही के उपन्यासों में दिखाई देती है । वर्तमान परिवेश में भारत के बहुसंख्यक ग्रामीण समाज में विकसित होती राजनैतिक चेतना एवं गतिविधियों के विविध पक्षों का मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है । राही के उपन्यासों में भारतीय ग्रामांचलीय जनता में स्वराज्य की सुखद कल्पना का मोह भंग, नेतृत्व एवं पंचायत राज व्यवस्था की विडंबना, राजनैतिक दलों के हस्तक्षेप से विघटित होती गॉव की सामूहिक ज़िंदगी, चुनाव की आपाधापी और बदलते वातावरण के विरुद्ध विकसित होती जन-मन की विविध आवर्तमयी स्थितियों के बहुकोणीय समकालीन राजनैतिक संदर्भों का प्रत्ययकारी चित्रांकन हुआ है । नगरीय क्षेत्रों में विशेष रूप से पल्लवित एवं पुष्पित हुई स्वातंत्र्योत्तर राजनीति से सत्तर प्रतिशत ग्रामीण भारत अनिवार्य रूप से प्रभावित हुआ । विभिन्न राजनैतिक स्तर के प्रयासों और राजनैतिक दलों के प्रवेश से मानसिकता परिवर्तित हुई और एक विशेष प्रकार की राजनैतिक समझ और परिवेश का निर्माण हुआ ।

ग्रामीण राजनीति के इस परिवेश कई तरह के हथकण्डे ग्रामजनों द्वारा अपनाए जाते हैं । कभी-कभी अत्यंत घृणित आरोप-प्रत्यारोप लगाने का दुष्चक्र रचा जाता है । राही के उपन्यास 'आधा गॉव' का हम्माद मियां परसराम एम.एल.ए पर अदम अदायगी-ए-कर्ज़ और भारतीय दण्ड संहिता की धारा चार-सौ-बीस का मुक़दमा चलवा देता है । यही नहीं हम्माद मियां एक आवारा महिला से परसराम के खिलाफ मार-पीट और जिना की रिपोर्ट भी लिखवा देता है । इसी उपन्यास के फुन्नन मियां एक अनपढ़ और छोटे जमींदार हैं, किन्तु उनकी राजनीति बहुत उठा-पटक करने वाली है । उपन्यास में वह कहते हैं ''उ की फिकिर आप काहे को करते हैं । उ को छुड़ाना हमरा काम है । बाकी गुलबहरी के बारे में अलबत्ता सोचना है ...एक मरतबा ई मुकदमा चालू हो जाए, फिर देख लेंगे ।'' ग्राम-राजनीति की कुत्सित चालों द्वारा दलित जाति के एक निर्दोष कोमिला को एक झूठे मुक़दमे में फंसाकर फांसी की सजा गंगौली के जमींदार करवा देते हैं । स्थानीय नेतागिरी के चारित्रिक विश्लेषण के संबंध राही के

[205] वही, पृ0 103

ये शब्द उल्लेखनीय हैं ''यह लोकल लीडर भी बड़ी अजीब चीज होता है । यह चमचों के सेट का सबसे छोटा चमचा होता है....इसके पास कोई अपनी बड़ाई नहीं होती ।.. ..परंतु इसकी एक न्युसेंस वेल्यु अवश्य होती है । इसलिए यह छोटे-मोटे काम करवा के रौब झाड़ता है लोगों पर । सरकारी अफसर वास्तव में उस नाक से डरते हैं, जिसका यह बाल होता है ।'' [206]

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि डॉ राही मासूम रज़ा ने शासक वर्ग की विभिन्न शोषक वृत्तियों को आवर्तमयी ढंग से प्रत्ययकारी रूप में प्रस्तुत किया है । शासक वर्ग का चित्रण उन्होंने उसके नकारात्मक चरित्र को दिखाकर ही किया है, जो 'साहित्य समाज का दर्पण है' की उक्ति को पूर्णतः चरितार्थ करता है ।

2. शासित वर्ग

डॉ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में राजनैतिक स्तर पर पात्रों का यथार्थ प्रतीत होने वाला चित्रांकन किया है । इस चित्रण के लिए उन्होंने शासक और शासित दोनों वर्गों के पात्रों को चुना है । शासित वर्ग के पात्रों का समाज में गौण स्थान होता है । वे समाज की समस्याओं एवं बुराइयों के बीच अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते है तथा उच्च वर्ग के अंतर्गत आने वाले जमींदार, सामंत, राजनेता तथा प्रशासनिक अधिकारियों के अमानवीय अत्याचारों को सहन करते हैं । ऐसे पात्रों का वर्ग संगठन एवं नेतृत्व विहीन होता है । वह चुनाव प्रक्रिया से भी अनभिज्ञ रहता है । इस वर्ग में ही अशिक्षा एवं ग़रीबी व्याप्त होती है, जिससे वह अपने अधिकार बोध एवं राजनैतिक गतिविधियों से उदासीन रहता है । ऐसे पात्रों का व्यक्तित्व सामान्य होता है डॉ राही मासूम रज़ा ने इन पात्रों के सामाजिक क्रिया-कलापों को प्रस्तुत करके इन्हें अपने उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट महत्व देकर प्रतिष्ठापित किया है ।

क. राजनैतिक उत्पीड़न

शासित-वर्ग स्वतंत्रता पूर्व भी और स्वतंत्रता पश्चात भी तरह-तरह से उत्पीड़ित किया गया था । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में ब्रिटिश शासकों ने केन्द्रीय सभा एवं

[206] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 147

प्रांतीय विधान सभाओं के रूप में सीमित लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रचलित की, किन्तु आम जनता को इससे कोई लाभ नहीं हुआ । इसके बाद सन् 1940 में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई, जिसने पाकिस्तान के रूप में भारत से अलग स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की मांग प्रस्तुत की राही के 'आधा गॉव' के अनेक मुस्लिम पात्र इस मांग को सिरे से ही नकारते हैं ।

'आधा गॉव' का तन्नू पाकिस्तान का विरोध करता हुआ कहता है ''नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती । पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गंगौली यहीं हिन्दुस्तान में रहेगा और गंगौली फिर भी गंगौली है ।' [207] पाकिस्तान निर्माण के प्रति राही के इन्हीं पात्रों के दृष्टिकोण को डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर भी पुष्ट करते हैं 'पाकिस्तान का बनना मुसलमान सामान्य जनता का निर्णय नहीं था, बल्कि धर्म के नाम पर उत्पन्न तूफान का परिणाम था ।' [208]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वतंत्र भारतीय नागरिकों को गौरव की अनुभूति हुई, वे अपना महत्व समझने लगे । सन् 1950 में भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसने ऊॅच-नीच तथा जाति-धर्म से अलग हटकर हर व्यक्ति को समान महत्व दिया और इस प्रक्रिया में सदियों से सताए गए कमजोर वर्गों के एक नए भविष्य निर्माण की संभावना पैदा की । लेकिन राजनीति के व्यावहारिक रूप ने वास्तव में ऐसा नहीं होने दिया । यद्यपि कमजोर वर्ग ने बार-बार उठने का प्रयास किया । एक सुन्दर स्वस्थ जीवन यापन की चेतना उसके भीतर जगी और उसके लिए असहाय वर्ग ने चाहा । किन्तु देखने में यही आया कि क्रमागत ऊॅचे लोगों ने स्वरूप परिवर्तित कर अपनी संपत्ति और अधिकार के बल पर हर जगह अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया । पहले वे देशद्रोही राजभक्त सामंत थे, जमींदार थे, अफसर थे । अब अपनी जमीन बेचकर उन्होंने अपनी पूंजी उद्योग धंधों में लगा दी । वे अब उद्योगपति हो गए । जहां ऐसा नहीं हुआ, वहां भी वे अपने परंपरागत बड़प्पन का आतंक बनाए रहे और ये ही लोग या इनके वंशज कांग्रेसी सरकार के प्रमुख पदों पर आने लगे । ये सत्ताधारी नेता बनकर आम आदमी का शोषण करने लगे । सरकार के विभिन्न अंगों के प्रभावशाली लोगों ने बार-बार कमजोर वर्गों का सामूहिक दमन किया । इसी कारण ऐसे लोगों का राजनीति से विश्वास उठ गया और यह किसी भी दल को अपने लिए हितकारी नहीं मानने की मुद्रा में आ गए । 'कटरा बी आर्जू' का देशराज कहता है ''आसा बाबू हम

---

[207] वही, पृ0 256

[208] डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, उपन्यास : स्थिति और गति, पृ0 166

न कांगरेसी हैं, न कमनिस्ट, न सोसलिस्ट । हम खाली खूली देस हैं और बिकाऊ न हैं ।'' [209]

भारत के क्रान्तिकारी, सक्रिय एवं ईमानदार राजनेताओं ने स्वतंत्रता-आंदोलन में बहुत दुख भोगा था, किन्तु उनके परवर्ती नेताओं ने ऐशो-आराम का जीवन बिताना प्रारंभ किया । लोकतांत्रिक समाजवाद की आर्थिक नीति भी अपनाई गई; पर पूंजीपति, भ्रष्ट राजनीतिज्ञ एवं प्रशासनिक अधिकारियों की सांठ-गांठ से देश में भ्रष्टाचार फैला । सामान्य जन पीड़ित के पीड़ित ही रहे । क्षोभ के कारण कुछ वर्गों में अनुशासनहीनता, हिंसा, बलात्कार एवं लूट-खसोट की प्रवृत्ति पनपी । इसी कारण वर्ग-संघर्ष की भावना घनीभूत हुई । भारत का सामान्य जन निरीहता एवं विवशता का अनुभव करता हुआ महंगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता एवं सामाजिक अशान्ति से पीड़ित हो गया । वह राही के रचनाकाल के बाद वर्तमान में कार्यालयों में भटकता रहता है । उसकी समस्याओं का समाधान नहीं होता । उसकी कोई सुनने वाला नहीं । बेरोजगारी का दौर जोरों से चल पड़ा है । रोजगार पाने के लिए कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है । समाज में पैसे एवं पदों के लिए आपाधापी फैली है, जिसमें कुछ विशिष्ट जन आगे निकल जाते हैं और अधिकांश पिछड़ते रहते हैं । शहरों से लेकर गाँवों तक भ्रष्ट राजनीति फैल रही है । नेताओं द्वारा जनता को नैतिकता एवं मानवता के भाषण पिलाए जाते हैं, किन्तु स्वयं नेता अनैतिक एवं अमानवीय होने का अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ बैठे हैं । नेता ही नहीं जनता भी इन परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं, क्योंकि नेता और जनता सब अधिकारों के प्रति सजग तथा कर्तव्यों के प्रति उदासीन हैं । पैसे की राजनीति के कारण व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं रह गया है । सर्वथा वर्तमानकालिक भीषण समस्याओं को राही के उपन्यासों के पात्र भोगते हुए दिखाई देते हैं ।

राही का 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास आपातकालीन घोषणा के परिप्रेक्ष्य में व्यंजित करता है कि किस प्रकार जनता के नागरिक अधिकार छिन गए और वह परिवार नियोजन, जिसे अब परिवार कल्याण कहा जाने लगा है, के नाम पर जबरदस्ती नपुंसक बनने के लिए विवश कर दी गई । जो सत्ता पक्ष के विरोधी जन थे, उन्हें जेलों में ठूंस दिया गया । उपन्यास में देश और बिल्लो के माध्यम से बताया गया कि घर नामक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता का सपना तो बस सपना ही रहता है । आपातकाल एक ऐसी दुखद ऐतिहासिक राजनैतिक स्थिति है, जिसमें भारतीय

[209] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 88

लोकतंत्र के समाप्त होने की आशंका होने लगी । एक व्यक्ति के हाथों में ही सत्ता विकेन्द्रित हो गई और जनता निरीह होकर देखती रह गई, व्यक्ति का मूल्य नहीं रह गया ।

राही के औपन्यासिक शासित वर्ग के पात्र नेताओं के स्वार्थ से निराश और अवसाद ग्रस्त हैं, क्योंकि आज के अधिकतर नेता स्वार्थी हैं । वे अपने स्वार्थों की भरपाई में ही लगे रहते हैं । जनता की भलाई की उन्हें कोई चिंता नहीं । वह अवसरवादी तथा भोगविलास में रत हैं । स्वतंत्र भारत में ऐसे नेताओं की ही स्थिति मजबूत हुई है । इस प्रकार के नेताओं से 'ओस की बूँद' का बुद्धिजीवी पात्र वहशत अंसारी परेशान है । बुखारी से बातचीत में वह कहता है ''मुसलमान दुश्मनों के मरने की दुआएं यूं न मांगिए भाई बुखारी ! वरना बहुत से मुस्लिम लीडरों को भी मलकुल मौत पकड़ ले जाएंगे ।'' [210] वहशत ने यह इसलिए कहा, क्योंकि जैसा 'असन्तोष के दिन' उपन्यास में कहा गया है ''सरकार की तरफ से जो राहत कार्य किया गया, वह मुसलमान नेताओं ने आपस में बांट लिया ।'' [211]

ख. अशिक्षाजन्य उत्पीड़न

अशिक्षा के कारण चुनाव प्रक्रिया से राही के अधिकांश पात्र अनभिज्ञ बने रहते हैं । इससे उनमें योग्य नेता चुनने का अभाव पाया जाता है । यहां तक कि उन्हें यह भी नहीं पता कि 'वोट' क्या है? 'आधा गाँव' में फुन्नन मियां की पत्नी कुलसुम कहती है ''आए रहे दुई जने ओट मांगे ।'' कुलसुम ने आगे कहा ''हमहूं से कहिन कि ओट मुसलिम लीग.... ई बोहार बाबा ओट का होथे ?'' [212]

अशिक्षा के कारण स्वार्थी और कुटिल नेताओं के बहकावे में आम जनता का आना स्वाभाविक है । व्यक्ति की भावनाओं को भड़काना अपेक्षाकृत आसान कार्य है और धर्म तथा जाति के नाम पर, इतिहास की मिथ्या बातों की दुहाई देकर, यह आसान हो जाता है । ऐसी ही एक 'जोशीली तकरीर' को कुछ प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा सुनाने पर 'आधा गाँव' की निम्नवर्गीय भोली भाली जनता बहकावे में आ जाती

[210] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 99
[211] डॉ राही मासूम रज़ा, असन्तोष के दिन, पृ0 70
[212] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृ0 262

है । ''नतीजे में राक़ियों और जुलाहों के एक बड़े गिरोह ने यह तय किया कि वोट लीग को ही देना चाहिए । यह एक मज़हबी फर्ज़ है ।'' [213]

इस प्रकार के भड़काऊ भाषणों से एक योग्य नेता चुनने से रह जाता है, जो देश और समाज के लिए बेहतर कार्य कर सकता था । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में एक कर्मठ और ईमानदार नेता के विरुद्ध हजरत मोहम्मद की दुहाई देकर प्रचार किया जाता है ''क्या आप उस सय्यद आबिद रज़ा को वोट देंगे ? जो होली खेलता है, जिसकी बेटी हर साल दो नाम हरम हिन्दुओं को राखी बांधती है ? अगर आपकी इस्लामी ग़ैरत मर गई है तो आप ऐसा जरूर कीजिए । मगर याद रखिये कि क़यामत के दिन पैगंबर को क्या मुंह दिखाएंगे ? मैं मानता हूं सय्यद आबिद रज़ा एक पढ़ा-लिखा आदमी है । मैं यह भी मानता हूं कि पहलवान अब्दुल गफ्फार साहब एक मर्दे-जाहिल है । मगर मैं यह भी जानता हूं कि ऑ हजरत ने अरब के पढ़े-लिखों को छोड़कर अनपढ़ बिलाले हब्शी रजी अल्लाह ताला अनहो को अपनी मस्जिद का मोवज़्ज़िन बनाया था ।'' [214]

इस प्रकार राही के औपन्यासिक शासित वर्ग के पात्रों के विवेचन से स्पष्ट है कि राही ने पात्रों के सामाजिक क्रिया-कलापों को प्रस्तुत किया और मुस्लिम समाज की राजनैतिक जागरूकता, देश भक्ति एवं विभाजन जनित पीड़ा का दिग्दर्शन कराया ।

3. अन्य वर्ग

क. जमींदारी उन्मूलन के विभिन्न स्तर एवं परिवर्तित जीवन

राही के औपन्यासिक कथा समय में जमींदार गॉव के मालिक थे । वे शासक एवं समस्त ग्राम की सामूहिक ज़िन्दगी के नियंता थे । गॉव की ज़िन्दगी में अच्छे बुरे रंग भरने की तूलिका उन्हीं के हाथ में थी । अत्याचार और अनाचार उनकी दृष्टि में ही परिभाषित होते थे । किन्तु जमींदारी उन्मूलन उनके एक छत्र राज्य का विघटनकारी कार्य सिद्ध हुआ । उन्मूलन के फलस्वरूप किसानों पर जमींदारों-जागीरदारों के परंपरागत राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकारों को गहरा धक्का पहुंचा । जीवन के विविध अधिकार-हनन ने उनकी आन्तरिकता को झकझोर दिया । कल तक आंखें और सिर

---

[213] वही, पृ0 262

[214] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 72-73

झुकाकर चलने वाले किसान जब अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत होकर इन सामंतों और जमींदारों के समक्ष तनकर खड़े हो गए, तो उनकी आंतरिक टूटन स्वाभाविक थी राही के 'आधा गॉव' उपन्यास में जमींदारों की यह टूटन सर्वत्र परिलक्षित होती है । इस प्रकार जो वर्ग पहले शासक था , वही अब शासित हो गया । दूसरे शब्दों में विशेषतः राही के उपन्यासों में जमींदारों का वर्ग शासक भी था और शासित भी । 'आधा गॉव' में जिन जमींदारों के सामने परसराम आंख मिलाने का भी साहस नहीं कर सकता था । अब वही परसराम नेता एम.एल.ए बनकर जमींदारों की कुर्सियों पर बैठकर नीतिनिर्धारण का काम करता है ।

राही के कुछ औपन्यासिक पात्र शासक और शासित होने का मानो अंतर पाट देना चाहते हों । उनके 'आधा गॉव' उपन्यास में जो जमींदार पात्र कभी शासकों की भूमिका में थे, वे अपनी जमीन के संपूर्ण मालिक थे । परंतु ग्राम-राजनीति के कुत्सित रूपों ने इन जमींदारों को आपस में ही लड़वा दिया और वे सब अपना-अपना हित साधन सोचने लगे ''मौलवी बेदार उमर उलक़ैस के किसी कसीदे का कोई शेर गुनगुनाने लगे और अपनी जमींदारी के झगड़ों पर सोचने लगे । वह बहुत दिनों से मंगरे वाली जमीन पर दांत गड़ाए हुए थे । मगर हकीम साहब से डरते भी थे । इसलिए इस मामले मे खुलकर हाथ डालना नहीं चाहते थे । उस जमीन पर फुन्नन मियां और हम्माद मियां की आंख भी थी । मौलाना का ख्याल था कि ये तीनों उलझ जाएं तो वह जमीन उनको मिल सकती है, क्योंकि इन तीनों को अपनी-अपनी बात रखने के लिए उनके नाम पर समझौता करना ही पड़ेगा ।'' [215]

इस प्रकार राही के उपन्यासों में ग्राम्य परिवेश तथा जमींदारी उन्मूलन के विभिन्न स्तरों का उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

ख. यथार्थ प्रेषण की संरचना

राही जी ने अपनी सजग और पैनी नजर के अनुरूप अपने उपन्यासों में व्यंग्य-चरित्रों की स्थापना की है । जिनसे वह भारतीय जनजीवन में व्याप्त अव्यवस्था और भ्रष्टाचार के बीच झूलते हुए जन-साधारण की आकांक्षाओं और प्रतिक्रियाओं की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति करते हैं । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास का टोपी एक ऐसा ही चरित्र है । वह अपने बड़े और छोटे भाइयों में से किसी को अपना समर्थन नहीं देता, जो

[215] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 271

जनसंघ और कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ रहे होते हैं । साथ ही वह कम्युनिस्ट पार्टी के इन कार्यों को भी ग़लत ठहराता है ''वह पार्टी को इस बात पर माफ नहीं कर सकता था कि उसने जंग में अंग्रेजों का और पाकिस्तान के बारे में मुस्लिम लीग का साथ दिया था ।'' [216]

राही का 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास तो 'आपात स्थिति का यथार्थ' [217] तथा 'इमरजेंसी के कैक्टस के गुलदस्ते' के रूप में स्वीकृत किया गया है । जिसके पात्र उस समय की राजनैतिक स्थिति की सच्चाई को व्यंग्यात्मक ढंग से सम्मुख रखते हैं । उस समय इन्दिरा गॉधी ने 'ग़रीबी हटाओ' का प्रचलित नारा दिया था । किन्तु उपन्यास के घटनाक्रम से विदित होता है कि ग़रीबी हटाने का काम किया था । इस उपन्यास का इतवारी बाबा नाम का एक पात्र उपन्यास में जगह-जगह व्यवस्था के प्रति कटाक्ष करता हुआ दिखाई देता है । देशराज और बिल्लो नामक पात्रों द्वारा एक घर के सपने को पूरा करने के उपक्रम में इतवारी बाबा का कहना है ''अरे घर का चक्कर छोड़ो तूं लोग । जब साहजहां ताजमहल बनवाइन रहा तब ससती का जमाना रहा । अब तो क्रियाकर्म में पहले के सादी-बिआह से दूना-तिनगुना खरच हो जाता है । चले हैं घर बनाए ।'' [218] इसी प्रकार जब महनाज का जोखन के साथ अनमेल विवाह होता है और वहां का पूरा परिदृश्य नैराश्यपूर्ण हो जाता है, तब वह भोलानाथ पहलवान से कहता है ''आजकल हर महल्ले में एक-आध ठो जोखन और महनाज हैं । जिन्दगिए मैयली हो गई है पहलवान ।'' [219] भिखमंगा इतवारी अपनी वसीयत में तत्कालीन राजनैतिक प्रमुख श्रीमती इन्दिरा गॉधी के राजनैतिक ढोंगों को नंगा करता है ''बंक में बारह हजार तीन सौ सत्ताइस रुपया चौबिस पैयसा नकद है । तो हम लिखवा दिया है कि हमरे मरे के बाद हमारा क्रियाकरम तो चन्दे से किया जाय केह मारे कि अपनी कमायी का कफ़न पहिने में हमें सरम आएगी । और हमरी राख कटरा मीर बुलाकी मलतब कटरा स्रीमती गॉधी की कउनो गन्दी नाली में बहा दी जाए कि ओके गन्दे पानी में मिलके गंगाजी में मिलना चाहता हूं । साफ़-सुथरे गए तो मज़ा ना आएगा ।..... बाकी रुपया हम तोरी स्रीमती गॉधी के नाम कर दिया है । उनके ज़माने में हमरे पैसे वालन की बड़ी तरक्की भयी है । लोग कहते हैं कि इजिनियर और डाकटर बहुत

[216] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 111
[217] डॉ विवेकी राय, आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम, पृ0 23
[218] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 20
[219] वही, पृ0 71

बढ़ गए । बाकी हम कहित हैं कि देस में भीख मांगे वालन की आबादी बहुत बढ़ गई है ।'' [220]

इस प्रकार डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के उपर्युक्त तरह के अन्य वर्गीय पात्र; जो शासक और शासित दोनों ही हैं या कहें कि न शासक हैं और न शासित । राजनैतिक यथार्थ की गहन गोताखोरी करते हुए अपनी प्राणवंत प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते हैं । नारों और यशोलिप्सा के फार्मूलों, विसंगतियों और शब्द-जाल के घटाटोप वातावरण में कुछ नया, सच और एकदम ईमानदार देने की बेचैनी राही के कुछ अन्यवर्गीय पात्रों की चारित्रिक अस्मिता है ।

निष्कर्ष

राही जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में भारतीय राजनीति के विषाक्त रूपों का खुलकर चित्रण किया है । वर्तमान लोकतंत्र से उनकी आस्था डगमगा गई थी, क्योंकि इस पर पूंजीवादी तत्वों का आधिपत्य हो गया है । दलबंदी, स्वार्थ-लिप्सा तथा भाई-भतीजावाद ने जन-सेवा के व्रत को पछाड़ दिया है । स्वार्थ साधन में संलिप्त नेतागण महाभारत के गीध की आंख की भांति अपना स्वार्थ ही देखते हैं । वह कुर्सी की भूख को शान्त करने के लिए नर बलि देने में भी हिचकिचाते नहीं है । राही सबको जीवन-सुलभ सामग्री जुटाने वाली विचारधारा साम्यवाद के प्रति आश्वस्त हैं । रूढ़िवादी परंपराओं, सामाजिक एवं राजनैतिक अभिशापों से टकराने की क्षमता इसी विचारधारा में है ।

राही ने वर्तमान राजनीति के गिरते हुए स्तर जाति एवं धर्म के नाम पर की जाने वाली राजनीति, राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता, 'फूट डालो और राज करो' की अंग्रेजी नीति एवं राजनेताओं के चारित्रिक एवं नैतिक पतन जैसी राजनैतिक समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है और इन्हें समाज तथा देश के लिए घातक बताया है ।

[220] वही, पृ0 144

सप्तम् अध्याय

डॉ राही मासूम रज़ा की पात्र चित्रण-कला

1. भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का सर्वप्रधान माध्यम है । हृदयस्थ भावों का सहज उद्रेक भाषा के द्वारा ही होता है । कल्पना एवं अनुभूति का सहज प्रस्फुटन भाषा द्वारा ही संभव है । साहित्य में भाषा ही कथा और उसके पात्रों को वाणी प्रदान करती है । इस प्रकार भाषा पात्र-चित्रण के विभिन्न तत्वों में से एक प्रमुख अंग है, क्योंकि अन्य सभी तत्वों की उपयोगिता को अभिव्यक्ति ही सशक्त बनाती है ।

उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल तथा देश-काल और वातावरण के अनुरूप होनी चाहिए । एक अच्छी भाषा का गुण यह भी है कि वह लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक हो । इस संबंध में स्वयं राही जी का मत है कि 'अच्छे संवाद की पहचान यह है कि वह अच्छी प्रोज भी हो और समझ में भी आए ।' [221] मुहावरे-लोकोक्ति, प्रतीक, उक्ति-सूक्ति तथा अलंकारों का प्रयोग भाषा को रोचक तथा प्रभावशाली बनाता है, किन्तु वह सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुए हों । कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों की भाषा सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुई है । भाषा का बहुआयामी एवं बहुरंगी रूप राही के उपन्यासों में प्रयुक्त हुआ है । राही ने अपने उपन्यासों के पात्रों का चित्रण करने में पूर्व निर्धारित परंपराओं एवं मानकों का पालन नहीं किया है, बल्कि अपनी विशिष्ट एवं मौलिक भाषा प्रस्तुत की, जिसे पढ़ते ही पाठक बता देता है कि यह भाषा राही के अरिरिक्त राही के अतिरिक्त किसी और की हो ही नहीं सकती ।

राही के उपन्यासों की भाषा कथा, देश-काल एवं वातावरण, परिस्थिति तथा पात्रों के अनुकूल है । उन्होंने अपने उपन्यासों में लेखक के रूप में जहां स्वयं प्रवेश किया है, वहां उनकी भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक है । उनकी भाषा परिस्थित्यनुरूप प्रयुक्त हुई है । जब 'आधा गॉव' उपन्यास में वे अपने बचपन की स्मृतियों का उल्लेख

---

[221] डॉ धर्मवीर भारती, कुछ चेहरे : कुछ चिन्तन (आलेख 'राहें, जिन पर राही चले'), पृ0 187

करना चाहते हैं, तो वहां वे उर्दू-भोजपुरी मिश्रित आंचलिक भाषा का प्रयोग करते हैं । उनके पात्र जिस वर्ग और जिस स्तर के हैं, वे वैसी ही भाषा बोलते हैं । 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास का हिम्मत कम पढ़ा-लिखा मजदूर है । राही ने उससे अनगढ़, किन्तु स्वाभाविक भाषा ही प्रयुक्त कराई है । उसकी भाषा का नमूना है ''देख जमुना ! हम तोसे कै बेरी कह चुके हैं कि तैं हम्मे भगवान से मत मिलाया कर ।'' [222] वहीं 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में एक जिलाधिकारी के लड़कों से उन्होंने अंग्रेजी वाक्यों में अपनी अभिव्यक्ति कराई है -

''हू आर यू ?'' डब्बू ने सवाल किया
''बलभद्दर नाराएन'' टोपी ने जवाब दिया
''हू इज योर फादर ?'' यह सवाल गुड्डू ने किया
''भृगुनाराएन'' [223]

राही ने एक सांप्रदायिक दंगे के वर्णन में इफ्फन की रक्षा करते हुए एक सिख पात्र द्वारा पंजाबी भाषा भी प्रयुक्त कराई है ''असी अहमद अब्बास दा सरदार जी हों! ऐ लो ! तुसी अपनी अमानत संभालो....।'' [224]

इस प्रकार राही ने परिवेश और पात्र दोनों ही के अनुरूप भाषा गढ़ी है, जो सर्वथा उपयुक्त है । अपनी औपन्यासिक भाषा में उन्होंने देशज, तद्भव (हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी तथा उर्दू) तथा आंचलिक शब्दों (भोजपुरी तथा अवधी) का प्रयोग करके भाषा को सहज बना दिया है ।

राही ने अपने उपन्यासों में पाठकों का तादात्म्य देश-काल और वातावरण से स्थापित किया है । 'आधा गॉव' उपन्यास के गंगौली गॉव का परिवेश ग्रामीण, मुस्लिम बहुल एवं आंचलिक है । इसलिए इसमें अधिकांशतः उर्दू मिश्रित भोजपुरी भाषा प्रयुक्त हुई है ''ऐ धिया, तनी देख के बहिनी ! मोरा पैरव कूच दियो । आग लगे ई माटी मिली अंगरेजी जूतियन को ।'' [225] 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में अलीगढ़ मुस्लिम

[222] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 43
[223] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 43
[224] वही, पृ0 51
[225] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 38

विश्वविद्यालय का परिप्रेक्ष्य दिखाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उसकी एक झलक दृष्टव्य है -

''बैठिए, बैठिए'' वाजिद ने कहा । टोपी एक तरफ सरक गया । सलीमा उसी के पास बैठ गई । सामने वह लेक्चरर बैठे । ''चाय-वाय ?''

''जी नहीं, अभी पी है ।''

''पैसे दे दिए ?''

अभी नहीं दिए हैं । वह...'' [226]

भाषा जहां एक ओर देश-काल और वातावरण को स्पष्ट करने में सहायक होती है । वहीं वह देश-काल और वातावरण से प्रभावित भी होती है । व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है, उस वातावरण का प्रभाव उसकी भाषा पर पड़ना स्वाभाविक है 'आधा गॉव' का परसराम चमार जो कांग्रेसी नेता होने से पहले ईहर, दुहर, अइले, गइले (भोजपुरी के आंचलिक शब्द) बोलता था, वही अब परिमार्जित भाषा बोलने लगा है -

''अच्छा हूं, मेजर साहब!'' परसराम ने कहा''इन सांप्रदायिक बलवों ने परेशान कर दिया है । समझ में नहीं आता कि इंसान पागल क्यों हुआ जा रहा है ।'' [227]

इस प्रकार राही जी ने हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी ही नहीं पंजाबी भाषा के वाक्यों को यत्र-तत्र पात्रों की मनोदशा, वातावरण तथा उनके सामाजिक स्तर के अनुरूप सजाया है ।

हिन्दी-उर्दू एकता : डॉ राही मासूम रज़ा की पात्र चित्रण-कला के भाषायी संदर्भ में उल्लेखनीय है कि राही हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषाएं नहीं मानते थे । वह तो उर्दू को हिन्दी की एक शैली मानते थे, जिसे उनके अनुसार अब देवनागरी लिपि में लिखा जाना चाहिए । इसीलिए राही अपनी भाषा को देवनागरी में लिखी उर्दू मानते रहे । उर्दू को वह लैप्यिक स्तर पर मृतभाषा मानते थे, क्योंकि उसका अब जनसामान्य में कोई उपयोग नहीं रहा । किन्तु वह उर्दू की पहचान बनाने के लिए उसे देवनागरी लिपि में लिखे जाने के पक्षधर थे । वह उर्दू साहित्य को हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रखने के पक्ष में भी थे । ऐसा करने से उनके अनुसार उर्दू जीवित बनी रहेगी और

[226] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 143-144

[227] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 277

उर्दू का समृद्ध साहित्य भी । राही भाषा को महत्वपूर्ण मानते थे, लिपि को नहीं । उन्होंने 'ओस की बूँद' उपन्यास में लिखा है ''लिपि तो भाषा का वस्त्र है । उसका बदन नहीं है, आत्मा की बात तो दूर रही । मातृभाषा की तरह कोई मातृलिपि नहीं होती, क्योंकि लिपि सीखनी पड़ती है और मातृभाषा सीखनी नहीं पड़ती ।'' [228]

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि राही उर्दू की भाँति हिन्दी की वर्तमान दशा से भी संतुष्ट नहीं थे । अंग्रेजी के सामने हिन्दी भी दूसरे स्तर की भाषा बन गई है । हिन्दी पाठकों की ह्रासोन्मुखता के कारणों की विवेचना करते हुए कहते हैं ''लाठ साहब किस्म के लोग हिन्दी की किताबें नहीं पढ़ते । सच तो यह है कि लाठ साहब के लोग किताबें पढ़ते ही नहीं । वह केवल किताबें खरीदते हैं । वह भी अंग्रेजी की किताबें और महंगी किताबें । छोटे लाठ साहब लोग पेरी मेसन और आगाथा कृस्थी और पीटर चेनी और आयन फ्लेमिंग पढ़ते हैं और रसल को बुकशेल्फ में लगाते हैं । इसलिए प्रिय पाठको ! यदि तुम यह किताब खरीदकर पढ़ रहे हो तो मेरी ही तरह साधारण यानी दूसरे वर्ग के लोग हो ।'' [229]

प्रतीकात्मक भाषा : राही जी ने अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है, जो उनकी भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने एवं सौन्दर्य वृद्धि में सहायक हुई है, जैसे ''देश फिर मुस्करा दिया । ''कुछ बोलिहौ ना ।''

''श्रीमती गाँधी जिन्दाबाद ।'' देश बोला

देश की इस बात का बिल्लो के पास कोई जवाब नहीं था । वह चुप हो गयी और मकड़ी के जाले की तरफ देखने लगी, जो छत के एक कोने में था और जिसमें एक मक्खी की लाश फंसी हुई थी और मकड़ी का पता नहीं था ।'' [230]

उपर्युक्त उद्धरण में मक्खी देश का, मकड़ी श्रीमती इन्दिरा गाँधी का तथा मकड़ी का जाला बिल्लों के मन में होने वाली उथल-पुथल और अंतर्द्वन्द्व के प्रतीक हैं

गणितीय भाषा : राही ने अपनी औपन्यासिक भाषा में गणितीय भाषा अपना कर नए प्रयोग किए भी हैं । इसके कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं -

---

[228] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 27
[229] डॉ राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, पृ0 110-111
[230] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 206

''पत्नी X मकान = ?'' [231]

''प्यार X जरूरत X आमदनी = ?'' [232]

''एक सिगरेट = एक आना ।
एक आना = एक निवाला खाना ।
एक निवाला खाना = एक चुल्लू पसीना ।
एक चुल्लू पसीना = एक क़तरा खून = अपना खून ।''[233]

प्रस्तुत उदाहरणों में अत्यल्प शब्दों में एक सिगरेट को अपने खून के क़तरे के बराबर बताया गया है । गणितीय भाषा द्वारा निकले भारतीय राजनीति संबंधी इस निष्कर्ष से इस अधोलिखित उद्धरण में उनका चिन्तन झलक जाता है -

''स्मगलिंग X दादागीरी = राजनीति
ज़बान X भाषा = राजनीति
धर्म X मज़हब = राजनीति
∵ स्मगलिंग X दादागीरी = राजनीति
∵ धर्म X मज़हब = राजनीति
∴ स्मगलिंग X दादागीरी = धर्म X मज़हब
और अगर इन सबको जोड़ दे ंतो हासिल जमा : लाश ।'' [234]

इस प्रकार राही के गणितीय भाषा के प्रयोग दर्शनीय हैं । ऐसे प्रयोगों में वे पूर्णतः सफल रहे हैं ।

गाली प्रयोग : डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों की सर्वाधिक आलोचना उनमें प्रयुक्त गालियों को लेकर हुई है । जहां आलोचकों का एक वर्ग उपन्यास में प्रयुक्त गालियों को कथानक एवं वातावरण के अनुकूल मानता है । इस वर्ग के एक विद्वान सुरेन्द्रनाथ

[231] डॉ राही मासूम रज़ा, दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 67
[232] वही, पृ0 93
[233] वही, पृ0 94
[234] डॉ राही मासूम रज़ा, असन्तोष के दिऩ, पृ0 66

तिवारी के अनुसार 'जहां केवल गाली के रूप में ही उनका (गालियों का) प्रयोग किया जाता है, वहां भाषा का दोष मानना चाहिए । ....गालियां आपसी बातचीत का तेवर होती हैं । अत्यंत आवेश और उत्तेजना के क्षणों में ही उनका प्रयोग होता है ।'' [235] आलोचकों का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी है, जो उपन्यासों में प्रयुक्त गालियों को अलग से चिपकी हुई तथा लेखक का दुराग्रह मानकर उनकी निन्दा करता है ।

गालियों के संदर्भ में डॉ राममनोहर लोहिया अस्पताल नई दिल्ली के वरिष्ठ मनोचिकित्सक डॉ मनोहित नारायण लाल कहते हैं 'आमतौर पर निम्न व निम्न मध्यम वर्ग में गालियों का प्रचलन नजर आता है । छोटी जातियों का समुदाय पढ़ा लिखा न होने और आर्थिक रूप से पिछड़ा होने से कुण्ठाओं में जीता है और आक्रोश में पलता है । इन सबका नतीजा गाली होता है । गाली देने वाला एक वर्ग उन लोगों का भी है, जो अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए गालियों का प्रयोग करता है ।' [236]

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के गालियों का प्रयोग करने वाले पात्र उक्त दोनों वर्गों से ही आते हैं । 'आधा गॉव' के गाली प्रयोक्ता पात्र एक ओर फुन्नन मियां और हकीम अली कबीर जमींदार और दबंग हैं दूसरी ओर मिगदाद जैसे मजदूर और किसान पात्र गालियों का प्रचुर प्रयोग करते हैं । इन गाली प्रयोक्ता पात्रों की मनोपरीक्षा करते हुए समीक्षक डॉ विवेकी राय लिखते हैं 'वास्तव में ये ज़िन्दगी से ऊबे, पीड़ित, निराश और शहर जाने से बचे हुए लोग हैं । इनका मन आर्थिक कारणों से असंन्तुलित हो गया होता है । जमींदारी के रहते इन लोगों ने जो शानदार ज़िन्दगी बिताई, उसके टूटते ही वह टूट गए । इन शरीर और मन से निचुड़े लोगों के सामने अब ज़िन्दगी का कोई सपना नहीं रह गया होता है । ये मनोव्याधिग्रस्त लोग, जिनकी ज़िन्दगी के अन्तर-बाह्य संघर्ष बौखलाहट में प्रतीकात्मक रूप से गालियों में प्रकाशित होने लगते हैं ।' [237]

राही ने अपने उपन्यासों 'आधा गॉव', 'ओस की बूँद' तथा 'कटरा बी आर्जू' में संगीन गालियों का खुलकर प्रयोग किया है, तो 'दिल एक सादा काग़ज़', 'टोपी

---

[235] संचेतना (वसंतांक) 1968, पृ0 80 । सुरेन्द्रनाथ तिवारी का लेख 'समीक्षात्मक कोण पर आधा गॉव'

[236] सरिता, जनवरी (द्वितीय) 1992, पृ0 80

[237] भीष्म साहनी (संपादक), आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ0 500-501 । डॉ विवेकी राय का आलेख 'सृजन की साहसिकता : आधा गॉव'

शुक्ला', 'सीन : '75', 'असन्तोष के दिन' तथा 'हिम्मत जौनपुरी' में हल्की-फुल्की गालियों का यत्र-तत्र प्रयोग किया है ।

गालियों के संदर्भ में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए राही अपने एक उपन्यास में लिखते हैं ''गालियां मुझे भी अच्छी नहीं लगतीं । मेरे घर में गाली की परंपरा नहीं है । परंतु लोग सड़कों पर गालियां बकते हैं । पड़ोस से गालियों की आवाज आती है और मैं अपने कान बंद नहीं करता ।....फिर यदि मेरे पात्र गालियां बकते हैं, तो आप मुझे क्यों दौड़ाते हैं ? वे पात्र अपने घरों में गालियां बक रहे हैं । वे न मेरे घर में हैं, न आपके घर में ।'' [238]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राही अपने कथ्य को उसी खुरदरे रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, जिसके मूल रहस्य और परिणाम से पाठक परिचित होना चाहता है ।

अनैतिक बिंब : राही के इन उपन्यासों - 'आधा गॉव', 'ओस की बूँद', 'दिल एक सादा काग़ज़' तथा 'सीन : '75' - में ऐसे अनैतिक बिंब हैं, जो पाठकों में कामोत्तेजना का भाव पैदा कर सकते हैं । इसके मूल में फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद तथा सा़र्त्र का अस्तित्ववाद से राही का प्रभावित होना है । जिसकी चर्चा हम चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं ।

यहां यह कहना आवश्यक होगा कि बिंब भी भाषा और प्रभाव के मध्य की एक कड़ी होते हैं, जिनसे भाषा सजीव और चित्रात्मक हो जाती है । पुनः आधुनिक साहित्य यथार्थ साहित्य है और यथार्थ में अश्लीलता और अनैतिकता का परिभाषा नहीं अश्लीलता तो मन का एक दोष है । जैसा 'आधा गॉव' उपन्यास के प्रथम प्रकाशक अक्षर प्रकाशन के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है, 'अश्लीलता स्थितियों में होती है ।'[239]

अलंकार

[238] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, भूमिका से
[239] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, प्रकाशकीय वक्तव्य से

अलंकारों के प्रयोग से भाषा की सौन्दर्य वृद्धि होती है, किन्तु आलंकारिक भाषा का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग ही साहित्य में वांछित है । अतिशय आलंकारिक भाषा कभी-कभी अरुचिकर हो जाती है और साहित्य में बनावटीपन आ जाता है । यह साहित्य की लोकप्रियता के लिए अहितकारी है । डॉ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है । उनके उपन्यासों में प्रयुक्त कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं -

आधा गाँव, पृ02 - ''गंगा इस नगर के सिर पर और गालों पर हाथ फेरती रहती है, जैसे कोई मां अपने बीमार बच्चों को प्यार कर रही हो, परंतु जब इस प्यार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती तो गंगा बिलख-बिलखकर रोने लगती है ।''

- उपमा एवं मानवीकरण अलंकार

वही, पृ0 3 - ''समय के घड़े में एक पतला-सा छेद है, जिससे क्षण-क्षण समय टपकता रहता है । यह शहर क्षण-क्षण जीता है, क्षण-क्षण मरता है और फिर जी उठता है ।''

- रूपक, पुनरुक्ति एवं मानवीकरण अलंकार

वही, पृ0 4 - ''युग एक बिना जिल्द की किताब की तरह मैदान में पड़ा हुआ है । हवा की हल्की-सी लहर भी इसके फरसव उलटती रहती है ।''

-उपमा एवं मानवीकरण अलंकार

वही, पृ0 28 - ''दिलआरा और सितारा बाजू बनी हुई थीं और वे तीनों आवाजें ऐसी लग रही थीं, जैसे करौंदे की दो चंचल झाड़ियों के बीच में आम का कोई छतनार पेड़ खड़ा हो - उनसे अलग भी, उनसे पास भी ।''

- उपमा एवं विरोधाभास अलंकार

वही, पृ0 101 - ''वह काजल नहीं लगाती थी, लेकिन ऐसा मालूम होता था, जैसे सुबह उठते ही झंगटिया बो ने उसकी आंखों में बड़े प्यार से काजल डाला है ।''

- विभावना अलंकार

टोपी शुक्ला, पृ0 61 - ''अपने उसूलों के भी बड़े पक्के थे और उनका सबसे बड़ा उसूल यह था कि दोस्ती में उसूल नहीं देखे जाते ।''

- विरोधाभास अलंकार

वही, पृ0 62 - ''जागते-जागते देश की आंखें दुखने लगी हैं ।''

- मानवीकरण अलंकार

ओस की बूँद, पृ0 24 - ''मुस्कुराहट बिजली की तरह चमकी । पल भर के लिए उजाला करके अंधेरे को और बढ़ा गयी ।''

- उपमा एवं स्वाभावोक्ति अलंकार

वही, पृ0 90 - ''बेरोजगारी लड़कियों की उम्र की तरह बेरोकटोक बढ़ती चली जा रही है ।''

- उपमा अलंकार

सीन : '75, पृ0 21 - ''टैलेण्ट को आशा की ओस चटाते रहना चाहिए ।''

- रूपक अलंकार

वही, पृ0 97 - ''कमरे का सन्नाटा इतना खुरदुरा था कि ख़्वाबों की नर्म जिल्द छिली जा रही थी ।''

- मानवीकरण अलंकार

कटरा बी आर्जू, पृ0 72 - जनता साली मछली माफिक है । नेता लोग सपनों का चारा लगा के जिन्दगी के तालाब में कांटा फेंकते हैं और हम लोग गपागप चारे के साथ कांटा निगल जाते हैं और फिर पांच बरस के बाद जिन्दा करके तालाब में फेंक दिए जाते हैं ।''

- उपमा एवं रूपक अलंकार

वही, पृ0 161 - ''बिल्लो ने जल्दी से पेट को साड़ी में छिपा लिया । और पेट को यूं साड़ी से छिपाती हुई बिल्लो उसे तमाम हेमामालिनियों, तमाम रेखाओं और तमाम जीनत अमानों से कहीं ज़्यादा खूबसूरत दिखाई दी ।''

- प्रतीप अलंकार

वही, पृ0 200 - ''और फिर उसके होंठों पर अजीब-सी मुसकुराहट आई । शराब की खाली बोतल-सी, किसी अर्थहीन कविता-सी मुसकुराहट । सरकार से किए हुए वादों-सी मुसकुराहट । काग़ज़ के फूल-सी मुसकुराह ।....मुसकुराहट जिसका कोई रंग, कोई रंग और कोई अर्थ नहीं था ।''

- मालोपमा एवं मानवीकरण अलंकार

असन्तोष के दिन, पृ0 25 - ''अपने जीवन में पहली बार उसने एक शर्मनाक डर का अनुभव किया । यह डर हजार पैरों वाले एक कीड़े की तरह उसके सारे व्यक्तित्व पर रेंग गया ।''

- उपमा अलंकार

वही, पृ0 77 - ''सैयद के आंसुओं ने उसके सपनों की गलियों को गीला कर दिया और वह अपनी उदासी को कंबल की तरह ओढ़कर लेट गया ।''

- मानवीकरण एवं उपमा अलंकार

हिम्मत जौनपुरी, पृ0 119 - ''हिम्मत से बम्बई पहली बार बोली थी सीधे मुंह से ।''

- मानवीकरण अलंकार

वही, पृ0 126 - ''जमुना बोली ! अरे अपन से इतना प्यार मत कर हिम्मत अपन तो फुटपाथ हैं रे । तू भी गुज़र जा ।''

- श्लेष अलंकार

वही, पृ0 115 - ''जमुना भादों के महीने की तरह चमकी ।''

- उपमा अलंकार

वही, पृ0 78-79 - ''पाकिस्तान तो आप जानिए खुदा की बस्ती है । वहां कुछ भी साबित किया जा सकता है ।''

- विरोधाभास अलंकार

इस प्रकार राही ने विभिन्न अलंकारों के माध्यम से अपने पात्रों का चित्रण किया है । उन्हें उपमा, विरोधाभास, रूपक एवं मानवीकरण अलंकारों में पूर्ण सफलता एवं उत्कृष्टता प्राप्त हुई है और यही उनके उपन्यासों में प्रयुक्त प्रमुख अलंकार भी हैं

मुहावरे एवं लोकोक्तियां

'मुहावरा' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका तात्पर्य है - परस्पर बातचीत का अर्थ-बोध कराने वाला । मुहावरे वे वाक्य खण्ड होते हैं, जो अपना अर्थ वाक्य में प्रयुक्त होने पर प्रकट करते हैं । स्वतत्र रूप से प्रयोग करने पर ये कोई अर्थ नहीं देते । मनुष्य ने जिन वस्तुओं को कौतूहल से देखकर निरीक्षण अनुभव किया । उनके बारे में की गई सूत्रात्मक अभिव्यक्ति मुहावरा बन गई । मुहावरे के मूल में लाघवप्रियता है, क्योंकि मनुष्य अपनी बात को कम-से-कम शब्दों में रहस्यात्मक रूप से प्रकट करना चाहता है ।

म्हावरे के साथ एक शब्द और जुड़ा मिलता है, लोकोक्ति । लोकोक्ति का अर्थ है लोक द्वारा कही हुई उक्ति या कथन । कहावत के रूप में इनका अर्थ लिया जाता है । इनमें भी मुहावरों के समान मानवीय ज्ञान घनीभूत रूप में समाविष्ट रहता है और यह भी मानवार्जित ज्ञान को सूत्र रूप में अभिव्यक्त करते हैं ।

राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर लोकोक्ति एवं मुहावरेदार भाषा का उसी प्रकार प्रयोग किया है, जिस प्रकार अंगूठी में नग जड़ा होता है । इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

आधा गॉव, पृ0 3 -''मुसलमान कहते हैं कि अजान का वार कभी खाली नहीं जाता ''

(वार खाली न जाना - असफल न होना)

वही, पृ0 29 -''मेरी जान में जान आ गई कि चलो मुकाबला तो टल गया ''

(जान में जाना आना - तसल्ली होना)

वही, पृ0 45 - ''हिन्दोस्तानी मुसलमान की तक़दीर में तो रोना लिखा है ।''

(तकदीर में रोना लिखा होना - दुःखी होना)

वही, पृ0 112 - ''बाद में जब हंगामा हुआ तो उन्होंने बताया कि उनका माथा तो उसी राज ठनका था । हालांकि उस रोज उनका माथा-वाथा हरगिज नहीं ठनका था ।''

(माथा ठनकना - शक होना)

वही, पृ0 141 - ''रस्सी जल गई पर बल न गया ।''

(सब कुछ नष्ट होने पर भी अकड़ बनी रहना)

वही, पृ0 213 - ''वह तो कहिए कि गया अहीर मौजूद था वरना हम्माद मियां तो बिल्कुल ही बेदस्तो-पा हो गए होते ।''

(बेदस्तो-पा होना - असहाय होना)

दिल एक सादा काग़ज़, पृ0 53 - ''यह बताओ कि जो तुम्हारा बाप पकड़ न लिया होता तो किसे मारता ? यह बोला जो हत्थे चढ़ जाता ।''

(हत्थे चढ़ जाना - पकड़ में आना)

टोपी शुक्ला, पृ0 24 - ''रामदुलारी का कलेजा सास की बातों से पक गया । उसका दिल खट्टा हो गया ।''

(दिल खट्टा होना - दुःखी होना)

ओस की बूँद, पृ0 39 - ''शहला का प्यार बिल्कुल पर्दे की बूब था ।''

(पर्दे की बूब होना - छिपा होना)

वही, पृ0 83 - ''यह लोगों से यह कहता रहता है कि यह उस आल इण्डिया, अखिल भारतीय या कुलहिन्द लीडर की नाक का बाल है ।''

(नाक का बाल होना - प्रिय होना)

सीन : '75, पृ0 206 - ''आज मैं यह ऐलान करना चाहता हूं कि 'फकीर सेना' विरोधियों को मुंहतोड़ जवाब देगी ।''

(मुंह तोड़ जवाब देना - करारा जवाब देना)

कटरा बी आर्जू, पृ0 126 - ''कंघई-ओघई बाद में करेंगे । शहनाज ने कहा, तुम पहिले मां को कुछ खिला द्यो भाउज । पेट में चूहा कूद रहा ।''

(पेट में चूहा कूदना - जोर की भूख लगना)

असन्तोष के दिन, पृ0 39 -''दांतों में खुजली हो रही थी, अब्बास ने जवाब दिया ।''

(दांतों में खुजली होना - गुस्सा आना)

हिम्मत जौनपुरी, पृ0 124 - ''हम्माद त अइसा सोंठ खींच के बइठ गए हैं की कोई का कहे ।''

(सोंठ खींच के बैठना - चुपचाप बैठना)

इस प्रकार राही ने अनेक मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके अपनी औपन्यासिक भाषा को चुस्ती, कसाव एवं आकर्षण प्रदान कर सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है । राही की भावाभिव्यक्ति इससे अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ी है ।

उक्ति-सूक्ति

'उक्ति' का अर्थ 'कोई कथन' होता है, किन्तु जब इस शब्द मे 'सु' उपसर्ग लगा दिया जाय तो यह 'सूक्ति' शब्द बन जाता है, जिसका अर्थ है 'सुन्दर कथन' । यह कथन महापुरुषों द्वारा उनकी तपस्या के फलस्वरूप जनता के बुद्धि-कर्म कल्याणार्थ कहे जाते हैं । साहित्य में सूक्तियों का प्रयोग विचारों की गहनता और भावों की गंभीरता हेतु श्रेष्ठ माना जाता है । इनके प्रयोग से साहित्य में गुरुता तो आती ही है, उसकी सौन्दर्य-वृद्धि भी होती है । राही ने अपने उपन्यासों में कहीं अपने पात्रों से तो कही कथावाचक के रूप में मौलिक और कहीं सुनी-पढ़ी किन्तु अपने शब्दों में सूक्तियों का प्रयोग किया है । इनके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

''समय के घड़े में पतला-सा छेद है, जिससे क्षण-क्षण समय टपकता रहता है''

- **आधा गॉव**, पृ0 3

''नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती ।''

- वही, पृ0 285

''ज़िन्दगी की कहानियां कभी खत्म नहीं होतीं ।''

- वही, पृ0 285

''राजनीति बड़ी खुदग़रज़ और बेमुरव्वत होती है ।''

- **दिल एक सादा काग़ज़**, पृ0 160

''प्यार शायद एक तेज धार वाला चाकू है । उल्टा-सीधा लग जाय तो लहूलुहान कर देता है ।''

- वही, पृ0 178

''गुलामी, धर्म और प्रकाश का पुराना वैर है ।''

- **टोपी शुक्ला**, पृ0 19

''साधारण मनुष्य ग्रामर की समस्याओं पर विचार नहीं करता ।''

- वही, पृ0 10

''इतिहास नाम है समय की आत्मकथा का ।''

- वही, पृ0 59

''घर दीवारों का नाम नहीं, बल्कि एक कल्पना का नाम है ।''

- **ओस की बूँद**, पृ0 21

''यह दरवाजे भी क्या चीज होते हैं । रास्ता देने वाले भी यही और रास्ता रोकने वाले भी यही ।''

- वही, पृ0 62

''हर लकीर एक जगह से शुरू होकर दूसरी जगह खत्म हो जाती है ।''

- वही, पृ0 100

''गुजरे हुए कल की दीवार से पीठ लगाए सभी अपने वर्तमान की तरफ डरी हुई निगाहों से देख रहे हैं ।''

- **सीन : '75**, पृ0 114

''साहित्यकार के बाद पत्रकार ही देश की आत्मा और उसकी सच्चाई का रखवाला होता है ।''

- **कटरा बी आर्ज़ू**, पृ0 13

''चोरों में लड़ाई होने का मतलब यह है कि पहले एक चोरी हुआ करती थी, अब दो चोरियां होंगी ।''

- वही, पृ0 19

''पैसे का कोई धर्म नहीं होता ।''

- **असन्तोष के दिन**, पृ0 13

''पानी जहां बरसता है, वहीं का हो जाता है ।''

- **हिम्मत जौनपुरी**, पृ0 77

''कार की लंबाई से कला की लंबाई नापी जाती है ।''

- वही, पृ0 103

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राही ने अनेक मौलिक उक्तियां-सूक्तियां अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करके सौन्दर्य-बोध एवं अर्थ-गांभीर्य की अभिवृद्धि की है । ये सूक्तियां उन्होंने अपने कलाप्रेमी और बुद्धिजीवी पात्रों अथवा स्वयं कथावाचक के रूप में प्रस्तुत की हैं ।

2. शैली

उपन्यास का विषय मानव-जीवन है । अतः उपन्यास की सफलता मूलतः उसके चरित्र-चित्रण पर निर्भर करती है । चरित्र-चित्रण की सफलता इस बात पर केन्द्रित है कि उसके पात्र कहां तक सजीव-साकार रूप प्राप्त कर पाए हैं । इस संदर्भ में डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है - 'यदि उपन्यास मानव-चरित्र का चित्रण तो इसका सबसे बड़ा गुण है - पात्रों की सजीव परिकल्पना । उपन्यासकार की मनः कल्पित सृष्टि की अनुरूपता न पा सके । यदि इस नवीन सृष्टि के पात्र हमें किसी अनजाने देश के लगे और यदि उनके साथ हमारी वैसी ही सहानुभूति न हो सकी, जैसी अन्य मानवों के साथ होती है, तो वे मानव सृष्टि के चित्र नहीं; किसी अन्य सृष्टि के भले ही हों । यदि हम पात्रों में अपने ही जैसा राग-द्वेष, क्रोध, करुणा, प्यार, घृणा आदि भाव देखें; यदि वे विशेष परिस्थितियों मं मानव जैसा आचरण करते हुए दिखलाई पड़ें; यदि हम स्वयं उनके सुख में सुख और दुःख में दुःख का अनुभव करें तो वे हमें अपने जैसे लगेंगे और यही मानव का सफल चित्रण या परिकल्पना कही जाएगी ।.....चरित्रांकन की सफलता तो यह है कि पुस्तक बंद कर देने तथा सूक्ष्म विवरण भूल जाने पर भी उसके पात्र हमारी स्मृति में जीवित रह सकें । यह समीपता तभी आ सकती है; जब उपन्यासकार मानवता की सामान्य पीठिका पर अपनी कल्पना की कूंची से रूप उरेहे, रंग भरे; जिसमें न तो अतिरंजना ही हो और न अव्याप्ति भी ।'' [240]

[240] डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 13

यहां उपन्यासकार की कल्पना-शक्ति, मानव-मन की सूक्ष्म पर्यावलोकन-शक्ति और उसकी कलात्मक-योजना की परीक्षा होती है । पात्रों को सजीव और यथार्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार उनका सर्वांग-सूक्ष्म रेखांकन इस प्रकार करे कि जीते-जागते लोगों की भाँति स्वाभाविक प्रतीत हो और पाठक उनके सुख-दुःख का साथी बन ऐसा अनुभव करे कि वह जीवित लोगों के संसार में जा पहुंचा है । पात्रों के सर्वांग-सूक्ष्म रेखांकन में उनके बाह्य व्यक्तित्व चित्रण के साथ-साथ उनके अंतर्जगत का चित्रण भी अपेक्षित है; जो नाटकीय, मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक, आत्मप्रकाशक इत्यादि शैलियों के द्वारा प्रणीत होता है । इस प्रकार केवल पात्रों के आकार-प्रकार, रंग-रूप, वेश-विन्यास, चाल-ढाल आदि का प्रत्यक्षाभास कराना ही लेखक का उद्देश्य नहीं है; अपितु उस बाह्य कलेवर के भीतर विद्यमान और सतत् क्रियाशील चेतना-जगत का भी साक्षात्कार करा सकने की सामर्थ्य उसमें होनी चाहिए, तभी उसके द्वारा निर्मित चरित्रों मं वस्तु जगत के मानवों जैसी सजीवता आ सकती है ।

उपन्यास में नियोजित विविध पात्रों का चरित्र-चित्रण करने तााि उनके चरित्र को सजीवता और सशक्तता प्रदान करने के लिए उपन्यासकार को विभिन्न शैलियों अथवा प्रणालियों का आश्रय लेना पड़ता है । प्रमुख रूप से चरित्रांकन की दो ही प्रणालियां प्रचलित हैं - (1) विश्लेषणात्मक अथवा प्रत्यक्ष प्रणाली तथा (2) अभिनयात्मक अथवा परोक्ष प्रणाली ।

डॉ श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' नामक अपने ग्रन्थ में इन्हीं दो प्रणालियों को स्वीकार करते हुए लिखा है - 'चरित्र-चित्रण में प्रायः दो उपायों का अवलंबन लिया जाता है, एक को विश्लेषणात्मक या साक्षात और दूसरे को अभिनयात्मक या परोक्ष कहते हैं । पहले प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण उपन्यास लेखक स्वयं अपने शब्दों में करता है । वह पात्रों के भावों, विचारों, प्रकृतियों और राग-द्वेषों को समझता, उसकी व्याख्या बताता और प्रायः उन पर अपना विवेचनापूर्ण मत भी प्रकट करता है । दूसरे प्रकार में लेखक आप मानो अलग खड़ा रहता है, स्वयं पात्रों को अपने कथन और व्यापार से तथा उसके संबंध में दूसरे पात्रों की टीका-टिप्पणी तथा सम्मति से अपना चरित्र-चित्रण करने देता है ।' [241]

[241] डॉ श्यामसुन्दर दास, साहित्यालोचन, पृ0 165

'हिन्दी साहित्य-कोश' में पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विचार करते हुए लिखा गया है - 'कथा के पात्रों को किस प्रकार उपस्थित किया जाय, यह कथाकृति के रूप, लेखक की रुचि तथा योग्यता और उसकी कृति के उद्देश्य पर निर्भर है । काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में पात्रों के प्रयोग अर्थात् चरित्र-चित्रण के अपने-अपने ढंग और विधान होते हैं । सब मिलाकर पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से हो सकता है - (1) पात्रों के कार्यो द्वारा (2) उनकी बातचीत द्वारा तथा (3) लेखक के कथन और व्याख्या द्वारा । पहले दो को नाटकीय या अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण कहते हैं और तीसरे को विश्लेषणात्मक अथवा प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण.....। उपन्यास के चरित्र-चित्रण में अभिनयात्मक तथा विश्लेषणात्मक शैलियों को मिलाकर चरित्र-चित्रण अधिक विशद् रूप में किया जा सकता है ।' [242] पर्सी लब्बोक ने भी अपनी पुस्तक 'दि क्राफ्ट आफ फिक्शन' में चरित्र-चित्रण की इन्हीं दो प्रणालियों का उल्लेख किया है ।

आलोचक डॉ शशिभूषण सिंहल ने अपनी पुस्तक 'उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा' में कहा है कि विश्लेषणात्मक प्रणाली चरित्रांकन की सर्वाधिक प्राचीन प्रणाली है । इसमें लेखक पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर स्वयं प्रकाश डाला है । वह उनके भावों, विचारों, प्रवृत्तियों, मनोद्वेगों, क्रियाकलापों आदि का विश्लेषण विवेचन करके पाठक के मन में उनकी स्पष्ट रूपरेखा या चित्र अंकित कर देता है और कभी-कभी उनके संबंध में आधिकारिक निर्णय भी दे डालता है । यद्यपि इस पद्धति द्वारा चित्रित पात्र को समझने में पाठक सरलता का अनुभव कर सकता है, किन्तु लेखक के रूप में पात्र एवं पाठक के मध्य 'दुभाषिए' के रूप में हर समय उपस्थित रहने के कारण उसकी एकाग्रता, सामीप्य और निजत्व (प्राइवेसी) के भंग हो जाने की आशंका रहती है साथ ही पात्रों की चरित्र संबंधी छोटी-छोटी तथा आवश्यक बातों का व्याख्यात्मक वर्णन कभी-कभी उपन्यास के आकर्षण को कम करके कथा-प्रवाह को मंद कर देता है । इसलिए आजकल चरित्रांकन की इस प्रणाली की अपेक्षा अभिनयात्मक प्रणाली का प्रयोग अधिक अच्छा समझा जाता है, क्योंकि इसमें पात्रों का चरित्र स्वाभाविक रूप से सामने आता है, प्रयत्नपूर्वक थोपा गया प्रतीत नहीं होता । पात्र अपने क्रियाकलापों, वार्तालापों, स्वगत कथनों आदि के द्वारा अपने तथा अन्य पात्रों के चरित्र को अनावृत करते हैं । उपन्यासकार स्वयं उनके संबंध में कुछ नहीं कहता ।

[242] डॉ धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य (संपादक), हिन्दी साहित्य-कोश, पृ0 447-448

डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार 'आजकल चरित्र-चित्रण की सबसे उत्कृष्ट कला तो यह है कि अपने पात्रों को प्राण-शक्ति से संपन्न करके लेखक उनको जीवन की रंगस्थली में सुख-दुःख से आंख-मिचौली करने के लिए छोड़ दे । जीवन के घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष में बहता हुआ चरित्र स्वयं ही अपने को अनावृत करे, अपनी दुर्बलता-सबलता एवं सुरूपता-कुरूपता का प्रदर्शन करे । लेखक का कार्य केवल दूर से बैठकर उसकी गतिविधि का निरीक्षण करना और उसमें सतत् प्राणधारा प्रवाहित करते रहना मात्र है ।' [243]

अनेक समालोचकों के विद्वान सम्मतियों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चरित्र-चित्रण की अभिनयात्मक प्रणाली की उत्कृष्टता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । निश्चय ही यह अत्यंत सजीव एवं प्रभावशालिनी विधि है और स्वाभाविकता के अधिक निकट हैं, किन्तु उपन्यास में इस पद्धति का प्रयोग वहीं तक उचित है, जहां तक वह उपन्यास सत्ता को नष्ट न कर दे तथा उसे नाटक का विकृत रूप न बना दे नाटक और उपन्यास में प्रधान अंतर यही होता है कि नाटक में पात्र अपने को क्रियाकलापों, संवादों आदि के माध्यम से व्यक्त करता है, नाटककार को उसके विषय में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होता, जबकि उपन्यास में उपन्यासकार को पात्रों की चारित्रिक, शारीरिक और मानसिक विशेषताओं को उद्घाटित करने तथा उनके विषय में अपना मत प्रस्तुत करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है । नाटक-रचना में विश्लेषणात्मक पद्धति का कोई स्थान नहीं होता, क्योंकि उसमें दर्शक या पाठक का पात्रों के साथ सीधा संबंध रहता है, जिसके कारण उन्हें पात्रों के संबध में अपनी धारणा निश्चित करने में किसी कठिनाई का सामना नही ंकरना पड़ता । इसके विपरीत उपन्यासकार को पात्रों की व्याख्या और टीका-टिप्पणी करने की इतनी स्वतंत्रता होती है ि कवह चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में नाटक की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तार और गहनता ला सकता है । अतः विश्लेषणात्मक पद्धति को सर्वथा बहिष्कृत करने पर हम नाटक की अपेक्षा औपन्यासिक क्षेत्र में मिले अभिव्यक्ति के एक नवीन साधन से अनायास हाथ धो बैठेंगे । उपन्यासकार को इस स्वाभाविक देन से वंचित करने का अर्थ होगा, उसकी स्वतंत्रता का हनन तथा उस पर नाटककार को बलपूर्वक थोपना ।

वास्तव में चरित्रांकन की उपर्युक्त दोनों प्रणालियों में से किसी एक को सर्वथा उपयुक्त तथा दूसरी को सर्वथा असंगत नहीं कहा जा सकता । दोनों का अपना महत्व है तथा दोनों विधियों के सम्मिलित प्रयोग में ही उपन्यास में सजीवता और स्वाभाविकता

[243] डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ0 15

अक्षुण्ण रह सकती है । सुविधानुसार उपन्यासकार नाटकीयता और विश्लेषण का समुचित समन्वय करके मानवीय मनोवेग, भावावेश, विचार, भावना, उद्देश्य-प्रयोजन आदि का सूक्ष्म से सूक्ष्म आकलन कर सकता है ।[244] सामान्यतः उपन्यासों में इन दोनों पद्धतियों का उपयोग होता है । कहीं लेखक पात्रों को अपने कार्यों तथा संवादों द्वारा स्वयं को प्रकट करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है और कहीं स्वयं उनके विषय में अपना मंतव्य प्रकट करता चलता है ।

जैसा कि द्वितीय अध्याय में विवेचन किया जा चुका है, डॉ रांग्रा ने चरित्र-चित्रण की तीन विधियों को स्वीकार किया है - बहिरंग, अंतरंग तथा नाटकीय । इनमें से बहिरंग तथा नाटकीय क्रमशः वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक प्रणालियों से भिन्न नहीं हैं । अंतरंग प्रणाली का प्रयोग पात्रों की आंतरिक प्रवृत्तियों के उद्घाटन के लिए होता है । मनुष्य की बाह्य क्रियाएं उसकी आंतरिक प्रेरक गूढ़ शक्तियों से परिचालित होती हैं । व्यक्तियों के मन में क्या भाव उठते है ? प्रत्येक क्रिया के पीछे उसका क्या उद्देश्य होता है ? उसके मन में किन-किन भावों का कब-कब, कैसे-कैसे और क्यों संघर्ष होता है ? इत्यादि के उद्घाटन के लिए अंतरंग प्रणाली प्रयुक्त होती है । पात्र के आचरण के रूप में प्रकट होने वाले बाह्य चरित्र की तुलना में उसका आंतरिक चरित्र अधिक महत्वपूर्ण होता है । पात्र के इस आंतरिक व्यक्तित्व को चरित्र में उभारना चरित्र-चित्रण की सफलता की कसौटी है । इसके लिए मनोविज्ञान, विशेषतः मनोविश्लेषण शास्त्र उपयोगी सिद्ध हुआ है । चूंकि इस प्रणाली का आधार मनोविश्लेषण शास्त्र है, इसलिए इसको मनोविश्लेषणात्मक शैली भी कहा जा सकता है

इस प्रकार चरित्र-चित्रण की तीन शैलियां स्वीकृत की जा सकती हैं - (1) वर्णनात्मक अथवा बहिरंग प्रणाली (2) अभिनयात्मक अथवा नाटकीय प्रणाली तथा (3) मनोविश्लेषणात्मक अथवा अंतरंग प्रणाली । राही के उपन्यासों के संदर्भ में इन्हें क्रमशः निम्नलिखित अंगों तथा उपांगों में विभाजित किया जा सकता है -

(क) वर्णनात्मक अथवा बहिरंग प्रणाली

(i) आकृति, रूप एवं वेशभूषा वर्णन
(ii) स्वभाव वर्णन
(iii) अनुभाव वर्णन

[244] डॉ धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य (संपादक), हिन्दी साहित्य-कोश, पृ0 448

(ख) अभिनयात्मक अथवा नाटकीय प्रणाली

(i) कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण
(ii) घटनाओं एवं पात्रों के क्रियाकलापों द्वारा चरित्र-चित्रण

(ग) मनोविश्लेषणात्मक अथवा अंतरंग प्रणाली

(i) आत्मविश्लेषण या आत्मप्रकाशक
(ii) अंतर्द्वंद्व
(iii) अंतर्विवाद
(iv) स्वप्न विश्लेषण
(v) अन्य :- मुक्त आसंग, बाधकता विश्लेषण, प्रतीकात्मक, निराधार प्रत्यक्षीकरण आदि ।

(क) वर्णनात्मक अथवा बहिरंग प्रणाली

राही जी के उपन्यासों की चरित्र-चित्रण की प्रमुख विशेषता - कथावाचक द्वारा पात्र के उपन्यास में पदार्पण करते ही प्रारंभ अथवा चरित्र-चित्रण के दौरान उसकी स्थूल रूपरेखा प्रस्तुत करना - है । इसे चरितार्थ करने के लिए राही ने चरित्रांकन की प्रत्यक्ष प्रणाली का आश्रय लिया है । पात्रों के रूप, आकृति, वेश-भूषा, चाल-ढाल, स्वभाव, मनःस्थिति एवं हावों-अनुभावों का वर्णन उनके उपन्यासों में प्रचुरता से हुआ है जिस प्रकार आधुनिक चित्रकला में केवल कुछ रेखाओं के सहारे एक चित्र को जन्म दिया जाता है, उसी प्रकार राही जी ने मात्र कुछ शब्दों के सहारे पात्रों के रेखाचित्र खींचे हैं । हिन्दी उपन्यास जगत में ऐसे उपन्यासकार कम ही हुए हैं, जिन्होंने इतने मनोयोग से अपने पात्रों की आकृतियों तथा उसकी विभिन्न मुद्राओं, हावों-अनुभावों का इतनी सूक्ष्मता के साथ चित्रांकन किया हो ।

(i) आकृति, रूप एवं वेशभूषा वर्णन : जिस प्रकार मंच पर किसी पात्र का आगमन होने पर पहले दर्शक उसके आकार-प्रकार, रूप-रंग, वेश-विन्यास आदि से, बाद में उस पात्र के गुण, स्वभाव आदि से परिचित होते हैं; उसी प्रकार उपन्यास में पात्रों से पाठकों की जान-पहचान सर्वप्रथम उनके बाह्यावलोकन द्वारा होती है । किसी भी पात्र से पहली बार परिचित होने पर पाठक के हृदय में उसकी जो छाप पड़ती है, वही बाद

में उसके अंतरंग परिचय का आधार बनती है । राही जी इस संबंध में विशेष सजग रहे हैं कि उनका कोई प्रमुख पात्र इस दृष्टि से अपरिचित न रहे और इसीलिए पात्र के उपन्यास में करते ही वह उसका सामान्य परिचय देकर पाठक के कल्पना-चक्षुओं के सम्मुख साकार कर देते हैं । इस परिचय में पात्रों की आकृति, रूप, वय, वेश-भूषा, चाल-ढाल आदि का वर्णन रहता है ।

पात्रों के चरित्र-चित्रण मं उनके रूप सौन्दर्य एवं आकृति वेश-भूषा के वर्णन का बड़ा महत्व होता है, क्योंकि इसी के माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों का एक चित्र पाठकों की कल्पना में खड़ा करता है । जब तक उपन्यास में पात्र की कोई क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती, तब तक पाठक बाह्य आकार एवं रंग-रूप के आधार पर ही उसके चरित्र के संबंध में अनुमान लगाया करता है । पात्रों के बाह्य आकार, रंग-रूप एवं वेश-भूषा के आधार पर लगाया गया अनुमान चाहे उतना ठीक न निकले, जितना उसके हाव-भाव और क्रिया-प्रतिक्रिया के सहारे लगाया गया अनुमान, पर व्यक्ति के बाह्याकार के आधार पर उसकी चारित्रिक विशेषताओं का कुछ-न-कुछ अनुमान तो लगाया ही जा सकता है ।

विदेशी विचारक आलपोर्ट ने आकृति का चरित्र और स्वभाव से गहरा संबंध स्थापित किया है ।[245] आकृति सामुद्रिक (Physiogonomy) के प्रवर्तक लवेटर ने भी कुछ परीक्षणों के आधार पर चेहरे की आकृति से बुद्धि का अनुमान लगाने का दावा किया था । उसने व्यक्तियों की नाक, दांत, कपोल तथा भौंहों आदि की आकृति के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर एक विशिष्ट मानसिक गुणों का समर्थन किया । यद्यपि बाद के प्रयोगों और निष्कर्षों के फलस्वरूप आधुनिक मनोविज्ञान ने आकृति सामुद्रिक को निराधार सिद्ध कर दिया है, किन्तु जनसाधारण का उस पर कुछ-न-कुछ विश्वास अब भी दिखलाई पड़ता है । आकृति सामुद्रिक की मान्यता का समर्थन कुछ समय पूर्व 'गाल' नामक फ्रांसीसी विद्वान ने भी किया था । उसने मस्तिष्क विज्ञान (Brainology) के माध्यम से प्रतिपादित किया था कि मनुष्य की बुद्धि का परिमाण उसके सिर की आकृति पर आधारित है ।[246] ऐसे ही अन्य अनेक अनेक सिद्धांत प्रचलित हुए, किन्तु सन् 1956 में प्रो. कार्ल पियर्सन ने 5000 बालको पर किए गए अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य के सिर की बनावट, मुखाकृति तथा

[245] Allport, Personality : A psychological Interpretation, p. 78. ".....Physical features therefore may logically be expected to reveal precularities of temperament."
[246] डॉ शशिभूषण सिंहल, उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, पृ0 142-143

अन्य शारीरिक अवयवों की संरचना का मनोजगत से कोई सीधा संबंध नहीं है ।[247] मनोविज्ञान शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांत भी पियर्सन के इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं ।

इस प्रकार आकृति विज्ञान एक प्राचीन विज्ञान है, किन्तु हिन्दी उपन्यासकारों ने इसका बहुत कम उपयोग किया है । राही जी के उपन्यासों में प्रारंभ अथवा कहीं-कहीं मध्य में पात्रों की आकृति और वेशभूषा के वर्णन की प्रवृत्ति रही है और इसमें उन्होंने निजी अनुभव के साथ-साथ आकृति विज्ञान का भी सहारा लिया है । यद्यपि राही जी मनुष्य के बाह्याकार का उसके स्वभाव से जोड़ने के अधिक पक्षपाती नहीं है, तथापि पात्रों के अंगों-प्रत्यंगों का सूक्ष्म ब्यौरा प्रस्तु करते समय वह उनकी चारित्रिक विशेषताओं को दृष्टि में रखकर चलते है, कुछ शब्द-चित्र दृष्टव्य हैं -

'आधा गॉव' में राही सुलेमान और बच्छन की आकृति एवं रूप-रंग का वर्णन तुलनात्मक घटनात्मक तथा स्वभावगत विशेषताओं को दर्शाते हुए कहते हैं - ''सुलेमान एक छतनार दरख़्त की तरह थे, जिसके साए में बच्छन को बढ़ने का मौका नहीं मिलता था । लेकिन सुलेमान कियां जो साल भर के लिए जेल गए तो तड़ से जवान हो गई । उसे बा पके रंग के साथ-साथ मां का नमक भी मिल गया था । वह काजल नहीं लगाती थी, लेकिन ऐसा मालूम होता था; जैसे सुबह उठते ही झंगटिया-बो ने उसकी आंखों में बड़े प्यार से काजल डाला है । उसने क़द भी खूब निकाला था । उसकी कमर इतनी पतली थी कि ख़ामख़ाह हाथ में लेने को जी चाहने लगे और कमर के नीचे चौड़े कूल्हों के खम यों लगते थे जैसे न्याज के कोरे कूंड़े हों । उसका सीना तो दुपट्टे के काबू ही में नहीं आता था । दसहरी के क़ाशों की तरह भरे-भरे तरो-ताजा होंठों से होकर जो आवाज निकलती थी, वह इतनी रसीली होती थी कि रस अब टपका और तब टपका और उसका जूड़ा इतना बड़ा होता था कि नईमा बी का सिर छोटा मालूम होने लगता था ।'' [248]

'टोपी शुक्ला' उपन्यास में राही टोपी की आकृति और रूप-रंग का वर्णन बड़ी रोचक एवं आलंकारिक भाषा में करते हैं - ''यह दांत पीसने का का कोई अवसर नहीं था । परंतु टोपी को अपने उजले दांत बहुत भले लगते थे । इसलिए वह

[247] प्रो. कार्ल पियर्सन, मॉडर्न ऐजुकेशनल साइकोलोजी, पृ0 402-405
[248] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 101

मौक़ा-बे-मौक़ा उन्हें दिखाता रहता था । गहरा काला रंग । बर्फ की तरह सफ़ेद दांत वह अपना निगेटिव था और शायद अपने प्रिंट की राही देख रहा था ।'' [249]

'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में राही एक नेता पात्र की वेश-भूषा के माध्यम से उसका शब्द-चित्र द्विअर्थी भाव से खींचते हैं - ''बेदाग़ सफ़ेद खादी की धोती । बेदाग़ सफ़ेद खादी का कुरता । बेदाग़ खादी की टोपी । सफ़ेदी की इस भीड़ में उनका काला रंग कुछ और निखर आया था ।'' [250]

अली अमजद, हरीश राय, वी.डी. तथा अलीमुल्लाह नामक पात्रों का एक साथ परिचय प्रस्तुत करते हुए राही ने 'सीन : '75' में ये शब्द-चित्र उकेरा है - ''चार आदमी....सपनों के चार सौदागर मिलकर रहा करते थे । एक कमरे में एक पलंग था। कबाड़िए की दुकान से खरीदा हुआ एक सोफा था, जिसका कपड़ा फट चुका था। पांच पतलूनें थीं । छः कमीजें थीं । बेशुमार खटमल थे और चार आदमी थे ।'' [251]

राही जी के विभिन्न उपन्यासों से लिए गए उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पात्रों के बहिरंग स्वरूप को चित्रित करते समय कहीं उन्होंने केवल उनकी आकृति एवं रंग-रूप का, कहीं मात्र वेश-भूषा का और कहीं इन सबका संयुक्त चित्र उपस्थित किया है । पात्रों की सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उनके बाह्य स्वरूप का बारीकी से विवरण देकर उनका सजीव चित्र पाठकों के बाह्य चक्षुओं के समक्ष खड़ा करने का उनका बराबर प्रयत्न रहा है । पात्रों की बाह्य रूपरेखा के ये चित्र बड़े सजीव और आकर्षक हैं । इनमें पात्रों को एक स्पष्ट स्वरूप दे देने तथा पाठकों के मन में आनंद की एक ताजगी भर देने की विचित्र क्षमता है ।

(ii) स्वभाव वर्णन : पात्रों की अंतः प्रकृति का चित्रण करने के लिए राही जी ने पात्रों के स्वभाव एवं प्रवृत्ति का वर्णन भी किया है, किन्तु ऐसे स्थल उनके उपन्यासों में कम हैं । इसका कारण है कि अत्यधिक शील-विश्लेषण चरित्र-चित्रण के सौन्दर्य को समाप्त कर देता है । अतः राही जी पात्रों के शील और स्वभाव का स्वयं विश्लेषण न करके उन्हें कर्मस्थल के बीच ले जाकर छोड़ देते हैं । ताकि पाठक उनकी चारित्रिक विशेषताओं के संबंध में अपनी राय बना सकें । कहने का तात्पर्य यह कि पात्रों के

[249] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 10
[250] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 132
[251] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 16

पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण एक ही स्थल पर कर देने से उसकी रोचकता नष्ट हो जाती है और उसके विषय आगे कुछ जानने की जिज्ञासा पाठकों के मन में नही रहती। इसीलिए राही जी, जहां कोई नवीन स्थिति आती है, वहां पात्रों के बारे में थोड़ा-सा बतलाकर आगे बढ़ जाते है । फिर भी जहां कहीं उन्होंने पात्रों के स्वभाव का विश्लेषण किया है, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है ।

'आधा गॉव' में राही स्वयं अपने, अपने भाई साहब तथा मौलवी मुनव्वर के स्वभाव-वर्णन में कारण विश्लेषण करते हुए कहते हैं - ''हमारे मौलवी मुनव्वर को पढ़ाने से ज़्यादा पिटाई करने में मज़ा आता था । वह हमारे 'डेली अलाउंस' की इकन्नी भी हमसे ले लिया करते थे । इसलिए हम लोगों का बचपन बड़ी ग़रीबी में गुजरा । और शायद यही वजह है कि खरीद-फ़रोख्त की कला न मुझे आती है और न भाई साहब को । हम लोग झट से पैसा खर्च कर देने के आदी हैं, ऐसा शायद इसलिए है कि मौलवी मुलव्वर का डर हमारे दिलों से अभी तक निकला नहीं है, शायद हम डरते हैं कि अगर पैसा खर्च न कर दिया गया तो मौलवी साहब झपट लेंगे ''[252]

'टोपी शुक्ला' उपन्यास में राही टोपी के मित्र इफ्फन के बारे में कहते हैं - ''राजनीति में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी । फिर भी घर में जो बातें होती थीं, वह उन्हें सुनता तो था । और चाहे उसे केवल 'स्पोर्ट्स पेज' ही में दिलचस्पी रही हो, परंतु उसे उस पन्ने के लिए पूरा समाचार पत्र हाथ में तो लेना ही पड़ता था ।''[253]

'ओस की बूँद' में वे एक पात्र के स्वभाव के बारे में एक जगह थोड़ा ही बताते हैं - ''.....बाबू बांके बिहारी लाल रोज सबेरे गंगा स्नान को जाते थे । गंगा दरवाजे पर बह रही हों तो कौन बदनसीब होगा जो स्नान नहीं करेगा ।'' [254]

राही जी अपने पात्रों के स्वभाव को बताते समय पात्र का संपूर्ण इतिवृत्त का यथार्थ एवं कटु चित्रण करते हैं । ऐसे वर्णन में पात्र का स्वभाव के साथ-साथ क्रियाकलापों का विवेचन भी आ जाता है । एतदर्थ यह उद्धरण दृष्टव्य है, जिसमें रामअवतार के बहाने भारत के आम आदमी की नंगी तस्वीर दिखाई गई है - ''उस लड़के का नाम रामअवतार था । बदन रहा होगा चौबीस-पच्चीस का । आत्मा थी सौ-दो सौ बरस की । बूढ़ी । लपूस । न सोचने का हौसला, न लड़े की सकत । न

[252] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 17
[253] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 48
[254] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 132

आंखों में कोई सपना । बस, एक मुसतकिल भूख भभोंड़ती हुई । जरूरतें टेंटवे से पकड़े हुए...बाप दमे का मरीज और बेकार । मां की आंखों में ममता की जगह मोतिया । बीवी की बच्चे पैदा करने की लत । बड़ा भाई कलकत्ते से लौटा हुआ । चटकल में कटे हुए हाथ लेकर । बेकार । उसके तीन बच्चे । बदज़बान बीवी । और एक अकेला रामअवतार कमाने वाला ।'' [255]

(iii) अनुभाव वर्णन : अनुभाव का शाब्दिक अर्थ है 'अनुभव कराने वाला' या 'भाव के पीछे उत्पन्न होने वाला' । अतः जो चेष्टाएं भाव का बोध कराएं अथवा भाव के पश्चात प्रकट हों, अनुभाव कहलाती हैं । वाणी, अंग-संचालन आदि की जिन क्रियाओं से आलंबन तथा उद्दीपन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जाग्रत भावों का साक्षात्कार होता है, वह व्यापार अनुभाव कहलाते हैं ।[256] इस प्रकार अनुभाव पात्रो के मनोगत भावों की सूचक बाह्य क्रियाएं हैं । इनके द्वारा पात्रों के हृदयस्थ भावों को समझने में अत्यधिक सहायता मिलती है । इसीलिए कुशल लेखक किसी पात्र का पूर्ण विवरण न देकर उसके 'गुण-धर्म' को इन्हीं हावों और अनुभावों के माध्यम से व्यक्त कर देते हैं । राही जी इस दृष्टि से भी बड़े सफल कथाकार हैं । उन्होंने हावों और अनुभावों द्वारा पात्रों के हृदयस्थ भावों की व्यंजना बड़ी सुन्दरता से की है ।

'आधा गॉव' में उन्होंने पुलिस तथा जमींदारों के दमन तथा शोषण को चित्रित करने के लिए इन शब्दों में एक शोषित पात्र की स्थिति दर्शायी है - ''सामने ही एक तंदुरुस्त दमकता हुआ नौजवान मुर्ग़ा बना हुआ था । उसकी पीठ पर ईंटों का एक मीनार-सा बना हुआ था । ज बवह मीनार हटाया गया तो कई मिनट तक वह खड़ा न हो सका । वह खड़ा होने के बाद भी अपनी पीठ सहलाता रहा ।'' [257]

'टोपी शुक्ला' नामक पात्र पर अलीगढ़ में इफ्फन की पत्नी सकीना से अनैतिक संबंध रखने का मिथ्या लांछन लगाए जाने पर टोपी पर उसकी यह प्रतिक्रिया हुई - ''टोपी का काला रंग लाल हो गया ।'' [258]

---

[255] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 43

[256] डॉ धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य (संपादक), हिन्दी साहित्य-कोश, पृ0 29

[257] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 146-147

[258] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 112

गुल्लू और शहरनाज की छोटी ममानी के अनुचित यौन-संबंधों को देखकर शहरनाज के मन के हाव-भाव का वर्णन इन शब्दों में किया गया है - ''वह डरकर जमीन से चिपक गई और उन चींटियों को देखने लगी, जो न जाने कहां आने-जाने में लगी हुई थीं ।'' [259]

'सीन : '75' में एक चित्र देखकर पात्र के उभरे संचारी भाव को राही ने इस प्रकार रेखांकित किया है - ''...तोताराम तस्वीर के बाकी कपड़े उतारने की कोशिश कर रहा था और धीरे-धीरे अपनी जांघ खुजलाने में लगा हुआ था ।'' [260]

राही ने अनुभावों की सृष्टि के लिए वातावरण निर्माण में प्राकृतिक उपादानों का आश्रय भी लिया है । 'कटरा बी आर्जू' में वे लिखते हैं - ''...ओलती से उजाला आंगन में बरसने लगा और जमीन से आसमान तक एक दूधिया रोशनी फैल गई । चिड़ियां घोंसलो से निकलकर आंगन में उतर आईं और एक कौआ रोज की तरह न जाने कहां से उड़ता हुआ आया और तार की अलगनी पर बैठकर पहले तो तार पर चोंच घिसता रहा और फिर न जाने क्यों आवाज़ें देने लगा ।'' [261] इसके अतिरिक्त पात्रों की पारस्परिक बातचीत के समय भी राही जी उनकी भाव-भंगिमाओं का सूक्ष्म एवं स्वाभाविक चित्रण करते जाते हैं और उनकी विभिन्न मुद्राओं का वर्णन करते जाते हैं ।

इस प्रकार राही के उपन्यासों के उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि उन्होंने अनुभावों का सृजन करके पात्रों की स्वाभाविकता एवं सहजता में अभिवृद्धि की है, जो उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचायक है ।

(ख) अभिनयात्मक अथवा नाटकीय प्रणाली

किसी उपन्यास के चरित्र-विधान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सभी पात्र अपने-अपने विशिष्ट चरित्र के कारण सरलता से पहचान में आ सकें और पाठक उनके साथ सहज रागात्मक संबंध स्थापित कर सकें । यह तभी संभव है जब उपन्यासकार चरित्र-चित्रण के लिए वर्णनात्मक अथवा प्रत्यक्ष पद्धति की अपेक्षा

[259] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 111
[260] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 77
[261] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 164

अभिनयात्मक अथवा परोक्ष पद्धति का माध्यम ग्रहण करे । किन्तु कोई भी उपन्यासकार केवल अभिनयात्मक पद्धति से काम नहीं चला सकता, उसे वर्णनात्मक पद्धति का सहारा लेना ही पड़ता है । पात्रों का प्रथम परिचय कराते समय, उनके नाम-धाम-काम का, उनके स्वभाव की कुछ उभरी हुई विशेषताओं आदि का परिचय कराने के लिए उपन्यासकार को वर्णनात्मक शैली का ही आश्रय लेना पड़ता है । अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए राही जी प्रत्यक्ष प्रणाली को तो अपनाते ही हैं; साथ ही साथ नाटकीय प्रणाली द्वारा भी उनके चरित्र के अनेक रूपों को प्रकाश में लाते जाते हैं । ऐसा करते समय वह अपनी ओर से वर्णन, विश्लेषण या टीका-टिप्पणी आदि कुछ न करके स्चयं बीच में से निकल जाते हैं और पात्रों के चारित्रिक गुणावगुणों को उनके जीवन की विविध घटनाओं, उनके क्रियाकलापों, कथोपकथनों, अन्य पात्रों पर पड़ें उनके प्रभावों और उसके आधार पर की गई उनकी टीका टिप्पणी के रूप में व्यक्त होने देते हैं ।

(i) कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण : कथोपकथन का द्वयात्मक संबंध कथावस्तु और चरित्र-चित्रण से है, किन्तु उपन्यास में कथोपकथन का संबंध कथानक और पात्रों से समान रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी पात्रों से विशेषतः होता है । संवाद पाठक को पात्रोंके व्यक्तित्व के समीप ले आते हैं । इनके माध्यम से पात्रों के जो विचार व्यक्त होते हैं, वे ही पाठक को उनके प्रति नैकट्य का अनुभव कराने में सहायक होते हैं । वास्तविक जीवन में मनुष्य के क्रियाकलाप ही मुख्यतः उसके चरित्र के विज्ञापक होते हैं, परंतु उपन्यास-दृष्टि में अधिकतर पात्रों की बातचीत से ही इस उद्देश्य की सिद्धि होती है । पात्रों की परस्पर बातचीत में उनके चरित्र की सारी रेखाएं उभर कर सामने आ जाती हैं । इसका मुख्य कारण यह है कि संवाद की स्थिति में उन्मुक्तता रहती है । अतः पात्र बहुत सारी ऐसी बातें कर जाते हैं, जो अन्य स्थिति में संभव नहीं और उन बातों से उनकी चारित्रिक दुर्बलता-सबलता अधिक सूक्ष्मता से प्रकट हो जाती हैं । विश्लेषण में लेखक जो कुछ नहीं कह पाता, उसे पात्र अपने स्वाभाविक संवाद में व्यक्त कर देते हैं । राही जी ने कथानक को गति प्रदान करने के साथ-साथ पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने के लिए कथोपकथनों का प्रमुख रूप से सहारा लिया है । कथोपकथनों का राही जी के सभी उपन्यासों में बाहुल्य है । यहां इस प्रकार के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं -

1. मोटर के हॉर्न के आवाज़ सुनकर वह (हकीम साहब) रुके, ''ए भाई, गॉव में ई मोटर के का बोल रहा ।''

''अनवारुल हसन की बीवी बीमार है ना !'' हुसैन अली मियां ने कहा, ''सुन रहे कि शहर से तिल्लोकीनाथ डाक्टर आए वाले हैं । ऊहे आए होइहें ।''

''तिल्लोकीनाथ की कउन जरूरत पड़ गई ?'' हकीम साहब ने पूछा, ''कमुआ हरामजादे को काहे ना देखा लिहिन ।''

''हम ई देख रहे हैं कि कुछ दिन में आप कमुआ का नाम सुनते ही ढेला मारे लगिएगा ।'' हुसैन अली मियां ने कहा ।

हकीम साहब बिल्कुल उबल पड़े, मगर ठीक उसी वक्त ग़निया आ गया और आते ही वह त्रिलोकीनाथ की मोटर की शान में क़सीदा पढ़ने लगा ।

''बड़ा रुआब है मियां ओपर । बिल्कुल बड़के चउक का ताजिया लग रही है''

''तोबा कर, बहनचोद! तोबा कर!'' हकीम साहब ग़निया पर बरस पड़े, ''तोबा! तोबा! देख न रह्यौ तन्नू । ई बहनचोद मोटर को ताजिए से मिला रहा ।''

''ए भाई, गॉव में बड़ी धूम है ।'' बेदार मियां आ गए ।

''देख आयो मोटर ?'' हकीम साहब ने पूछा ।

''बड़ी खूबसूरत है ।'' मौलाना ने कहा, ''अउर नौना मार कुर्सी पर बइठा डाक्टर साहब से अंगरेजी में बात कर रहा ।''

''अब ई जमाना आ गया है कि कमीने कुर्सी पर बइठे लगे । अरे लखना!'' हकीम साहब ने आवाज़ दी, ''कुरसिया सब भीतर पहुंचा दे रे । कह दे कि जला के खाना पका डालें लोग । अब ईहे होइहे । कमीने त बइठिहें कुरसी पर, अउर अशराफ छिपय्याहें मुंह घर में ।'' [262]

[262] डॉ राही मासूम रज़ा, आधा गॉव, पृ0 273-274

2.'टोपी शुक्ला' उपन्यास से चुनाव के समय की गतिविधियों के आलोक में उपन्यासकार ने पिता-पुत्र के कथोपकथनों द्वारा कई नए घटनाक्रमों की उपस्थिति दर्शायी है -

''तो तुम भाइयों के खिलाफ़ इलेक्शन लड़ाने आए हो ?'' डाक्टर साहब ने पूछा ।

''जी हां ।''

''तुम्हें लाज नहीं आती ।''

''अगर उन्हें लड़ने में लाज नहीं आयी तो मुझे लड़ाने में क्यों आए ?''

''क्या तुम कम्युनिस्ट हो गए हो ?''

''जी हां ।''

''सकीना कौन है ?''

टोपी चुप हो गया । उसने अपने बाप की आंखों में आखें डाल दीं ।

''वह मेरी कीप नहीं है ।''

''तो कौन है ?''

''मेरे बचपन के दोस्त की वाइफ़ है ।''

''मगर...''

''पिताजी मैं...'' उसने डाक्टर साहब की बात काटनी चाही ।

''मैंने बाबू बालकृष्ण राय की बेटी से तुम्हारी बात पक्की कर दी है ।'' डाक्टर साहब ने उसकी बात काट दी ।

''मैं यह शादी नहीं करूंगा ।''

डाक्टर साहब अपने घर में इस तरह की बातें सुनने के आदी नहीं थे । बिगड़ गए ।

''नहीं करोग तो निकल जाओ मेरे घर से ।''

''हिन्दू लड़का पैदा होते ही हक़दार हो जाता है ।'' टोपी ने कहा । ''परंतु मैं उस घर में रहना भी नहीं चाहता, जिसने कभी मेरी बात ने पूछी हो और जिसमें मुझ पर अपनी बहन के साथ फंस जाने का आरोप लगाया गया हो ।'' [263]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथोपकथन या वार्तालाप राही जी के पात्रों के चरित्रों को उद्‌घाटित करने में पर्याप्त सिद्ध हुए हैं । जीवन की विविध परिस्थितियों के व्यापक अनुभव और पात्रों से गहरी आत्मीयता के कारण संवादों में सहज प्रवाह और एक प्रकार की बेतकल्लुफी दिखाई देती है ।

उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त राही जी के उपन्यासों में कुछ कथोपकथन ऐसे भी हैं, जिनमें दो पात्रों की बातचीत में तीसरे पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय मिल जाता है । किसी पात्र के संबंध में अन्य पात्रों के विचार प्रकट करने तथा उन पर पड़े उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए वह उसे पात्रों के बीच चर्चा का विषय बनाकर उनसे उस पर या उसके चरित्र के किसी विशेष अंग पर टीका-टिप्पणी कराते रहते हैं । इस प्रकार दूसरों द्वारा किसी पात्र के वहां उपस्थित न होने के कारण अन्य पात्र उसे चरित्र के किसी विशेष गुणावगुण के बारे में अपना स्वतंत्र मत प्रकट कर सकते हैं । इस प्रकार का यह उद्धरण यहां देना असंगत न होगा -

'ओस की बूँद' उपन्यास में शहरू और वहशत नामक पात्रों की बातचीत द्वारा गुल्लू नामक पात्र का चरित्रोद्‌घाटन किया गया है ।

''सच पूछो तो मैं भी शादी नहीं करना चाहता ।''

---

[263] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 144-145

''भाई साहब वो गुल्लू याद है आपको ।''

''कौन गुल्लू ?''

''अरे वहीं एक घोंचू-सा लड़का नहीं था; जिसे छोटी ममानी ने गोद ले रखा था ।''

''दो तीन बरस हुए, बंबई में मिला था । फिल्मों में छोटे-मोटे काम करता है लेकिन अब न तो उसका नाम गुल्लू है, न गुलाम हुसैन; उसका नाम राकेश कुमार हो गया है । कह रहा था कि जल्द ही उसे एक बड़ा ब्रेक मिलने वाला है । शान्ताराम या जाने कौन उसे लीडिंग रोल में साइन करने वाला है । बड़ी दिलचस्प अंग्रेजी बोलने लगा है । कहने लगा कि भाई साहब वकालत में क्या रक्खा है । ग़ाज़ीपुर को गोली मारिए, यहां आ जाइए । आप तो इतने अच्छे शायर हैं । आते ही हिट हो जाइएगा''

''अब तो वह बहुत बड़ा हो गया होगा ।''

''ताड़ जैसा निकल आया है । अपने क़द-बदन को गालियां दे रहा था कि उसके नाप की कोई हीरोइन नहीं मिल रही है । कहता था कि यह क़द एक प्रोब्लम हो गया है । लोग कहते हैं कि सोशल फिल्मों में यह क़द नहीं चलेगा । लेकिन जो कोई हीरोइन मिल जाए तो मैं हिट होकर दिखा दूं । लेकिन इस वक्त यह गुल्लू कहां से टपक पड़ा हमारे बीच में ?''

''शादी की बात हो रही थी ना । तो वह फ़ाख़रा बाजी की शादी याद आ गयी। तो फिर छोटी ममानी याद आई । उनके साथ गुल्लू याद आया । अच्छा अब आप खिसकें यहां से । मुझे नींद आ रही है ।'' [264]

(ii) घटनाओं एवं पात्रों के क्रियाकलापों द्वारा चरित्र-चित्रण : घटनाएं मानव चरित्र को प्रभावित ही नहीं करतीं, वरन् उसे व्यक्त करने में सहयोग भी प्रदान करती हैं । सामान्य अवस्था में मनुष्य जिस भेद को प्रकट होने से बचा लेता है, घटना की लपेट में आकर वह अपने आप प्रकाश में आ जाता है । मानव-जीवन में घटनाएं भले ही

[264] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 115-116

निरुद्देश्य घटित होती हों, पर उपन्यास में उपन्यासकार बहुधा अपने पात्रों के चरित्र की विभिन्न अवस्थाओं के उद्घाटन तथा चरित्र विकास के लिए उनका सृजन किया करता है । राही जी के उपन्यासों में घटनाओं का समावेश केवल कथानक को गति देने के लिए ही नहीं, अपितु पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए भी हुआ है । उपन्यास के प्रारंभ में ही राही जी कुछ एक ऐसी घटनाओं की श्रृंखला बांध देते हैं कि उनके पात्र धीरे-धीरे एक-दूसरे के जीवन में आने लगते हैं । 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास के नामेतिहास के बताते हुए उपन्यासकार प्रारंभ में ही उस घटनाक्रम का उल्लेख करता है, जिसके चलते कटरा मीर बुलाक़ी कटरा बी आर्जू हो गया । वह लिखते हैं -

''वास्तव में कटरे का नाम 'कटरा बी आर्जू' नहीं था । उसका असली नाम कटरा मीर बुलाक़ी था । कारपोरेशन के काग़ज़ों में भी उसका यही नाम लिखा हुआ था । वह तो हुआ यूं कि जिस दिन शहनाज और मास्टर बद्रुल हसन 'नायाब' मछलीशहरी की शादी तै हुई, उसी रात उन्होंने कटरे का नाम बदलकर 'कटरा बी आर्जू' रख दिया । यूं भी वह बहुत दिनों से देखते चले आ रहे थे कि उनके कटरे वालों के पास और तो कुछ नहीं, पर आर्जुएं बहुत हैं ।'' [265]

पात्रों की मनोदशा के चित्रण के लिए भी राही जी ने अनेक बार घटनाओं का आश्रय लिया है । जब किसी पात्र की मनोव्यथा चरम सीमा को छू जाती है और उसे उस व्यथा में कोई साक्षी नहीं मिलता, जिससे बातचीत करके वह अपना मन हल्का कर सके, तब उसका मानसिक दुःख किसी घटना के रूप में उमड़ पड़ता है । 'सीन : '75' उपन्यास में कहानी लेखक अली अमजद अपनी नियति से जूझते हुए एक रात के सन्नाटे में नींद की गोलियां प्रचुर मात्रा में खाकर सदा के लिए सो जाता है । [266]

इसके अतिरिक्त पात्रों के चरित्र की किसी विशेषता को प्रकाश में लाने के लिए भी राही जी ने घटनाओं का सृजन किया है । वह अपने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने के लिए उन्हें परिस्थितियों में डालते हैं । उन परिस्थितियों में ये पात्र अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर डालते हैं । बलभद्र नारायण शुक्ला का नाम टोपी पड़ने की घटना का राही यों चित्रण करते हैं - ''बात यह है कि यूनिवर्सिटी यूनियन में नंगे सिर बोलने की परंपरा नहीं है । टोपी की ज़िद

[265] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 11

[266] डॉ राही मासूम रज़ा, सीन : '75, पृ0 122

कि मैं तो टोपी नहीं पहनूंगा । इसलिए होता यह कि यह जैसे ही बोलने खड़े होते; सारा यूनियन हाल एक साथ टोपी ! टोपी ! का नारा लगाने लगा । धीरे-धीरे टोपी और बलभद्र नारायण का रिश्ता गहरा होने लगता । नतीजा यह हुआ कि बलभद्र को छोड़ दिया गया और इन्हें टोपी शुक्ला कहा जाने लगा । फिर गहरे दोस्तों ने शुक्ला की पख भी हटा दी, और यह केवल टोपी हो गए ।'' [267]

(ग) मनोविश्लेषणात्मक अथवा अंतरंग प्रणाली

मनुष्य की बाह्य क्रियाएं उसकी मनोदशा से परिचालित होती हैं । अतः बाह्य क्रियाओं से अधिक महत्वपूर्ण उसकी मनोभावनाओं, अंतः प्रेरणाओं, मूल-प्रवृत्तियों और मानसिक उथल-पुथल का चित्रण माना गया है । पात्र की बाह्य क्रियाएं स्पष्ट होती हैं, किन्तु अंतरंग के रहस्य को जानना सरल नहीं है । पात्र के अंतःकरण की गहराइयों को समझने के लिए मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली का प्रयोग उपयोगी और सहायक होता है । इसका विकास मनोविश्लेषण शास्त्र के आधार पर हुआ है । व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों; जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय आदि ने अपने पात्रों की आंतरिक प्रवृत्तियों को प्रकाशित करने के लिए इस विधि को विशेष रूप से अपनाया है राही जी ने अपने उपन्यासों में प्रमुख रूप से - वर्णनात्मक और अभिनयात्मक प्रणाली का ही प्रयोग किया है, किन्तु मनोविश्लेषणात्मक पद्धति भी कतिपय स्थलों पर दृष्टिगत होती है ।

(i) आत्मविश्लेषण अथवा आत्मप्रकाशक : इस पद्धति के अंतर्गत पात्र किसी अन्य पात्र के समक्ष अपनी भावनाओं को प्रकट नहीं करता । वह एकांत में या म नही मन में अपनी अनुभूतियों या आंतरिक स्थिति की अभिव्यक्ति करता है और कभी-कभी उसका मूल्यांकन भी करता है । राही जी के उपन्यासों में पात्रों की मानसिक स्थिति के उद्‌घाटन में इस प्रणाली के दर्शन होते हैं ।

'आधा गॉव' उपन्यास में मौलवी बेदार की मानसिक स्थिति का पता उनके नमाज अता करते समय जमींदारी के झगड़ों के बारे में सोचने पर चलता है क्योंकि वे ''बहुत दिनों से मंगरे वाली जमीन पर दांत गड़ाए हुए थे ।''

---

[267] डॉ राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ0 11

अपने बेटे आशाराम के गृहत्याग से बाबूराम के एकाकीपन तथा डर को लेखक ने इस प्रकार चित्रित किया है - ''बाबूराम तो अपनी आत्मा के सन्नाटे से घबराए हुए थे ही । वह तो यह सोच-सोचकर डर रहे थे कि जो पहलवान ने उन्हें न देखा और आवाज़ न दी तो वह इस सन्नाटे का बोझ उठाए कहां फिरेंगे मारे-मारे ? इसलिए पहलवान की आवाज़ सुनते ही वह दुकान की तरफ़ मुड़ गए ।'' [268]

(ii) अंतर्द्वन्द्व : द्वन्द्व के आंतरिक एवं भावात्मक रूप को अंतर्द्वन्द्व कहते हैं । पात्रों के मन के विचारों तथा उद्वेगों के उत्थान-पतन से अंतर्द्वन्द्व का जन्म होता है । उन्हीं पात्रों में अंतर्द्वन्द्व अधिक उठता है, जिनके जीवन मूल्य स्पष्ट नहीं होते और जो आत्मबल और प्रबल इच्छा-शक्ति से वंचित होते हैं । जिन पात्रों के सामने आदर्श स्पष्ट होता है, पहले से यह निश्चित रहता है कि क्या करना है और क्या नहीं; तो ऐसे पात्रों के हृदय में संघर्ष उठने का अवसर नहीं आता । पात्रों के अंतर्मन में यह द्वन्द्व दो रूपों में प्रकट होता है - चेतन और अचेतन । चेतन-संघर्ष में पात्र पूर्ण जागरूक होता है और उसके चेतन मस्तिष्क में ऊहापोह चलता है । अचेतन-संघर्ष की स्थिति में पात्र की क्रियाएं बड़ी अटपटी और बेचैनी से युक्त होती हैं ।

राही के 'ओस की बूँद', 'सीन : '75', एवं 'दिल एक सादा काग़ज़' उपन्यासों में कई स्थलों पर अंत:संघर्ष के दर्शन होते हैं, किन्तु इनमें मनोवैज्ञानिक उपन्यासों जैसी सूक्ष्मता एवं गहराई नहीं है । दालान में लेटी हाजरा नामक एक पात्र अल्लाह से बाते करती हुई कहती है - ''नहीं आप को ई बताए की पड़िहै कि आप बड़े हैं कि वजीर हसन ? का हम जिन्दगी भर ऐही मारे नमाज़ रोज़ा किया रहा कि तूं हमरे अल्लन को झट देना पाकिस्तान भेज दियो । बाहार जाय इ पाकिस्तान.....'' [269]

(iii) अंतर्विवाद : अंतर्विवाद पात्र के भीतर चलने वाला स्वयं से भाषण होता है । इसे कोई सुनने वाला नहीं होता अर्थात् पात्र इसे किसी से कहता नहीं है । पात्र के अचेतन मन की आंतरिक वासनाएं इस अंतर्विवाद द्वारा प्रकट हो जाती हैं । उनमें कोई क्रमबद्धता नहीं होती । पात्र के विचार साहचर्य के आधार पर श्रृंखलित होते जाते हैं । [270]

---

[268] डॉ राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ0 137-138

[269] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 48

[270] लेओन एडेल, दि साइकोलोजिकल नोवेल, पृ0 80 के आधार पर

राही जी के उपन्यासों में एक दो सीलों पर अंतर्विवाद के उदाहरण प्राप्त होते हैं । 'ओस की बूँद' में ठा0 शिवनारायण सिंह शहला से प्रेम विवाह करने की चाहत में अंतर्विवादग्रस्त हो जाते हैं - ''समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं ? झूठ बोलने को जी नहीं चाहता और सच बोलने में डर लगता है । क्योंकि सच यह है कि शहला मेरा ख़्वाब है और मेरी आंख खुल गई है और कोई मुझे यह नहीं बताता कि खुली आंखों से ख़ाब देखने का क्या दस्तूर है ?'' [271]

(iv) स्वप्न विश्लेषण : स्वप्नों के माध्यम से भी पात्रों की आंतरिक भावनाओं, अतृप्त इच्छाओं तथा कुण्ठाओं पर प्रकाश पड़ता है । फ्रायड का मत है कि हमारे जीवन में बहुत सी ऐसी इच्छाएं होती हैं, जो असामाजिक एवं अनैतिक मानी जाती हैं । सामाजिक संस्कार के प्रहरी जिन इच्छाओं को चेतनावस्था में उभरने नहीं देते, स्वप्न में वही रूप बदलकर आती हैं....। फ्रायड के मतानुसार स्वप्न-विश्लेषण अचेतन मानस की जानकारी प्राप्त करने का साधन है । [272] एडलर के व्यक्ति मनोविज्ञान के अनुसार स्वप्न अचेतन मन में वरिष्ठता प्राप्त करने का साधन है । जो श्रेष्ठता व्यक्ति को जाग्रतावस्था में प्राप्त नहीं हो पाती, उसे वह स्वप्न में पाना चाहता है । जीवन में आने वाली कठिनाइयों का पूर्वाभास स्वप्न में होता है जिससे व्यक्ति कठिनाइयों का सामना कर सके । युंग ने स्वप्न को वर्तमान समस्याओं का आतंक माना है, किन्तु एडलर ने स्वप्न को जीवन-लक्ष्य से संबंधित होने के कारण भविष्य की ओर संकेत करने वाला माना है । [273]

राही जी के 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास का नामकरण स्वप्नों की अंतर्वस्तु पर आधारित है । इस उपन्यास के देश और बिल्लो अपने लिए एक घर का सपना संजोए मर जाते हैं, पर उनका यह सपना सपना ही रहता है ।

(v) अन्य पद्धतियां : मनोविश्लेष्णात्मक प्रणाली की उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त मुक्त-आसंग, बाधकता-विश्लेषण, निराधार प्रत्यक्षीकरण आदि का प्रयोग भी पात्रों के अंतर्मन को मनोवैज्ञानिक रूप से उद्‌घाटित करने के लिए किया जाता है ।

---

[271] डॉ राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ0 79

[272] ए.ए. ब्रिल (अनुवादक), दि बेसिक राइटिंग्स ऑफ सिगमण्ड फ्रायड (लेखक सिगमण्ड फ्रायड), पृ0 559

[273] डॉ गिरधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेष्णात्मक अध्ययन, पृ0 31

मुक्त-आसंग प्रणाली में पात्र अन्य पात्र के साथ वार्तालाप करता हुआ अपने मन को खुला छोड़ देता है तथा अपने भावों, विचारों और इच्छाओं को निर्बाध रूप से बिना किसी भय और संकोच के प्रकट करता है । बाधकता-विश्लेषण के अंतर्गत पात्र अपने मन की गुप्त बातों को कहते-कहते रुक जाता है, क्योंकि उन्हें दूसरों के सामने प्रकट करने में लज्जा की अनुभूति होती है । निराधार प्रत्यक्षीकरण विभ्रम है । पात्र अपने मानसिक द्वन्द्व के कारण बाह्य जगत में वस्तुओं के न होते हुए भी अनेक वस्तुओं को देखता-सुनता है ।

राही जी के उपन्यासों में पात्रों के अंतर्मन में उठने वाले विविध भावों और इच्छाओं के प्रकटीकरण में ये विधियां न के बराबर ही प्रयुक्त हुई हैं । दूसरे, किसी घटना या पात्र में दूर से खींचकर इन पद्धतियों को रखना न्यायोचित न होगा, क्योंकि वस्तुतः ये विधियां मनोवैज्ञानिक कथाओं में ही प्रयुक्त हुई हैं ।

निष्कर्ष : राही जी के उपन्यासों में प्रयुक्त चरित्रांकन की प्रणालियों पर विचार करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि उन्होंने चरित्र-चित्रण की परंपरागत विधियों - वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक - का ही प्रमुख रूप से आश्रय लिया है । एक ओर उन्होंने स्वतः ही अपने चरित्रों की विशेषताओं एवं दुर्बलताओं का विश्लेषण किया है, तो दूसरी ओर नाटकीय विधि द्वारा घटनाओं, कथोपकथनों, क्रिया-कलापों आदि के माध्यम से भी उनके चरित्र पर प्रकाश डाला है । ये दोनों विधियां उनके उपन्यासों में इतनी प्रगल्भ हैं कि आश्वस्त होकर यह नहीं कहा जा सकता कि किस पद्धति की ओर उन्होंने अपनी विशेष सूचित की है । परंतु इतना अवश्य स्पष्ट है कि जिन स्थलों पर परिस्थितियों के बीच से पात्रों के क्रिया-कलापों के माध्यम से चरित्र-चित्रण का स्वरूप उभरा है, वे स्थल निस्सन्देह अधिक कलात्मक हैं । जहां पात्रों के बहिरंग स्वरूप और व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है, वहां पर राही जी की पात्र-परिकल्पना में वर्णनात्मक पद्धति की उपादेयता को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है ।

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

(1) सार-संक्षेप

साहित्य और जीवन का अटूट संबंध है । साहित्य जीवन के विविध प्रश्नों को अपनी अनेक विधाओं द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता है । इसीलिए साहित्य को समग्र जीवन का ललित उद्‌गार कहा जाता है । हिन्दी साहित्य भी अपनी अनेकमुखी विधाओं द्वारा जीवन के सभी अंगों को पाल-पोस रहा है । हिन्दी साहित्य की एक सशक्त, समर्थ एवं संपन्न विधा उपन्यास द्वारा मानव जीवन के विविध पक्षों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त किया जाता है ।

उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से मानव जीवने के विविध पक्षों को रूपायित करता है । इस दृष्टि से उपन्यास तत्वों में पात्र तत्व की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है । स्थूल रूप से उपन्यास का आधार कथावस्तु को भले ही मान लिया जाय, परंतु कथावस्तु का आभ्यंतरिक अंग तो पात्र और उनका चरित्र-चित्रण ही है । वैसे भी कथा की कल्पना में पात्रों की भी विद्यमानता रहती है ।

वर्तमान युग में उपन्यासों में पात्र तत्व की सर्वोपरि महत्ता सुनिश्चित हो चुकी है । प्रारंभ में लंबी अवधि तक कथानक को उपन्यास का मूलाधार माना जाता रहा । परंतु जब उपन्यास के क्षेत्र में परिपक्वता आई, वह घटना-वैचित्र्य की परिधि लांघकर चरित्र-चित्रण की ओर प्रवृत हुआ और पात्रों का 'प्रवृत एवं संतुलित चरित्र-चित्रण उपन्यास की धुरी माना जाने लगा । साहित्य में पात्र-परिकल्पना ही उसके उद्‌देश्य और 'स'हित भाव को पाठक के सम्मुख रखती है ।

उपन्यास साहित्य में 'पात्र' शब्द का तात्पर्य है, वे व्यक्ति जो कथावस्तु की घटनाओं के घटक होते हैं और जिनके क्रिया-कलापो या चरित्र से कथावस्तु की सृष्टि या परिपाक होता है । पात्र के संस्कारों की समष्टि को चरित्र कहा जाता है । पात्रों की स्वाभाविक विचित्रता उनका चरित्र है । उपन्यास की कथा में आए सभी व्यक्ति पात्र होते हैं परंतु चरित्र केवल वे ही व्यक्ति होते हैं, जिनके सहारे कथावस्तु का

निर्माण होता है । इस प्रकार किसी कथावस्तु में आए सभी पात्र स्वभावतः चरित्र नहीं कहे जाएंगे । जीवंत पात्रों पर ही उपन्यास की सहज संवेद्यता निर्भर करती है ।

पात्र रूपी आधारशिला पर ही उपन्यास रूपी भवन का निर्माण होता है । अतः उपन्यास में पात्रों का वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का । पात्र संपूर्ण मानव जगत के प्राणियों के अनुभवों को स्वयं में धारण किया हुआ होता है । पात्र का कोई निजी अस्तित्व नहीं होता, वह लेखक के दृष्टिकोण का प्रतिरूप होता है, क्योंकि एक लेखक ही अपनी योग्यता और क्षमतानुरूप अपनी कल्पना से पात्रों के माध्यम से कथानक को सजीव एवं रोचक बनाता है । साहित्य में पात्र और पात्र-परिकल्पना 'गिरा-अरथ' और 'जल-बीचि' के समान कहने भर को ही भिन्न हैं । ये वस्तुतः आधाराधेय ही नहीं, अंगांगी भाव से भी एक हैं । पात्र-परिकल्पना के माध्यम से ही किसी उपन्यास के चरित्र साहित्य के पृष्ठों पर अमर-अक्षर और पाठकों की चेतना में प्रभाव-भास्वर बनते हैं । भारतीय परंपरा के अनुसार पात्र-परिकल्पना अर्थात् साहित्य लेखन संघर्ष की अवस्था पार किया हुआ व्यक्ति ही कर सकता है । एतदर्थ लेखक को समदर्शी एवं अनासक्त होना चाहिए । जबकि पाश्चात्य सिद्धांत के अनुसार केवल संघर्ष में डूबा और छटपटाता व्यक्ति ही कलाकार हो सकता है । भरत प्रभृति भारतीय आचार्यों ने 'रस' को काव्यात्मा माना तो अरस्तू आदि पाश्चात्य विचारकों ने कथावस्तु को अपने साहित्य में प्रमुखता दी ।

उपन्यासों में अनेक प्रकार के पात्रों की नियोजना की जाती है । उपन्यास-कला में महत्व की दृष्टि से पात्रों के तीन वर्ग हैं - प्रधान, गौण तथा सामान्य (उपकरण) पात्र । प्रधान पात्रों पर संपूर्ण कथानक आश्रित होता है, जैसे फुन्नन मियां, हिम्मत जौनपुरी, टोपी शुक्ला, वजीर हसन, देशराज आदि; जबकि गौण पात्र कथानक में मात्र साधन रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं । ये पात्र कथानक की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं होते राही के ऐसे कुछ पात्र हैं - कुंवरपाल सिंह, बाबू रामलखन लाल, शबनम, अलीबाकर, रामनाथ उर्फ पीटर उर्फ रामनाथन कृष्णन, शम्सू मियां, रेवती श्रीवास्तव आदि । इनके अतिरिक्त कथानक में सामान्य या उपकरण पात्र होते हैं, जो उपन्यास की बहती जलधारा में तृणपत्रवत् अनायास सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे पंडित मातादीन, एक मुल्ला जी, तोंद वाले पंडित जी, एक रण्डी, इस्लामी फौज के सिपाही आदि । चारित्रिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से पात्र दो प्रकार के माने गए है । जो पात्र समाज के किसी वर्ग की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे वर्गगत अथवा प्रतिनिधि पात्र (Type Characters) कहे जाते हैं, जैसे फुन्नन मियां, देशराज, बिल्लो, टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी; जबकि कुछ पात्र वर्ग-विशेष के गुण दोषों का प्रतिनिधित्व न कर अपनी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हैं, इन्हें व्यक्तित्व प्रधान पात्र

(Individual Characters) कहते हैं । राही के उपन्यासों में ऐसे कुछ प्रमुख पात्र हैं मिगदाद, बछनिया, चंचल, तिरछे खां, प्रेमानारायणा, पुष्पलता आदि । चारित्रिक परिवर्तनशीलता की दृष्टि से पात्रों के दो वर्ग होते हैं । प्रारंभ से अंत तक एक समान रहने वाले पात्र स्थिर कोटि (Flat Characters) के कहे जाते हैं; मौलवी बेदार, हिम्मत, बलभद्र नारायण शुक्ला ऐसे ही पात्र हैं और वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते रहने वाले पात्र गतिशील या विकसनशील पात्र (Round Characters) कहे जाते हैं; जैसे फुन्नन मियां, इफ्फन, सकीना, पं0 गौरीशंकरलाल पाण्डेय आदि ।

राही जी की पात्र-परिकल्पना अत्यंत विशाल है । उनके उपन्यासों में विविध प्रवृत्तियों, रुचियों एवं चारित्रिक गुणावगुणों से युक्त पात्रों की परिकल्पना की गई है । यह बहुरंगी पात्र-परिकल्पना उनके गहन अध्ययन, निजी अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, अनुभूति की तीव्रता और निजी जीवन-दृष्टि की देन है । उन्होंने एक सिद्धहस्त उपन्यासकार की भांति अपने औपन्यासिक चरित्रों की निर्मिति के लिए जीवन के कई स्रोतों से उपकरण जुटाए हैं । अपने आदर्शों और दृष्टिकोणों के अनुसार एक ओर उन्होंने पात्रों के निर्माण में धर्म, इतिहास, किंवदन्तियों, जनश्रुतियों एवं आस-पास के परिवेश को आधार बनाया है, दूसरी ओर उन्होंने कल्पना का भी आश्रय ग्रहण किया है । राही जी पात्रों द्वारा पात्रों का जीवन वृत्त ही नहीं अपितु उनके माध्यम युग विशेष की प्रवृत्तियां भी साकार कर देते हैं ।

राही जी ने अपने उपन्यासों में सभी वर्णों, वर्गों तथा संप्रदायों के पात्रों को स्थान दिया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति; उच्च, मध्य एवं निम्न वर्ग; हिन्दू, मुसलमान, सिख एवं ईसाई संप्रदाय सभी श्रेणियों के पात्रों का उनकी सबलताओं तथा दुर्बलताओं के साथ सफल चित्रण किया है । तथापि यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम वर्ग के शिया पात्रों की सृष्टि में उनका मन अधिक रमा है । मुस्लिम संप्रदाय भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग है । इसके विकास या पिछड़ेपन से भारत का विकास या पिछड़ापन सीधे जुड़ा हुआ है । इस अर्थ में राही जी ने इस वर्ग को अपने समग्र रूप में चित्रित करके अपने उपन्यासों के रूप में एक अभूतपूर्व उपहार साहित्य प्रेमियों को दिया है । व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविकोपार्जन के निमित्त किए गए कार्यों को व्यवसाय कहा जाता है । इस दृष्टि से राही के उपन्यासों में कृषक, मजदूर, व्यापारी, अधिकारी-कर्मचारी, सेवक, दलाल, बेरोजगार आदि पात्रों का सृजन किया गया है । वय अर्थात् आयु के आधार पर राही के पात्र चारों अवस्थाओं - बाल, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध - में वर्गीकृत हैं । राही ने पात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में जहां सद्पात्रों के चरित्र को निरूपित किया है, वहां उन्होंने असद् पात्रों की उपयोगिता को भी सिद्ध करते हुए

उनकी चरित्रगत विशेषताओं को रूपांकित किया है । राही के उपन्यासों की कथावस्तु के आधार पर उनके पात्रों को पिता, माता, पति, भाई, बहिन, पुत्रवधू, सास आदि पारिवारिक संबंधों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है । देश या स्थान के आधार पर राही के पात्र देशी और विदेशी पात्रों में विभाजित हुए हैं । देशी पात्रों के अंतर्गत ग्रामीण और शहरी पात्रों का नियोजन किया गया है । विदेशी पात्रों में उनके विभिन्न देशों में रह रहे भारतीय पात्रों का विवेचन है । काल अथवा समय के आधार पर राही के उपन्यासों का कथाकाल 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास को छोड़कर 1937 से लेकर 1984 तक फैला हुआ है ।

डॉ राही मासूम रज़ा की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र भारतीय संस्कृति में रची-बची विभिन्न सभ्यताओं के एकीकरण पर बल देते हैं । विशेषतः राही भारत की हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति की समानताओं को प्राचीन भारतीय साहित्य के अनखोजे पहलुओं के माध्यम से हमारे सम्मुख रखते हैं । राही धार्मिक एकता के नारों से चिढ़ते हैं । राजनैतिक लाभ लेने की इच्छा लेने वाले लोगों द्वारा ही इस प्रकार के नारों को चलाया जाता है । राही के उपन्यासों में वर्णित सभी धार्मिक त्योहारों एवं अवसरों पर सांप्रदायिक सौमनस्य परिलक्षित होता है । 'आधा गॉव' में मोहर्रम मात्र शिया मुसलमानों का पर्व नहीं है । राही कला और साहित्य को जीवन की उपयोगिता से जोड़कर देखते थे । वे साहित्य में बढ़ते व्यक्तिवादी स्वरों से विक्षुब्ध थे । फिल्म-कला को वे साहित्य का अंग मानते हुए उसे साहित्य के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के पक्षधर थे । राही ने अपने उपन्यासों में पुराणों और इतिहास का उपयोग भारतीय संस्कृति के निखरे स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए किया । राही को भारतीय मुसलमान 'राम की खड़ाउंओं को क़दमे रसूल बनाकर चूमने वाले' लगते थे तो गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में उन्हें मुगलकालीन संस्कृति के दर्शन भी होते हैं । राही के पात्र जहां जाति और वर्णाश्रम व्यवस्था के परंपरागत स्वरूप को चित्रित करते हैं, वहीं वे इस पतनोन्मुख व्यवस्था के विरुद्ध नई चेतना की सुगबुगाहट भी दर्शाते हैं । इसके अतिरिक्त राही के समाज एवं संस्कृति के संवाहक पात्र संबंध निरपेक्षता, संयुक्त परिवारों का विघटन, आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व, नारी की परिवर्तित मानसिकता, वैवाहिक समस्याएं, दहेज समस्या, अनमेल विवाह एवं काम जनित समस्याओं को भी व्यंजित करते हैं ।

आर्थिक सरोकारों का अध्ययन भी राही के औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से किया जा सकता है । राही मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी थे । इसमें एक वर्ग शोषकों का है तो दूसरा शोषितों का । शोषक वर्ग के जमींदार, महाजन, पूंजीपति तथा पुलिस-प्रशासन द्वारा शोषितों का विभिन्न तरीकों से आर्थिक दोहन हुआ है । शोषक

वर्ग के कुछ पात्रों से राही की सहानुभूति भी दिखाई देती है, क्योंकि वे वस्तुतः शोषक नहीं, अपितु उनकी वंश परंपरा के हैं । राही का मानना रहा कि यदि औरंगजेब ने मंदिरों का विध्वंस किया और हिन्दुओं को प्रताड़ित किया तो उसके किए का दण्ड किसी अन्य को क्यों दिया जाए? दूसरे 1952 में जब जमींदारी का विघटन हुआ तो शोषक कहे जाने वाले पात्र स्वयं पददलित एवं दीन-हीन हो गए । ऐसे लोगों के प्रति राही ने समसामयिक एवं समान विचारधारा के रचनाकारों के विपरीत अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है । कुलमिलाकर, शोषितों के प्रति ही पूरी संवेदना राही के उपन्यासों का मूल मंतव्य है । वह चाहे किसी भी व्यवस्था या व्यक्ति के द्वारा शोषित किए जा रहे हों । राही की संवेदना का केन्द्र एक दुखी मानव समाज है । उनके पात्र अभावग्रस्त मानव समुदाय की जिजीविषा गत भयावह सच्चाई को सम्मुख रखते हैं । राही की सहानुभूति उस समाज के साथ हैं, जो आर्थिक परावलंबन पर रहने को अभिशप्त हैं वह चाहे फुन्नन मियां, वजीर हसन व हिम्मत जैसे जमींदार हों; मिगदाद जैसे किसान हों; टोपी शुक्ला, रफ्फन व अली अमजद जैसे कला-साहित्यप्रेमी बेरोजगार युवा हों या फिर देश और बिल्लो जैसे मजदूर ।

डॉ राही मासूम रज़ा की राजनैतिक चेतना के संवाहक पात्र राही की राजनैतिक विचारधारा को प्रतिबिंबित करते हैं । राही ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग़ाज़ीपुर, वाराणसी व इलाहाबाद जनपदों, पश्चिमी उत्तर प्रदेश का अलीगढ़ तथा मुंबई महानगर के जनजीवन के माध्यम से विभिन्न राजनैतिक दलों, विचारधाराओं तथा विश्वासों का वर्णन करते हुए समाजवादी चेतना को मुखरित किया है । राही के उपन्यासों में भारति विभाजन की पीड़ा परिलक्षित होती है, क्योंकि इस पीड़ा को उन्होंने भोगा और देखा हुआ था । राही ने अपने उपन्यासों में मंत्रियों, सांसदों तथा विधायकों जैसे शासक वर्ग की अवसरवादिता, उनके चारित्रिक अधःपतन, आमोद-प्रमोद, अत्याचारों तथा दलबदलू प्रवृत्तियों को पाठकों के सम्मुख रखा है । राही ने विभिन्न प्रशासनिक अंगों की सूक्ष्म एवं गहन विवेचना उनके अनाचारों के संदर्भ में की है । राही की राजनैतिक चेतना को इस पुस्तक में शासक, शासित एवं अन्य वर्गों में वर्गीकृत करके विवेचित किया गया है । राही के अधिकतर औपन्यासिक पात्र मुस्लिम वर्ग से आए हैं, जिनके चित्रण से राही ने इस समाज की राजनैतिक जागरूकता, देशभक्ति एवं विभाजनजनित टीस का दिग्दर्शन तो कराया ही है, साथ ही देश के अन्य वर्गों एवं संप्रदाय के लोगों से इनका वैमनस्य रहने का कोई आधार नहीं है । यह मात्र राजनीति की कुत्सित चालों का परिणाम है । इन्हीं के कारण सांप्रदायिक हिंसा एवं उपद्रव फैलते हैं ।

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा, अलंकार, मुहावरे, उक्ति-सूक्ति एवं विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया है । उनके उपन्यासों की भाषा

देश-काल एवं वातावरण, परिस्थिति तथा पात्रों के सर्वथा अनुकूल है । उनकी भाषा में आंचलिक बोलियों का प्रचुर प्रयोग पठनीय है । 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में अवधी भाषा तो शेष उपन्यासों में भोजपुरी भाषा के उर्दू मिश्रित शब्दो और वाक्यों का प्रयोग किया गया है । इनके अतिरिक्त उनकी भाषा में अंग्रेजी का बहुतायत में तो पंजाबी भाषा का प्रयोग यत्र-तत्र पात्रों की मनोदशा, वातावरण तथा उनके सामाजिक स्तर के अनुरूप हुआ है । राही की भाषा में उर्दू की बाहुल्यता के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि राही हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषाएं नहीं मानते थे, प्रत्युत वे उर्दू को हिन्दी की ही एक शैली मानते थे । राही के मतानुसार उर्दू भाषा मृत हो चुकी है, इसलिए इसे देवनागरी में लिखकर इसके साहित्य को जिन्दा बनाए रखा जा सकता है । सबसे बड़ी बात यह कि ये दोनों भाषाएं अलग थी ही नहीं । इन्हें तो जॉन गिलक्राइस्ट ने भारत के प्रथम महाविद्यालय फोर्ट विलियम कालेज कोलकाता में अलग-अलग विभाग खोलकर विभाजित कर दिया था । इसी कारण राही अपनी भाषा को देवनागरी में लिखी उर्दू मानते थे । उनका मानना था कि उर्दू और हिन्दी दो अलग-अलग साहित्य नहीं हैं । देवनागरी लिपि के माध्यम से अब दोनों की ऐतिहासिक एकता स्थापित हो जानी चाहिए । राही ने अपने उपन्यासों में किंचित अपशब्दों और अश्लील भाषा का प्रयोग करके कथ्य को उसी खुरदरे रूप में प्रस्तुत करना चाहा, जिसके मूल रहस्य और परिणाम से पाठक परिचित होना चाहता है । राही की भाषा में उपमा, रूपक, मानवीकरण एवं विरोधाभास अलंकारों; अनेक मुहावरो-कहावतों तथा उक्तियों-सूक्तियों का प्रयोग बीच-बीच में मणि में जैसे सोने का संयोग है । राही जी ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए तीन शैलियों का व्यवहार किया है, (1) वर्णनात्मक (बहिरंग) प्रणाली के द्वारा वे अपने पात्रों की स्थूल रूपरेखा प्रस्तुत करके उनके रूप, आकृति, वेशभूषा, चाल-ढाल, स्वभाव, मनःस्थिति एवं हावों-अनुभावों का वर्णन करते हैं; (2) अभिनयात्मक (नाटकीय) विधि से राही कथोपकथन या वार्तालाप तथा घटनाओं और पात्रों के क्रियाकलापों को प्रस्तुत करते हैं तथा (3) मनोविश्लेष्णात्मक (अंतरंग) प्रणाली से पात्रों के अंतःकरण की गहराइयों को समझा जाता है, किन्तु इसका प्रयोग राही ने अपने उपन्यासों में कतिपय स्थलों पर ही किया है ।

अंत में हम कह सकते हैं कि राही जी के औपन्यासिक पात्र समाज की निष्ठाओं और कुण्ठाओं, दोनों को प्रतिबिंबित करते हैं । उपन्यासकार ने अपने भले-बुरे सभी पात्रों के साथ ईमानदारी, आत्मीयतता और सहृदयता बरती है । इसीलिए उनके उपन्यासों के सभी प्रमुख पात्र जीवंत और स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले हैं । राही जी के अधिकांश पात्र मध्यवर्ग के हैं । समाज में जो भी समस्याएं, उनके समाधान तथा इस संबंध में सक्रियता-अक्रियता है, वह मध्यवर्गीय व्यक्तियों द्वारा ही है इसी कारण राही जी समाज का वास्तविक चित्र अंकित कर पाने में सक्षम रहे हैं ।

पात्रों का स्वभाव, परिस्थिति, स्थान, वस्तु सभी के विस्तृत वर्णनों के लिए वे स्वयं जादूगर की भांति अपने उपन्यासों में उपस्थित हुए हैं ।

(2) उपलब्धि एवं स्थापना

राही जी की पात्र-परिकल्पना के विशिष्ट आयाम एवं मूल्यांकन

स्वतंत्र भारत के सामने सबसे जटिल समस्या है - सांप्रदायिक दंगे । राही मासूम रज़ा के उपन्यासों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना है सांप्रदायिक दंगों के मूल कारण और परिस्थितियों को कलात्मक रूप में हमारे सम्मुख रखना, क्योंकि यह दंगे पूर्ण रूप से भारत की विकास प्रकिया को प्रभावित करते हैं । पारस्परिक संबंधों के बिगड़ने से देश की एकता डगमगा जाती है तथा बाह्य शक्तियों को घुसपैठ करने का अवसर मिल जाता है, जिससे देश के भविष्य के आगे एक प्रश्नचिन्ह लग जाता है । इन सांप्रदायिक दंगों के मूल में भारत का विभाजन रहा है । विभाजन की मांग क्योंकि मुस्लिम वर्ग की ओर से उठाई गई थी, इसलिए इसके दोषी भी वही माने गए, परंतु विडंबना यह रही कि जिन लोगों ने विभाजन को स्वीकार नहीं किया और जिनकी निष्ठा भारत के प्रति आज भी पूर्ण रूप से बनी हुई है, वह भी घृणा के शिकार हुए । उनको संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा । उनके देश-प्रेम अथवा राष्ट्र-भक्ति का कोई मूल्य नहीं रह गया । यह वर्ग दोहरे सदमे से टूट-सा गया । एक तो इस वर्ग के परिवारों का विघटन, दूसरा उसके सामाजिक मूल्यों का ह्रास । इस परिस्थिति को राही मासूम रज़ा ने लक्षित कर अपनी कृतियों के माध्यम से सांप्रदायिक दंगों के कारणों के रूप में इसी विडंबनापूर्ण परिस्थिति को उत्तरदायी माना है ।

अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों और समकालीन लेखन परंपरा में डॉ राही मासूम रज़ा का विशिष्ट स्थान है । उन्होंने अपनी लेखनी गद्य और पद्य दोनों विधाओं पर समान अधिकार से चला कर हिन्दी साहित्य में एक नया तथा सशक्त प्रयोग किया है । प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों में राही ने पूरी ईमानदारी और निर्भीकता से सामयिक समस्याओं और अपेक्षाओं की सार्थक अभिव्यक्ति पहली बार मुस्लिम परिवेश के संदर्भ में की है । वस्तुतः उन्होंने राजनैतिक चालों की गहन पड़ताल करते हुए समाज सापेक्ष तथा एक संवेदनशील कलाकार के रूप में हिन्दी कथा साहित्य को ऐसे महत्वपूर्ण आयाम दिये है, जो आज के लेखन संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व रखते हैं ।

किसी भी कला-साहित्य की पात्र-परिकल्पना का नियंता कलाकार-साहित्यकार होता है । वही पात्रों के बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व का सर्जक होता है । पात्रों के

व्यक्तित्व निर्माण में उपन्यासकार के विचार, दर्शन और भावनाओं का योग रहता है । राही के उपन्यासों मे उनकी समाजोन्मुख यथार्थवादी जीवन-दृष्टि पात्रों के रूप में प्रतिफलित हुई है । समाजोन्मुखी दृष्टि में जो वस्तु और कार्य हमें सुख या आनंद प्रदान करती है, वह वस्तु और कार्य हमें श्रेष्ठ या उपयोगी प्रतीत होती है । इसी प्रकार वही साहित्य श्रेष्ठ या उपयोगी होता है, जो मानव समाज के मंगल का संवर्धन करता है । राही ने मानव मूल्यों की संरक्षार्थ तथा समाज के बदलते हुए परिवेश को विकसित करने के लिए अपनी समाजोन्मुखी चेतना को प्रस्तुत किया । आधुनिक युग के हिन्दी उपन्यासों में इस प्रकार के सजीव यथार्थ और जाने पहचाने से पात्रों के सर्जक राही जी ने वास्तविक पात्रों में यथार्थ कल्पना का पुट दिया है । राही के औपन्यासिक पात्र 'आधा गॉव' के फुन्नन मियां, 'टोपी शुक्ला' के टोपी, 'हिम्मत जौनपुरी' के हिम्मत, 'ओस की बूँद' के वजीर हसन, 'दिल एक सादा काग़ज़' के रफ्फन, 'सीन : '75' के अली अमजद को एक कर दिया जाए, तो जो व्यक्तित्व निर्मित होगा, वह डॉ राही मासूम रज़ा ही होंगे । पात्र-परिकल्पना के माध्यम से राही के साहित्य चिंतन और दर्शन के साथ-साथ उनकी उपन्यास-कला को भी सही अर्थों में समझने में सहायता मिली है ।

हिन्दी साहित्य में राही मासूम रज़ा ही एक ऐसे उपन्यासकार रहे हैं; जिन्होंने उपन्यास, काव्य और फिल्म लेखन का एक साथ लेखन-निर्वाह बड़े कौशल से किया है राही का मानना रहा कि आज साहित्य पाठी व्यक्तियों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है । इसके सर्वप्रमुख कारण है - महंगाई और मीडिया । भारत के आम आदमी को बढ़ती महंगाई में अपनी दाल-रोटी जुटाने में खून-पसीना एक करना पड़ता है । शेष वर्ग के व्यक्तियों को मीडिया अपने मंत्रमुग्ध कार्यक्रमों से पूर्णतः एक-दूसरे से अलग कर रहा है । उसे पुस्तकों के पारायण में कोई रुचि नहीं रही । मीडिया के माध्यम में हर आयु-वर्ग का व्यक्ति मोहित हुआ पड़ा है । इसी कारण राही ने फिल्मों के माध्यम से अपने कथ्य का प्रस्तुतीकरण किया ।

राही की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का आयाम यह भी है कि उन्होंने कुछ जमींदारो के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है, जबकि उनके पूर्ववर्ती एवं समकालीन सम विचारधारा रखन वाले रचनाकार जमींदारों के विरुद्ध जहर उगल रहे थे । जमींदारी विघटन के बाद जमींदारों के दुःख दर्द को अभिव्यक्ति देना राही की एक विशिष्ट स्थापना है । इसके अतिरिक्त उन्होंने शासक तथा शोषित वर्ग द्वारा निम्न मध्य वर्ग के प्रति किए गए अति अमानवीय कृत्यों एवं सामाजिक विसंगतियों के अंतर्गत अंतर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों के चित्रण के लिए अपने उपन्यासों में क्रान्तिकारी चरित्रों को प्रस्तुत किया है ।

राही जी के पात्र जीवन और समाज के प्रतिबिंब होने के कारण सदैव स्मरण किए जाएंगे । उनका व्यक्तित्व विभिन्न जीवनानुभूतियों का ऐसा तेजपुंज है, जिसकी यथार्थ और समग्र अभिव्यक्ति उनके साहित्य में हुई है । जीवनगत यथार्थ की विसंगतियों का तीव्र लालसा भरा खण्डन और उस पर विडंबनापरक प्रहार करना उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल प्रवृत्तियां रही हैं । उनके साहित्य में दलित-वंचित वर्ग, किसान-मजदूर वर्ग, अछूतों के प्रति संवेदना तथा सबसे बढ़कर सांप्रदायिक समस्याओं को बढ़ावा देने वालों पर खुलकर कुल्हाड़ा चलाया गया है । 'आधा गॉव' उपन्यास के कारण राही का आंचलिक उपन्यासकारों में भी महत्वपूर्ण स्थान है । उनके उपन्यासों के कथ्य एवं शिल्पगत साहित्यिक-सौंदर्य के कारण जोधपुर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखा गया । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की नैट परीक्षा के नवीनतम संशोधित पाठ्यक्रम में प्रेमचन्द परवर्ती प्रमुख उपन्यासकार के रूप में डॉ राही मासूम रज़ा को सम्मिलित किया गया है । राही का साहित्य उनके लिखे कालजयी धारावाहिक 'महाभारत' के समान पाठकों को प्रभावित एवं अनुरंजित करता रहेगा । उनके पात्रों और दमदार कथ्य और उनकी प्रस्तुति के कारण राही के उपन्यासों में गिनती के हिन्दी शब्द होने के बावजूद हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर बने हैं ।

राही जी की एक गहरी स्थापना है कि धर्म और संस्कृति दो अलग-अलग चीजें हैं । दोनों एक दूसरे को प्रभावित कर सकती है, पर संस्कृति का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है और धर्म की सीमा से उसे बांधना नहीं चाहिए । इसलिए राही की धर्मनिरपेक्षता मूलभूत है । वह उन सद्भाववादियों की बनावटी धर्मनिरपेक्षता से बहुत अलग है, जो उर्दू को इस्लामी संस्कृति से आच्छादित रखना चाहते हैं और फिर भी गाहे-बगाहे यश और पद के लिए राजनैतिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता की शपथ लेते हैं । राही का मानना है कि भारत में रहने वाला हर आदमी, चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, उसकी जड़ें भारतीय ही हैं । बाहर से लिए गए सांस्कृतिक तत्व चाहे वह लिपि हो या उपमाएं, वह चाहे इस्लाम के नाम पर ली जाएं या किसी और के नाम पर, वे साहित्य के सही उपकरण नहीं हैं । अतः उर्दू की आत्मा भी सच्चे अर्थों में भारतीय ही होनी चाहिए । 'राही हिन्दू धर्म को एक धर्म या मज़हब नहीं मानते, वह तो एक संस्कृति है । उसमें जब वैष्णव हिन्दू हो सकता है, शैव हिन्दू हो सकता है, तांत्रिक हिन्दू हो सकता है, इन सबको नकारने वाला आर्य समाजी हिन्दू हो सकता है तो महमदी और ख्रीस्तीय भी क्यों नही हो सकता ? वह अपने-अपने पैगंबर को मानता हुआ भी हिन्दू संस्कृति का सच्चा अंग हो सकता है ।'

यहां हम राही के गहरे मित्र डॉ धर्मवीर भारती की बात से अपने को संयुक्त करना चाहेंगे कि यह बहुत गहरा और आज की परिस्थितियों में राही का बहुत सच्चा और साहस भरा विश्वास है, क्योंकि उन्होंने भारत को हिन्दू संस्कृति का देश कहकर एक ओर उर्दू की सारी कट्टरता को चुनौती देने का खतरा मोल लिया तो दूसरी ओर वह उन संकीर्ण धर्मांध हिन्दुओं को; जो उनको मुसलमान कहकर निर्वासित करता चाहते हैं, विच्छिन्न करना चाहते हैं तो वह डरते नहीं, दबते नहीं; ललकार कर कहते हैं

"मेरा नाम मुसलमानों जैसा है
मुझको क़त्ल करो
और मेरे घर में आग लगा दो
लेकिन मेरी नस-नस में गंगा का पानी दौड़ रहा है ।"

इन्हीं तेवरों को देखते हुए डॉ धर्मवीर भारती रसखान और रहीम आदि मुस्लिम भक्तों पर लक्षित भारतेन्दु कथित इस उक्ति को राही पर भी सटीक समझते हैं *'इन मुसलमान हरि जनन पर कोटिन हिन्दू वारिए ।'* इन्हीं तेवरों को देखकर हमें हाथी के नीचे कुचले गंग, सूली पर चढ़े मंसूर, देश से निर्वासित बायरन और शेली, अमरीका से बहिष्कृत चार्ली चैप्लिन, रूस में कुचले पास्तरनाक का सहसा स्मरण हो आता है, जिन्होंने अपने मानवता वादी सत्य को कहते हुए आत्मोत्सर्ग कर लिया था । राही के इस विद्रोही तेवर को देखकर स्मरण हो उठती हैं कबीर की वे खरी बानियां, जो उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की कुरीतियों और संकीर्णताओं को लेकर घूम-घूम कर सुनाई थीं । कबीर ने आध्यात्मिक साक्षात्कार के माध्यम से देश की कमियों को चिन्हित किया । राही ने भी यह साक्षात्कार अपनी वैयक्तिकता से कर लिया था । उनका यह चरम वैयक्तिक साहित्य सत्य व्यापक मानवता का मूल सत्य है और अतिशय वैयक्तिकता का यह चरम साक्षात्कार राही की सामाजिक सार्थकता है ।

परिशिष्ट - I

उपजीव्य ग्रन्थ

डॉ राही मासूम रज़ा के उपन्यास

1. **आधा गॉव**, राजकमल पेपरबैक्स नई दिल्ली, 1998 तथा अक्षर प्रकाशन दिल्ली, 1966
2. **हिम्मत जौनपुरी**, शब्दकार दिल्ली, 1969
3. **टोपी शुक्ला**, राजकमल पेपरबैक्स नई दिल्ली, 1998
4. **ओस की बूँद**, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1970
5. **दिल एक सादा काग़ज़**, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1973
6. **सीन : '75**, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1977
7. **कटरा बी आर्जू**, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1978
8. **असन्तोष के दिन**, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1986

परिशिष्ट - II

उपस्कारक ग्रंथ : (क) हिन्दी ग्रंथ

1. अज्ञेय : त्रिशंकु, सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर, 1973
2. डॉ इन्दु प्रकाश पाण्डेय : हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1979
3. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका (कुछ विचारणीय प्रश्न), अक्षर प्रकाशन दिल्ली, 1969
4. कल्याण (हिन्दू संस्कृति विशेषांक) : गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1950
5. डॉ गिरधर प्रसाद शर्मा : हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली
6. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप, आत्माराम एंड संस दिल्ली, 1981

7. बाबू गुलाबराय : भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, रवीन्द्र प्रकाशन ग्वालियर,1974-75
8. डॉ चण्डी प्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन,अनुसंधान प्रकाशन कानपुर, 1962
9. डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर : उपन्यास : स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1993
10. डॉ चमन लाल : प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (दूसरा भाग),हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, 1988
11. डॉ जगदीश नारायण श्रीवास्तव : उपन्यास की शर्त, किताबघर दिल्ली, 1993
12. गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस (मझला साइज), गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2053
13. डॉ (श्रीमती) दिलशाद ज़ीलानी :साठोत्तरी हिन्दी के मुस्लिम उपन्यासकार, दिलप्रीत पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1998
14. डॉ दुर्गेश नन्दिनी प्रसाद :स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र, गीताप्रकाशन हैदराबाद, 1993
15. देवेन्द्रनाथ शर्मा (अनुवादक) : मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन (मूल लेखक क. अहमद), भारती भवन पटना, 1969
16. धनञ्जय कृत दशरूपकम् (अनुवादक गोविन्द त्रिगुणायत) :साहित्य निकेतन कानपुर
17. डॉ धमवीर भारती : कुछ चेहरे : कुछ चिन्तन, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1995
18. डॉ धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य (संपादक) : हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी संवत् 2015
19. डॉ नगेन्द्र एवं महेन्द्र चतुर्वेदी (अनुवादक) : अरस्तू का काव्यशास्त्र, भारती भण्डार इलाहाबाद, संवत् 2031
20. डॉ नगेन्द्र (संपादक) : हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी, विनोद पुस्तक मंदिरआगरा प्रथम संस्करण
21. डॉ नगेन्द्र (संपादक) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स नोएडा, 1977
22. डॉ पारुकान्त देसाई : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, सूर्य प्रकाशन दिल्ली, 1984
23. डॉ प्रकाश चन्द्र भट्ट : नागार्जुन : जीवन और साहित्य, सेवासदन प्रकाशन मंदसौर, 1974
24. डॉ प्रताप नारायण टण्डन : हिन्दी उपन्यास कला, हिन्दी समिति उ0प्र0 लखनऊ, 1965
25. डॉ प्रताप नारायण टण्डन : हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, साहित्य भण्डार लखनऊ, 1959
26. प्रथम पंचवर्षीय योजना (जनता संस्करण) : प्रकाशन विभाग नई दिल्ली
27. प्रेमचन्द : कुछ विचार, सरस्वती प्रेस वाराणसी, चतुर्थ संस्करण

28. प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1965
29. ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, हिन्दी साहित्य कुटीर वाराणसी, संवत् 2013
30. डॉ भगवतशरण अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास और राजनीतिक आन्दोलन, पार्श्व प्रकाशन अहमदाबाद, 1989
31. भीष्म साहनी एवं अन्य (संपादक) : आधुनिक हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1980
32. डॉ मंगलदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), प्रथम संस्करण
33. डॉ मंजुलता सिंह : हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग, आर्य बुक डिपो नई दिल्ली, 1971
34 मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (संपादक) : ज्ञान शब्द कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, संशोधित संस्करण 1993
35. डॉ रजनीकान्त शाह : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना (1961 से 1970), संस्कृति प्रकाशन अहमदाबाद, 1990
36. डॉ रणवीर रांग्रा : हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली, 1961
37. डॉ रामगोपाल सिंह चौहान : आधुनिक हिन्दी साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1965
38. डॉ रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1956
39. डॉ राही मासूम रज़ा : मैं एक फेरी वाला (काव्य संग्रह) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1976
40. डॉ राही मासूम रज़ा : खुदा हाफ़िज़ कहने का मोड़ (संकलित डॉ कुंवरपाल सिंह), वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1999
41. डॉ राही मासूम रज़ा : लगता है बेकार गए हम (संकलित डॉ कुंवरपाल सिह), वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1999
42. डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1973
43. डॉ लाल साहब सिंह : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, नमन प्रकाशन नई दिल्ली, 1998
44. डॉ विवेकी राय : आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम, अनिल प्रकाशन इलाहाबाद, 1990
45. विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण (व्याख्याकार शालग्राम शास्त्री) : मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, 1990

46. डॉ श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, संवत् 2006
47 डॉ शशिभूषण सिंहल : उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1970
48. डॉ शशिभूषण सिंहल : हिन्दी उपन्यास : नए क्षितिज, प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली, 1992
49. डॉ शशिभूषण सिंहल : हिन्दी उपन्यास : बदलते संदर्भ, प्रवीण प्रकाशन दिल्ली, 1992
50. डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, सरस्वती मंदिर वाराणसी, 1968
51. डॉ सुरेन्द्र प्रताप यादव : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ और सामाजिक चेतना, भावना प्रकाशन दिल्ली, 1992
52. डॉ सूतदेव हंस : उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र, भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली, प्रथम संस्करण
53. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल (निबंध संग्रह), लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1970
54. डॉ सूरजकान्त शर्मा : हिन्दी नाटक में पात्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण, एस.ई. एस. बुक कंपनी दिल्ली, प्रथम संस्करण
55. डॉ हेमेन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, संघी प्रकाशन जयपुर, 1974

(ख) अंग्रेजी ग्रंथ

1. A.A. Brill (Translator) : The Basic Writings of Sigmond Freud, The Modern Library, New York
2. Allport : Personality : A Psychological Interpretation
3. E. B.Tylor : Premetive Culture
4. Edwin Muir : The Structure of the Novel, The Hogarth Press Ltd. London, 1963
5. E.M. Forster : Aspects of the Novel, Edward Arnold & Co. London, 1953
6. George Lukacs : Study in Europeon Realism
7. Henry James : The Art of Fiction, George G. Harrop & Co., London
8. Herbert-O' Harra : Introduction to the Theatre
9. Professor Karl Piercen : Modern Educational Psychology
10. Leon Edel : The Psychological Novel, Rupert Hart-Devis London, 1955

11. Meredith : Stuffing the Holowman
12. M.L. Robinson : Writing for Young People
13. Percy Lubbock : The Craft of Fiction, Jonathan Cope Ltd. London, 1921
14. R.C. Majumdar : An Adwanced History of India
15. Ralph Fox : The Novel and the People, Foreign Language Publishing House Moscow, 1939
16. W.H. Hudson : An Introduction to the Study of Literature, George G. Harrop & Co. London, 1935
17. W.J Harvey : Character and the Novel, Chatti & Windus, London

(ग) पत्र-पत्रिकाएं

1. इण्डिया टुडे, 15 अप्रैल 1992
2. कम्युनिस्ट (18), 1955
3. कल्पना, मार्च-अप्रैल 1967
4. दैनिक जागरण नई दिल्ली, 10 दिसंबर 1999
5. धर्मयुग, 9 फरवरी 1969
6. धर्मयुग, 1 मई 1991
7. परिवेश (त्रैमासिक), अंक 12
8. प्रतियोगिता दर्पण, मई 1992
9. सरिता, जनवरी (द्वितीय) 1992
10. संचेतना (बसंतांक), 1968
11. सण्डे मेल, 22-28 मार्च 1992
12. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 5 अप्रैल 1992
13. सारिका, अगस्त 1970
14. सारिका, 1 दिसंबर 1978
15. साहित्य संदेश, अक्टूबर-नवंबर 1940

नाम : डा राकेश नारायण द्विवेदी

जन्म तिथि एवं स्थान : चार जुलाई सन् तिहत्तर, ललितपुर

शैक्षणिक योग्यता : एम ए हिंदी, नेट जे आर एफ, पी-एच.डी

पद : सहायक प्रोफेसर (वरिष्ठ वेतनमान) स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

संस्था का नाम : गांधी महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ प्र

स्थायी नियुक्ति वर्ष/सेवा अवधि : सन् 2003/11 वर्ष

शोध विषय : डा राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में पात्र परिकल्पना

विशेषज्ञता : बुंदेली साहित्य

प्रमुख कृतियां : 1- बानपुर विविधा 2008 (संपादन)
2- अइया अपने गांव में (संपादन) 2011
3- स्थान-नाम : समय के साक्षी 2012
4- बुंदेली गीतगोविंद (संकलन, संशोधन व प्राक्कथन), ई रूप में 2014
5- राही मासूम रज़ा और उनके औपन्यासिक पात्र, ई रूप में 2014

पुरस्कार : **'अइया अपने गांव में' के लिये** : 1- अवधेश पुरस्कार, 2- अखिल भारतीय बुंदेली साहित्य एवं संस्कृति पुरस्कार, 3- काशीराम वर्मा स्मृति पुरस्कार, विश्व हिंदी सेवी सम्मान

पत्राचार का पता : 245, शब्दार्णव, नया पटेल नगर, कोंच रोड, उरई

मोबाइल : 9236114604

ईमेल : rakeshndwivedi@gmail.com

डा राकेश नारायण द्विवेदी